पेटवत्थु

(दिवंगत/रिश्तेदारों/पूर्वजों की कहानियों के रूप में भी जाना जाता है)बुद्ध का मार्ग सभी मठों के प्रति करुणा और संगति का मार्ग है। यह ऑनलाइन मानव को पीडीएफ़ स्तर पर ले जाने का प्रयास करता है, लेकिन साथ ही उन राक्षसों को भी नहीं भूलना चाहिए जो अंत में बुरा हुआ है, जिसका अर्थ है प्रेत (पेटा/पेटी)। बुद्ध प्रेतों के लोक के साथ सामंजस्य स्थापित करने का एक मार्गदर्शक हैं, क्योंकि सभी जीव एक दूसरे से संबंधित हैं, जो पिछले जन्मों में हमारे पूर्वज/रिश्तेदार रहे हैं। बुद्ध प्रेतों/पूर्वजों के नाम पर दान करने की शिक्षा दी जाती है, जिससे उन्हें निश्चित रूप से लाभ होगा, साथ ही दुनिया के अनुयायियों की मदद मिलेगी, सभी के लिए संगति उत्पन्न होगी और दानकर्ता को भी पुण्य प्राप्त होगा, मूल रूप से यह तीन प्रकार से है।
पेटवत्थु में 51 कहानियां हैं, जिनमें से प्रत्येक यह बताती है कि कैसे बुरे कर्मों के कारण एक प्राणी का पुनर्जन्म "भूखे प्रेतों" (पेटा/पेटी) के दुखद लोक में हुआ और कैसे उनकी मदद की गई।

त्रिपिटक में अन्यत्र पाई जाने वाली भूत-प्रेतों की कहानियों के लिंक यहाँ दिए गए हैं:
धम्मपद श्लोक 71 - अहिपेत त्व - मानव सिर वाला सर्प रूपी भूत;
धम्मपद श्लोक 72 - सत्तिकुतपेत त्व - लाल गर्म हथौड़ों से पीटे जा रहे बड़े सिर वाला भूत;
धम्मपद श्लोक 136 - अजगारपेत त्व - लंबे जलते शरीर वाला अजगर रूपी भूत;
धम्मपद श्लोक 281 - सुकरपेत त्व - मानव शरीर वाला सूअर के सिर का भूत;
SN2-संस्करण 2 : संयुत्त निकाय पुस्तक 2 के सूत्र 202-222 में और अधिक जानकारी।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> खेत्टुपम-पेटवत्थु-वन्नन्ना

प्रारंभ <<<<----------------------- 1.1 -------------------------->>>> अगला

1.1 खेती योग्य खेत से समानता

जब भगवान बुद्ध राजगृह (वर्तमान में बिहार, भारत में राजगीर) के पास वेलुवन मठ में कलांदक-निवापा (गिलहरी का उपवन) में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कथा सुनाई। राजगृह में महाधनसेठी नाम का एक अत्यंत धनी व्यक्ति रहता था। उसका एक ही पुत्र था, जो मिलनसार और आकर्षक था। जब वह बड़ा हुआ, तो उसके माता-पिता ने सोचा, "यदि हमारा पुत्र प्रतिदिन एक हजार खर्च करे, तो सौ वर्षों में भी यह धन समाप्त नहीं होगा।" उन्होंने उसे कोई कौशल नहीं सिखाया, यह सोचकर कि "चूंकि कौशल सीखना एक थका देने वाला परिश्रम होगा, इसलिए उसे तन-मन से अपने धन का आनंद लेने दो।" इसके बजाय, जब वह वयस्क हुआ, तो उन्होंने उसके लिए एक आकर्षक दुल्हन का चयन किया, लेकिन उसमें धर्म का कोई ज्ञान नहीं था। वह उसके साथ समय बिताता था, भोग-विलास में लिप्त रहता था, सुख-सुविधाओं की लालसा करता था। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद उसने नर्तकियों, गायकों और अन्य लोगों को दिल खोलकर दान दिया, इस प्रकार अपना धन बर्बाद कर दिया और गरीब हो गया। वह उधार लेकर किसी तरह अपना गुजारा करता था। लेकिन जब वह कर्ज नहीं ले सका और उसके लेनदार उस पर दबाव डालने लगे, तो उसने उन्हें अपना खेत, घर और अन्य संपत्ति दे दी और भिखारी बन गया, और उसी शहर में गरीबों और अनाथों के लिए बने आश्रय स्थल में रहने लगा।

एक दिन कुछ लुटेरे उससे मिले और उससे बोले, “देखो, इस कठिन जीवन से तुम्हें क्या मिलता है? तुम जवान और फुर्तीले हो। हमारे साथ चलो और चोरी करके आराम से जीवन यापन करो।” चोरों ने उसे एक बड़ा डंडा दिया; और जिस घर में उन्होंने सेंध लगाई थी, उसमें घुसते ही उन्होंने उसे प्रवेश द्वार पर खड़ा कर दिया और कहा, “अगर कोई और यहाँ आए, तो उसे मार डालो।” वह मानसिक रूप से मंदबुद्धि था और मित्र-शत्रु का भेद नहीं कर पाता था, इसलिए वह वहीं खड़ा रहा और दूसरों के आने का इंतजार करता रहा।

घर के लोग दौड़ते हुए उठे और इधर-उधर देखते हुए उन्होंने उस आदमी को दीवार के पास खड़ा देखा। "देखो, ये बदमाश और चोर आ गए हैं!" कहते हुए उन्होंने उसे पकड़ लिया और राजा के सामने लाकर कहा, "हे प्रभु, यह चोर घर में सेंध लगाते हुए पकड़ा गया है।" राजा ने नगर के पहरेदारों को आदेश दिया, "इसका सिर काट दो।" वे उसे हिरासत में लेकर फांसी के स्थान पर ले गए और फांसी के ढोल के पीछे-पीछे कोड़ों से पीटते हुए ले गए। उसी समय जनता चिल्लाई, "इस लुटेरे को इस शहर में पकड़ लिया गया है।"

उसी समय उसी शहर में, सुलासा नाम की एक नर्तकी अपने बहुमंजिला घर की खिड़की पर खड़ी थी। उसने उसे ले जाते हुए देखा, और चूंकि वह उससे पहले से परिचित थी, इसलिए उसे उस पर दया आई, जिसने इसी शहर में बहुत समृद्धि प्राप्त की थी। उसने मोदक और पानी भेजा और शहर के चौकीदार को यह संदेश भेजा, "महोदय, कृपया तब तक प्रतीक्षा करें जब तक यह व्यक्ति मोदक खाकर पानी न पी ले।"

अब इसी नगर में पूज्य मोग्गलाना (बुद्ध के प्रमुख वरिष्ठ भिक्षुओं में से एक) ने अपनी दिव्य ध्यान साधना से प्राप्त ज्ञान की सहायता से इस व्यक्ति की दुर्दशा देखी। उनका मन करुणा से भर गया और उन्होंने सोचा, “चूंकि इस व्यक्ति ने कोई पुण्य कर्म नहीं किया है, बल्कि पाप किया है, इसलिए यह नरक में जन्म लेगा; अब, यदि मैं जाकर इसे मिठाई और पेय दे दूं, तो यह पृथ्वी के देवों के बीच जन्म लेगा। मुझे इस व्यक्ति की सहायता करनी चाहिए।” तदनुसार, जब उसके लिए पेय और मिठाई लाई जा रही थी, तब वह अपराधी के सामने प्रकट हुए। वरिष्ठ भिक्षु को देखकर उनका मन शांत हो गया और उन्होंने सोचा, “यदि मुझे मृत्युदंड दिया जाना है, तो इन मिठाइयों को खाने से मुझे क्या लाभ होगा? अब ये मेरे परलोक की यात्रा के लिए भोजन बन जाएंगी।” अतः उन्होंने मिठाई (मोदक) और जल वरिष्ठ भिक्षु को दे दिया। जब मोग्गलाना ने देखा कि उसका दुख आनंद में बदल गया है, तो वह बैठ गया, खाया-पिया और फिर उठा और अपने रास्ते चला गया।

हालांकि, मुखिया उस व्यक्ति को फांसी के स्थान पर ले गया और उसका सिर काट दिया गया। बड़े मोग्गलाना के प्रति किए गए पुण्य कर्म के कारण, उन्हें अतुलनीय पुण्य प्राप्त हुआ और वे देवलोक में पुनर्जन्म के योग्य हो गए। लेकिन उस समय उनका प्रेम नर्तकी सुलासा की ओर आकर्षित हो गया, क्योंकि उन्होंने सोचा, "मुझे यह वरदान उसी की कृपा से प्राप्त हुआ है।" और इसलिए मृत्यु के समय उनका मन अपवित्र हो गया और उनका पुनर्जन्म एक निम्न (परन्तु सुखी) अवस्था में हुआ और वे जंगल में घने छायादार बरगद के पेड़ की लटकती जड़ों में वृक्ष-देव बन गए।

फिर ऐसा हुआ कि उसने नर्तकी सुलासा को उसके बगीचे में देखा और उसे अपने घर ले आया। सुलासा वहाँ एक सप्ताह तक प्रसन्नतापूर्वक रही। उसकी माता विलाप कर रही थी, इसलिए उसने उससे सुलासा को वापस ले जाने का अनुरोध किया। लौटने पर, जब लोगों ने उससे पूछा, तो उसने बताया कि वरिष्ठ भिक्षु मोग्गलाना को दान देने के कारण उस व्यक्ति को सुखद परलोक प्राप्त हुआ है। लोग आश्चर्यचकित रह गए और कहने लगे, "अरिहंत वास्तव में पुण्य कमाने का अतुलनीय क्षेत्र हैं; उनके प्रति किया गया एक छोटा सा पुण्य कर्म भी मनुष्य को देवों के बीच पुनर्जन्म दिलाता है।"

भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध को पूरी घटना सुनाई, जिन्होंने इसके स्पष्टीकरण में ये श्लोक कहे:

1. "कृषि योग्य खेतों के समान अरिहंत (मुक्त/प्रबुद्ध व्यक्ति) हैं; दानदाता किसानों के समान हैं; दान बीज के समान है; और इससे प्राप्त होने वाला फल महान है।"

2. "यह बीज और खेती की गई भूमि प्रेतों (भूतों) और दाता दोनों के लाभ के लिए है। इससे प्रेत प्रसन्न होते हैं और दाता भी इस कार्य से पुण्य में वृद्धि प्राप्त करते हैं।"

3. "इस धरती पर दान का पुण्य कर्म करके और इस प्रकार पादों का सम्मान करके, वह स्वर्ग में ही जाता है, क्योंकि उसने एक अच्छा कर्म किया है।"

प्रवचन के अंत में, मनुष्य (अब देव), सुलासा सहित चौरासी हजार प्राणी धम्म (बुद्ध द्वारा दिखाए गए धार्मिक मार्ग) में परिवर्तित हो गए।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> खेत्टुपम-पेटवत्थु-वन्नन्ना

प्रारंभ <<<<----------------------- 1.1 -------------------------->>>> अगला

1.1 खेती योग्य खेत से समानता

जब भगवान बुद्ध राजगृह (वर्तमान में बिहार, भारत में राजगीर) के पास वेलुवन मठ में कलांदक-निवापा (गिलहरी का उपवन) में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कथा सुनाई। राजगृह में महाधनसेठी नाम का एक अत्यंत धनी व्यक्ति रहता था। उसका एक ही पुत्र था, जो मिलनसार और आकर्षक था। जब वह बड़ा हुआ, तो उसके माता-पिता ने सोचा, "यदि हमारा पुत्र प्रतिदिन एक हजार खर्च करे, तो सौ वर्षों में भी यह धन समाप्त नहीं होगा।" उन्होंने उसे कोई कौशल नहीं सिखाया, यह सोचकर कि "चूंकि कौशल सीखना एक थका देने वाला परिश्रम होगा, इसलिए उसे तन-मन से अपने धन का आनंद लेने दो।" इसके बजाय, जब वह वयस्क हुआ, तो उन्होंने उसके लिए एक आकर्षक दुल्हन का चयन किया, लेकिन उसमें धर्म का कोई ज्ञान नहीं था। वह उसके साथ समय बिताता था, भोग-विलास में लिप्त रहता था, सुख-सुविधाओं की लालसा करता था। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद उसने नर्तकियों, गायकों और अन्य लोगों को दिल खोलकर दान दिया, इस प्रकार अपना धन बर्बाद कर दिया और गरीब हो गया। वह उधार लेकर किसी तरह अपना गुजारा करता था। लेकिन जब वह कर्ज नहीं ले सका और उसके लेनदार उस पर दबाव डालने लगे, तो उसने उन्हें अपना खेत, घर और अन्य संपत्ति दे दी और भिखारी बन गया, और उसी शहर में गरीबों और अनाथों के लिए बने आश्रय स्थल में रहने लगा।

एक दिन कुछ लुटेरे उससे मिले और उससे बोले, “देखो, इस कठिन जीवन से तुम्हें क्या मिलता है? तुम जवान और फुर्तीले हो। हमारे साथ चलो और चोरी करके आराम से जीवन यापन करो।” चोरों ने उसे एक बड़ा डंडा दिया; और जिस घर में उन्होंने सेंध लगाई थी, उसमें घुसते ही उन्होंने उसे प्रवेश द्वार पर खड़ा कर दिया और कहा, “अगर कोई और यहाँ आए, तो उसे मार डालो।” वह मानसिक रूप से मंदबुद्धि था और मित्र-शत्रु का भेद नहीं कर पाता था, इसलिए वह वहीं खड़ा रहा और दूसरों के आने का इंतजार करता रहा।

घर के लोग दौड़ते हुए उठे और इधर-उधर देखते हुए उन्होंने उस आदमी को दीवार के पास खड़ा देखा। "देखो, ये बदमाश और चोर आ गए हैं!" कहते हुए उन्होंने उसे पकड़ लिया और राजा के सामने लाकर कहा, "हे प्रभु, यह चोर घर में सेंध लगाते हुए पकड़ा गया है।" राजा ने नगर के पहरेदारों को आदेश दिया, "इसका सिर काट दो।" वे उसे हिरासत में लेकर फांसी के स्थान पर ले गए और फांसी के ढोल के पीछे-पीछे कोड़ों से पीटते हुए ले गए। उसी समय जनता चिल्लाई, "इस लुटेरे को इस शहर में पकड़ लिया गया है।"

उसी समय उसी शहर में, सुलासा नाम की एक नर्तकी अपने बहुमंजिला घर की खिड़की पर खड़ी थी। उसने उसे ले जाते हुए देखा, और चूंकि वह उससे पहले से परिचित थी, इसलिए उसे उस पर दया आई, जिसने इसी शहर में बहुत समृद्धि प्राप्त की थी। उसने मोदक और पानी भेजा और शहर के चौकीदार को यह संदेश भेजा, "महोदय, कृपया तब तक प्रतीक्षा करें जब तक यह व्यक्ति मोदक खाकर पानी न पी ले।"

अब इसी नगर में पूज्य मोग्गलाना (बुद्ध के प्रमुख वरिष्ठ भिक्षुओं में से एक) ने अपनी दिव्य ध्यान साधना से प्राप्त ज्ञान की सहायता से इस व्यक्ति की दुर्दशा देखी। उनका मन करुणा से भर गया और उन्होंने सोचा, “चूंकि इस व्यक्ति ने कोई पुण्य कर्म नहीं किया है, बल्कि पाप किया है, इसलिए यह नरक में जन्म लेगा; अब, यदि मैं जाकर इसे मिठाई और पेय दे दूं, तो यह पृथ्वी के देवों के बीच जन्म लेगा। मुझे इस व्यक्ति की सहायता करनी चाहिए।” तदनुसार, जब उसके लिए पेय और मिठाई लाई जा रही थी, तब वह अपराधी के सामने प्रकट हुए। वरिष्ठ भिक्षु को देखकर उनका मन शांत हो गया और उन्होंने सोचा, “यदि मुझे मृत्युदंड दिया जाना है, तो इन मिठाइयों को खाने से मुझे क्या लाभ होगा? अब ये मेरे परलोक की यात्रा के लिए भोजन बन जाएंगी।” अतः उन्होंने मिठाई (मोदक) और जल वरिष्ठ भिक्षु को दे दिया। जब मोग्गलाना ने देखा कि उसका दुख आनंद में बदल गया है, तो वह बैठ गया, खाया-पिया और फिर उठा और अपने रास्ते चला गया।

हालांकि, मुखिया उस व्यक्ति को फांसी के स्थान पर ले गया और उसका सिर काट दिया गया। बड़े मोग्गलाना के प्रति किए गए पुण्य कर्म के कारण, उन्हें अतुलनीय पुण्य प्राप्त हुआ और वे देवलोक में पुनर्जन्म के योग्य हो गए। लेकिन उस समय उनका प्रेम नर्तकी सुलासा की ओर आकर्षित हो गया, क्योंकि उन्होंने सोचा, "मुझे यह वरदान उसी की कृपा से प्राप्त हुआ है।" और इसलिए मृत्यु के समय उनका मन अपवित्र हो गया और उनका पुनर्जन्म एक निम्न (परन्तु सुखी) अवस्था में हुआ और वे जंगल में घने छायादार बरगद के पेड़ की लटकती जड़ों में वृक्ष-देव बन गए।

फिर ऐसा हुआ कि उसने नर्तकी सुलासा को उसके बगीचे में देखा और उसे अपने घर ले आया। सुलासा वहाँ एक सप्ताह तक प्रसन्नतापूर्वक रही। उसकी माता विलाप कर रही थी, इसलिए उसने उससे सुलासा को वापस ले जाने का अनुरोध किया। लौटने पर, जब लोगों ने उससे पूछा, तो उसने बताया कि वरिष्ठ भिक्षु मोग्गलाना को दान देने के कारण उस व्यक्ति को सुखद परलोक प्राप्त हुआ है। लोग आश्चर्यचकित रह गए और कहने लगे, "अरिहंत वास्तव में पुण्य कमाने का अतुलनीय क्षेत्र हैं; उनके प्रति किया गया एक छोटा सा पुण्य कर्म भी मनुष्य को देवों के बीच पुनर्जन्म दिलाता है।"

भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध को पूरी घटना सुनाई, जिन्होंने इसके स्पष्टीकरण में ये श्लोक कहे:

1. "कृषि योग्य खेतों के समान अरिहंत (मुक्त/प्रबुद्ध व्यक्ति) हैं; दानदाता किसानों के समान हैं; दान बीज के समान है; और इससे प्राप्त होने वाला फल महान है।"

2. "यह बीज और खेती की गई भूमि प्रेतों (भूतों) और दाता दोनों के लाभ के लिए है। इससे प्रेत प्रसन्न होते हैं और दाता भी इस कार्य से पुण्य में वृद्धि प्राप्त करते हैं।"

3. "इस धरती पर दान का पुण्य कर्म करके और इस प्रकार पादों का सम्मान करके, वह स्वर्ग में ही जाता है, क्योंकि उसने एक अच्छा कर्म किया है।"

प्रवचन के अंत में, मनुष्य (अब देव), सुलासा सहित चौरासी हजार प्राणी धम्म (बुद्ध द्वारा दिखाए गए धार्मिक मार्ग) में परिवर्तित हो गए।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> सुकर्मुख-पेटवत्थु-वन्नन्ना

पिछला <<<<----------------------- 1.2 -------------------------->>>> अगला

1.1 सूअर के सिर वाला भूत

जब गुरु (भगवान बुद्ध) राजगृह (राजगीर) के वेलुवन मठ में कलांदक-निवापा (गिलहरियों का उपवन) में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने सूअर के सिर वाले भूत की यह कहानी सुनाई। एक समय की बात है, पूर्व बुद्ध भगवान कश्यप के समय में, एक भिक्षु ने अपने शरीर को पापों से वश में कर लिया, लेकिन वाणी पर संयम न होने के कारण उसने अन्य भिक्षुओं का अपमान किया। मृत्यु के बाद उसका पुनर्जन्म नरक में हुआ। एक बुद्ध काल तक वहाँ जलने के बाद, वह वहाँ से निकलकर वर्तमान बुद्ध काल में राजगृह के पास, गिद्ध पर्वत (गिझकुटा पर्वत) की तलहटी में पुनर्जन्म लिया। उसी अपराध के फलस्वरूप, वह भूख और प्यास से ग्रस्त हो गया। उसका शरीर स्वर्ण रंग का था, परन्तु उसका मुँह सूअर के समान था।

उस समय पूज्य वृद्ध भिक्षु नारद गिद्ध शिखर पर ठहरे हुए थे। वे भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सुबह बहुत जल्दी भिक्षा मांगने के लिए निकल पड़े। राजगृह नगर जाते समय उन्होंने रास्ते में एक प्रेत (भूत) को देखा। उससे उसके कर्म के बारे में पूछने पर उन्होंने निम्नलिखित श्लोक कहे:

1. "तुम्हारा शरीर पूरी तरह से सुनहरा है, जिससे हर अंग प्रकाशित होता है; परन्तु तुम्हारा मुख तो सूअर जैसा है। तुमने पिछले जन्मों में क्या कर्म किए हैं?"

2. "मेरा शरीर तो वश में था, पर मेरी वाणी पर कोई नियंत्रण नहीं था। इसीलिए, हे नारद, मेरा रूप ऐसा है जैसा आप देख रहे हैं।"

पेटा ने बुजुर्ग को यह सलाह भी दी:

3. "तो नारद, मैं स्वयं तुम्हें यह बताता हूँ जो तुम स्वयं देख रहे हो। अपने मुख से बुराई मत करो, अन्यथा तुम सूअर के मुख के समान हो जाओगे।"

तब पूज्य नारद, राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद, भिक्षा एकत्र करके लौटे और उन्होंने यह घटना गुरु (बुद्ध) को सुनाई। बुद्ध ने उनसे कहा कि उन्होंने भी पहले उस पेटा को देखा था और इस कहानी का उपयोग धम्म की शिक्षा देने के लिए किया था।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> पूतिमुख-पेटवत्थु-वन्नन्ना

पिछला <<<<----------------------- 1.3 -------------------------->>>> अगला

1.3 सड़े हुए मुंह वाला भूत

जब गुरु (बुद्ध) वेलुवाना मठ में स्थित गिलहरी अभयारण्य (कलंदकनिवापा) में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई:

बहुत समय पहले, भगवान कश्यप (पूर्वज बुद्ध) के समय में, दो अच्छे परिवार के पुरुषों ने उनके मार्गदर्शन में सांसारिक जीवन त्याग दिया। नैतिकता का पालन करते हुए और कठोर तपस्या करते हुए, वे एक गाँव में एक बस्ती में सौहार्दपूर्वक रहने लगे।

फिर एक दुष्ट स्वभाव का भिक्षु, जिसे निंदा करने में आनंद आता था, उनके आश्रम में आया। भिक्षुओं ने उसका सत्कार किया और दूसरे दिन उसके साथ भिक्षा मांगने गए। वहाँ के लोग भिक्षुओं की पूरी आज्ञा का पालन करते हुए उन्हें चावल का दलिया, उबले चावल और अन्य भोजन परोस रहे थे। भिक्षु ने सोचा, "यह गाँव कितना अच्छा है, भिक्षा मांगने के लिए एक बढ़िया स्थान है, और यहाँ के लोग आस्थावान होकर स्वादिष्ट भोजन देते हैं।

यहाँ छाया और पानी भी है। यहाँ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया जा सकता है; लेकिन तब तक नहीं जब तक ये भिक्षु यहाँ निवास करते रहेंगे। अच्छा, तो मैं ऐसा कुछ करूँगा जिससे वे फिर कभी यहाँ न आएँ।" और उसने उन दोनों की आपस में निंदा कर दी। वे दोनों धीरे-धीरे संदेह करने लगे और सोचने लगे, "शायद ऐसा ही हो," और उनका विश्वास टूट गया। उन्होंने एक-दूसरे से दूरी बना ली और जल्द ही, बिना एक-दूसरे को बताए, दोनों किसी बेहतर स्थान पर चले गए।

लोगों ने निंदा करने वाले भिक्षु से पूछा, "आदरणीय महोदय, बड़े भिक्षु कहाँ गए हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "वे सारी रात आपस में झगड़ते रहे; मेरी बात अनसुनी करते हुए वे चले गए, जबकि मैंने कहा था, 'झगड़ा मत करो, मिलजुल कर रहो'; और मैंने यह भी कहा था, 'ऐसे लोग केवल बड़े झगड़ों से ही प्रसन्न होते हैं'।" तब लोगों ने कहा, "बड़ों को जाने दो; लेकिन हमारे भले के लिए, तुम यहीं रहो और कोई पछतावा मत करो।" उन्होंने यह कहते हुए सहमति जताई, "ठीक है।" वहाँ रहते हुए कुछ दिनों बाद उन्होंने सोचा, "आवास के लालच में मैंने इन भिक्षुओं को भगा दिया। हाय! मैंने बुरा किया है।" गहरे पश्चाताप से व्याकुल होकर और बीमार पड़कर, थोड़े ही समय में उनकी मृत्यु हो गई और उनका पुनर्जन्म अविची नरक में हुआ। बाद में, बुद्ध काल में उनका पुनर्जन्म राजगृह से कुछ ही दूरी पर एक सड़े हुए मुँह वाले प्रेत के रूप में हुआ। उनका शरीर सुनहरे रंग का था, लेकिन उनके मुँह से जगह-जगह से कीड़े निकल रहे थे, जो उसे खा रहे थे और उससे दुर्गंध आ रही थी। तब गिद्धों के पर्वत (गिज्जकूट) से आदरणीय नारद ने उसे देखा और इस श्लोक में उससे उसके कर्मों के बारे में पूछा:

1. "तुम्हारा रंग-रूप सुंदर और दिव्य है; तुम हवा में तैरते हुए खड़े हो। फिर भी तुम्हारे मुंह में कीड़े हैं जिससे दुर्गंध आ रही है; तुमने अतीत में क्या कर्म किए थे?"

पेटा (भूत) ने उत्तर दिया

2. "मैं एक भिक्षु था, लेकिन दुष्ट और चुभने वाली वाणी का भक्त था; यद्यपि मैं तपस्या में रहता था, फिर भी मैंने अपनी वाणी पर नियंत्रण नहीं रखा; अतः तपस्या से मुझे अपना रंग तो प्राप्त हुआ, परन्तु चुभने वाली वाणी के कारण मेरी वाणी सड़ गई।"

3. "अब यह बात आपने स्वयं देख ली है, नारद। जो दयालु और गुणी होते हैं, वे कहते हैं: 'चुगली मत करो और झूठ मत बोलो। तब तुम यक्ष (परमेश्वर, लेकिन निम्न श्रेणी का) बन सकते हो और अपनी इच्छानुसार आनंद ले सकते हो।"
टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> पित्थाधितलिक-पेटवत्थु-वन्नन्ना

पिछला <<<<----------------------- 1.4 ------------------------->>>> अगला

1.4 बिस्किट गुड़िया

जब गुरु (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन वन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह घटना सुनाई:

एक नर्स ने अनाथपिंडिका (एक धनी व्यक्ति और बुद्ध के एक गृहस्थ अनुयायी) की पोती को खेलने के लिए बिस्कुट से बनी गुड़िया दी थी। एक दिन बच्ची से वह गुड़िया गिर गई और टूट गई। वह रोते हुए चिल्लाई, "मेरी बेटी मर गई!" और कोई भी नौकर उसे शांत नहीं कर सका।

उस समय भगवान बुद्ध गृहस्थ अनाथपिंडिका के घर में थे, जो उनके पास ही बैठे थे। दाई बच्ची को लेकर धनी व्यक्ति के पास गई, जिसने पूछा, "बच्ची क्यों रो रही है?" उसने बच्ची को अपनी गोद में लिया और यह कहकर उसे प्रसन्न किया, "मैं तुम्हें एक और उपहार दूंगा।" तब अनाथपिंडिका ने भगवान बुद्ध से कहा, "आदरणीय महोदय, मेरी पोती के लिए, केवल उस बिस्किट की गुड़िया के कारण, मैं उसे उपहार देना चाहता हूँ। इसलिए कृपया कल पाँच सौ भिक्षुओं के साथ मेरे घर आइए।" भगवान बुद्ध मान गए।

तदनुसार भगवान बुद्ध आए, और भोजन के बाद उन्होंने धन्यवाद दिया और ये शब्द कहे:

1. "उदार व्यक्ति को अपने पूर्वजों और दिवंगत आत्माओं या देवी-देवताओं को जितनी चिंता हो, उतनी चिंता के साथ दान देना चाहिए।"

2. "और विश्व के चार महान संरक्षक, दिव्य राजा कुबेर, धतरत्थ, विरुपाक्खा और विरुलक को; इसी से उनकी पूजा की जाती है और दान देने वालों को प्रतिफल अवश्य मिलता है।"

3. "केवल रोना-धोना, शोक करना या किसी भी प्रकार का विलाप करना व्यर्थ है; यह सब पेटों के लिए किसी काम का नहीं है। उनके रिश्तेदार ऐसी प्रथा का पालन करते हैं।"

4. "लेकिन वास्तव में संघ (भिक्षुओं के संप्रदाय) को दिया गया यह उपहार अच्छी तरह से स्वीकार किया जाता है, तत्काल प्रभाव से दिवंगत आत्माओं और पादों के लाभ के लिए लंबे समय तक काम आता है और बहुत फलदायी होता है।"

इस प्रकार भगवान बुद्ध ने पादों को प्रसन्न करने का उपदेश दिया और दान लेकर विदा हुए। धनी व्यक्ति की पत्नी और उसके रिश्तेदारों ने भी उनका अनुसरण किया। उन्होंने एक महीने तक बड़े-बड़े दान दिए। यह सुनकर कोसल के राजा पसेन्दि (प्रसेनजीत) ने भी सभा को उदारतापूर्वक दान दिया। जब नागरिकों ने यह देखा, तो उन्होंने भी राजा की तरह पूरे एक महीने तक दान दिया। यह उदारता एक साधारण बिस्किट की गुड़िया से उत्पन्न हुई थी।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> तिरोकुट्टा- पेटवत्थु-वन्नना

पिछला <<<<----------------------- 1.5 -------------------------->>>> अगला

1.5 पेटा (भूत) दीवारों के बाहर

जब गुरु (बुद्ध) राजगृह में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई:

बानवे कल्प (काल) पूर्व काशी नामक एक नगर था। वहाँ राजा जयसेना शासन करते थे; उनकी रानी का नाम सिरिमा था। उनके पुत्र फुस्सा (दीपांकर के बाद 18वें बुद्ध) ने परम ज्ञान प्राप्त किया। अब राजा जयसेना को घमंड होने लगा, वे सोचने लगे, "चूँकि मेरे पुत्र, जो बुद्ध के रूप में जन्मे हैं, ने महान त्याग किया है, इसलिए बुद्ध केवल मेरे हैं, धम्म केवल मेरे हैं, संघ केवल मेरे हैं।" वे हर समय अकेले ही फुस्सा बुद्ध की सेवा में रहते थे और दूसरों को कोई अवसर नहीं देते थे।

फुस्सा बुद्ध के तीन छोटे भाई, जो अलग-अलग माता से जन्मे थे, सोचने लगे, "बुद्ध वास्तव में समस्त विश्व के कल्याण के लिए जन्म लेते हैं, न कि केवल एक व्यक्ति के हित में। अब हमारे पिता दूसरों को कोई अवसर नहीं देते। हम भगवान (फुस्सा) बुद्ध और उनके संघ की सेवा कैसे कर सकते हैं? चलो, कुछ रणनीति बनाते हैं।" इसलिए उन्होंने सीमावर्ती क्षेत्र में एक प्रकार का उपद्रव किया। जब राजा को इस उपद्रव के बारे में पता चला, तो उन्होंने इन तीनों पुत्रों को सीमा पर शांति स्थापित करने के लिए भेजा। उन्होंने ऐसा किया, और उनके लौटने पर, राजा ने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें वरदान देते हुए कहा, "जो चाहो ले लो।" उन्होंने कहा, "हम भगवान (फुस्सा) बुद्ध की सेवा करना चाहते हैं।" राजा ने यह कहते हुए मना कर दिया, "कुछ और ले लो।" उन्होंने उत्तर दिया, "हमें किसी और चीज की परवाह नहीं है, कृपया हमें कम से कम सात वर्षों तक उनकी सेवा करने दें।" राजा ने कहा, "नहीं।" तब उन्होंने छह वर्ष, फिर पांच, फिर चार, फिर तीन, फिर दो वर्ष, फिर एक वर्ष का वरदान मांगा, फिर भी राजा ने मना कर दिया। फिर उन्होंने सात महीने, फिर छह महीने, पांच महीने, चार महीने मांगे। अंत में राजा तीन महीने के लिए सहमत हो गया और बोला, "ठीक है, आप अपनी मर्जी से चुन सकते हैं।"

वे भगवान (फुस्सा) बुद्ध के पास गए और बोले, "हे पूज्यवर, हम तीन महीने भगवान की सेवा करना चाहते हैं। कृपया हमें वर्षा ऋतु के तीन महीने (अवस्सा) हमारे साथ बिताने की अनुमति दें।" भगवान बुद्ध (फुस्सा) सहमत हो गए। तीनों पुत्रों ने स्वयं प्रांत के नियुक्त अधिकारी को लिखित संदेश भेजा, जिसमें लिखा था, "इन तीन महीनों के दौरान हमें भगवान की सेवा करनी है; शुरुआत एक मठ से करनी है; सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है।" फिर उन्होंने भगवान बुद्ध (फुस्सा) और भिक्षु संघ की पूरी श्रद्धा से सेवा की। जब उन्होंने प्रांत के शासक के रूप में मठ का समर्पण कर दिया, तो उन्होंने वर्षा ऋतु के तीन महीने (अवस्सा) का पालन किया।

उनमें से एक राजकोषाध्यक्ष, गृहस्थ का पुत्र, एक अनुयायी, अपनी पत्नी सहित आस्थावान हो गया। उसने विधिवत रूप से भिक्षु संघ को दान दिया, जिसके प्रमुख (फुस्सा) बुद्ध थे। उस व्यक्ति को प्रांत का प्रमुख नियुक्त किया गया और उसने उसके उदाहरण का अनुसरण करते हुए ग्यारह हजार लोगों के साथ पूरे आदर के साथ दान दिया। उस अवसर पर कुछ लोग मन में आहत हुए और दान देने में बाधा उत्पन्न करते हुए, उन्होंने स्वयं दान खा लिया और भोजन कक्ष को आग लगा दी। राजा के पुत्रों ने अपने सेवकों के साथ भगवान बुद्ध (फुस्सा) को आदर देकर विदाई दी और सीधे अपने पिता के पास चले गए। उनके लौटने पर भगवान बुद्ध (फुस्सा) निर्वाण (मुक्ति) प्राप्त कर चुके थे; राजा के पुत्र, राजकोषाध्यक्ष और उनके सेवक समय आने पर स्वर्ग में पुनर्जन्म लेकर मर गए, परन्तु मन में आहत हुए लोग नरक में पुनर्जन्म लेकर मरे। इस प्रकार 91 कल्प (काल/चक्र) बीत गए, क्योंकि ये दोनों अवस्थाएँ क्रमशः स्वर्ग से स्वर्ग और नरक से नरक में पुनर्जन्म लेती रहीं। फिर उसी शुभ चक्र में, भगवान कश्यप (एक अन्य बुद्ध) के समय, अपराध करने वाले लोग प्रेतों के बीच पुनर्जन्म लेते रहे। उस समय, लोग स्वयं अपने प्रेत पूर्वजों के लाभ के लिए दान देते थे और कहते थे, "यह हमारे रिश्तेदारों के लिए है।" उन प्रेतों को सुख प्राप्त हुआ। तब इन प्रेतों ने भी यह देखा और कश्यप (पूर्व बुद्ध) के पास जाकर उनसे पूछा, "हे पूज्यवर, अब हम भी ऐसा सुख कैसे प्राप्त कर सकते हैं?" भगवान (बुद्ध कस्सपा) ने उत्तर दिया, "इस समय तुम इसे प्राप्त नहीं कर सकते, परन्तु आने वाले समय में गौतम (वर्तमान बुद्ध) नामक एक सर्वव्यापी बुद्ध होंगे; उस भगवान बुद्ध के समय में बिम्बिसार नामक एक राजा होगा, जो एक

चक्र पूरा होने के बाद तुम्हारा रिश्तेदार होगा। वह बुद्ध को दान देगा और उसका श्रेय तुम्हें देगा; तब तुम (सुख) प्राप्त करोगे।" अब जब यह कहा गया, तो पादों ने सोचा मानो कहा गया हो, "कल तुम्हें यह प्राप्त होगा।"

फिर इस बुद्ध-काल के बाद, (वर्तमान गौतम) भगवान बुद्ध का जन्म हुआ; तीनों राजकुमार भी एक हजार पुरुषों के साथ देवलोक से निकलकर मगध राज्य में ब्राह्मण (पुजारी) परिवारों में पुनर्जन्म लेकर आए। समय बीतने के साथ, सांसारिक जीवन का त्याग करके, तीनों जटाधारी तपस्वी बन गए और गयासिसा में रहने लगे; प्रांत के शासक बिम्बिसार राजा बने; गृहस्थ के पुत्र, राजकोषीय कोषाध्यक्ष, विशाखा नामक एक धनी व्यक्ति बने, उनकी पत्नी एक धनी व्यक्ति की पुत्री बनीं और धम्मदिन्ना के नाम से जानी गईं; लेकिन शेष लोग राजा के सेवक बन गए। अब बुद्ध (गौतम) संसार में आए और ज्ञान प्राप्त किया। फिर सात सप्ताह बाद, वे बनारस आए और वहाँ धर्म (मार्ग) का प्रचार शुरू किया। उन्होंने पाँच के समूह से शुरुआत करते हुए तीनों तपस्वियों को उपदेश दिया और अंततः एक हजार अनुयायी प्राप्त किए। फिर वह राजगृह गया और अंग (बंगाल) और मगध (बिहार) में रहने वाले ग्यारह करोड़ ब्राह्मणों और गृहस्थों के साथ प्रथम ज्ञानोदय (सोतापत्ति) के फलों में राजा बिम्बिसार की स्थापना की।

फिर अगले दिन राजा ने बुद्ध और उनके अनेक अनुयायियों को दान के रूप में भोजन के लिए आमंत्रित किया। बुद्ध और उनके अनुयायियों को स्वर्ग के स्वामी (देवदूतों) सक्का (इंद्र) द्वारा राजा के महल में ले जाया गया, जिन्होंने मनुष्य का रूप धारण किया और भगवान बुद्ध की स्तुति गाई।

प्रेतों (भूतों) ने घर को घेर लिया, यह सोचकर कि "अब राजा हमारे लिए दान देंगे"। राजा ने जब दान दिया, तो उनके मन में केवल यही विचार आया, "पता नहीं भगवान बुद्ध कहाँ ठहरे होंगे?" इसलिए उन्होंने दान का श्रेय किसी को नहीं दिया। इस प्रकार, दान न मिलने के कारण प्रेतों में निराशा छा गई और उन्होंने रात में राजा के निवास पर भयानक चीख-पुकार मचाई। व्याकुल राजा ने भोर होते ही भगवान बुद्ध को सारी घटना बताई और पूछा, "क्या आपने ऐसी कोई आवाज सुनी? हे पूज्यवर, अब मुझे डर है कि मेरा क्या होगा।" भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, "महान महाराज, भयभीत न हों; आपको कोई विपत्ति नहीं आएगी, बल्कि समृद्धि ही आपका मार्ग प्रशस्त करेगी। ये आपके ही लोग हैं जो प्रेतों (भूतों) के बीच पुनर्जन्म लेकर आए हैं। एक बुद्ध काल से ये भटक रहे हैं, केवल इसी आशा में कि 'भगवान बुद्ध को दान देंगे और पुण्य के रूप में इसका श्रेय हमें देंगे'।" कल जब आपने दान दिया, तो आपने उसका श्रेय हस्तांतरित नहीं किया। परिणामस्वरूप, वे निराश हो गए और रोना रोए। राजा ने कहा, "हे पूज्यवर, अब वे दान के रूप में दी गई वस्तु को कैसे प्राप्त कर सकते हैं?" बुद्ध ने कहा, "जी हाँ, महाराज।" राजा ने कहा, "तो हे पूज्यवर, कल के लिए भगवान बुद्ध का निमंत्रण स्वीकार कीजिए; मैं उन्हें दान का पुण्य हस्तांतरित कर दूंगा।" भगवान बुद्ध सहमत हो गए।

तब राजा ने उदारतापूर्वक दान की व्यवस्था की और भगवान बुद्ध को समय की सूचना दी, जो राजमहल में आए। पेटा लोग यह सोचकर आए कि "आज हमें कुछ मिलेगा", और महल की दीवारों के बाहर खड़े हो गए। तब भगवान बुद्ध ने ऐसा किया कि वे सभी राजा को दिखाई देने लगे। जब राजा ने उन्हें स्नान करने के लिए जल दिया, तो उन्होंने "यह मेरे सगे-संबंधियों (पेटाओं) के लिए हो" कहकर उन्हें पुण्य प्रदान किया। तुरंत ही पेटाओं के लिए कमलों और जल लिली से भरा एक कमल-कुंड प्रकट हुआ। उन्होंने वहाँ स्नान किया और जल पिया, और कष्ट, थकान और प्यास से मुक्त होकर वे स्वर्ण रंग के हो गए। राजा ने चावल, दलिया और ठोस एवं नरम भोजन वितरित किया और दान का पुण्य फिर से पेटाओं को दिया। तुरंत ही पेटाओं को दिव्य भोजन प्राप्त हुआ, जिसे उन्होंने आनंदपूर्वक खाया। राजा ने वस्त्र और आवास दान किए और दान का पुण्य फिर से पेटाओं को दिया। उनके लिए देव वस्त्र, देव भवन, पलंग, आवरण और आभूषण अस्तित्व में आए। भगवान बुद्ध ने निश्चय किया कि उनका यह सारा आनंद राजा को प्रकट हो, जिसे देखकर राजा अत्यंत प्रसन्न हुए। फिर भगवान बुद्ध ने भोजन करने के बाद, आमंत्रित किए जाने पर, राजा बिम्बिसार को धन्यवाद देने के लिए, दीवारों के बाहर रहने वाले प्रेतों (भूतों) की कहानी सुनाई।

1. "वे दीवारों के बाहर, खुले स्थानों पर और चौराहों पर खड़े हैं; वे अपने घर जाकर दरवाज़े के चौखटों पर खड़े हैं।"

2. "यद्यपि भरपूर मात्रा में भोजन और पेय पदार्थ, कठोर और नरम, परोसे जाते हैं, फिर भी इन प्राणियों के कार्यों के कारण किसी को इनकी आवश्यकता नहीं होती।"

3. "दयालु लोग उचित समय पर अपने सगे-संबंधियों को शुद्ध, उत्तम और उपयुक्त भोजन और पेय देते हैं (इन शब्दों के साथ) 'यह हमारे सगे-संबंधियों के लिए हो; हमारे पूर्वज धन्य हों!' "

4. "और वहाँ एकत्रित होकर, एकत्रित हुए परिजनों की दिवंगत आत्माएँ प्रचुर भोजन और पेय देखकर बहुत प्रसन्न हुईं और कहने लगीं:"

5. "हमारे उन सगे-संबंधियों की जय हो जिनके माध्यम से हमें प्राप्त होता है। हमें भक्ति दिखाई गई है, और दान देने वालों को पुरस्कार अवश्य मिलता है।"

6. "वहाँ (परलोक में) न तो खेती होती है, न ही गाय चराई; न ही यहाँ की तरह व्यापार होता है, न ही सोने का लेन-देन होता है।"

7. "यहाँ से प्राप्त उपहारों से परलोक में रहने वाले मृत आत्माएँ अपना जीवन यापन करती हैं। जैसे ऊँचाई से बरसा जल नीचे भूमि पर बहता है, वैसे ही यहाँ से प्राप्त उपहारों से परलोक में रहने वाले मृत आत्माएँ अपना जीवन यापन करती हैं।"

8. " 'जैसे पानी की भरी धाराएँ सागर को भर देती हैं, वैसे ही यह उपहार पेटा पक्षियों का सहारा बनता है' "

9. "मेरे सगे-संबंधियों और साथियों ने मुझे दिया, मेरे लिए काम किया। इसलिए, अतीत में किए गए कार्यों को याद करते हुए, प्रत्येक व्यक्ति पेटा को दान दे।"

10. "केवल रोना, शोक करना या विलाप करना व्यर्थ है; यह सब दिवंगत व्यक्ति के लिए कोई सहायता नहीं करता। इस तरह की प्रथाएँ तो परिजनों द्वारा ही अपनाई जाती हैं।"

11. "लेकिन वास्तव में यह दान, जो संघ (भिक्षुओं के संप्रदाय) में दिया जाता है और सुस्थापित है, दिवंगत आत्मा के लाभ के लिए तत्काल प्रभाव से, दीर्घकालिक रूप से कार्य करता है।"

12 " 'अब यह सगे-संबंधियों के लिए निर्धारित कर्तव्य है; इसके अलावा, पादों के प्रति उच्च श्रद्धा अर्पित की गई है, और भिक्षुओं को शक्ति प्रदान की गई है। आपने कम अच्छा कार्य नहीं किया है।' "

प्रवचन के अंत में, चौरासी हजार लोगों को धम्म का ज्ञान प्राप्त हुआ, जिनकी समझ मानो प्रेतों के लोक में पुनर्जन्म की घटना से शुरू हुई थी। उनके हृदय श्रद्धा से भर गए और उन्होंने सच्चे मन से प्रयास किए। अगले दिन, भगवान बुद्ध ने देवताओं और मनुष्यों को "दीवारों के बाहर" का यही प्रवचन दिया। इस प्रकार सात दिनों तक इस धम्म के प्रति आस्था का ऐसा ही प्रसार हुआ।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> पंच-पुट्टा-खड़क-पेटिवत्थु-वन्नना

पिछला <<<<------------------------ 1.6 -------------------------->>>> अगला

1.6 पाँच बच्चों को भक्षक

जब गुरु (बुद्ध) सावत्थी में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कथा सुनाई। सावत्थी से कुछ ही दूरी पर एक गाँव में एक जमींदार की पत्नी बांझ थी। उसके रिश्तेदारों ने कहा, "हम तुम्हारे लिए दूसरी लड़की ला देते हैं।" पत्नी के प्रति प्रेम के कारण वह ऐसा करने को तैयार नहीं था। जब उसकी पत्नी को इस बात का पता चला, तो उसने अपने पति से दोबारा शादी करने और वंश को न तोड़ने का आग्रह किया। लेकिन जब नई पत्नी गर्भवती हुई, तो ईर्ष्या से भरी बांझ पत्नी ने एक व्यक्ति को भोजन और पेय पदार्थ देकर उसका गर्भपात करवा दिया। दूसरी पत्नी ने अपनी माँ को यह बात बताई, जिसने अपने रिश्तेदारों को बुलाया और उन्होंने बांझ पत्नी से कहा, "तुमने उसके अजन्मे बच्चे की मृत्यु का कारण बनी हो।" उसने उत्तर दिया, "मैं दोषी नहीं हूँ।" रिश्तेदारों ने कहा, "यदि तुम दोषी नहीं हो, तो शपथ लो।" उसने शपथ ली कि यदि वह दोषी है, तो वह नग्न और बदसूरत रूप वाली, दुर्गंधयुक्त और सड़ी हुई साँसों वाली एक प्रेतात्मा बन जाएगी। मक्खियों से ढकी हुई, वह सुबह होते ही पांच बेटों को जन्म देती थी लेकिन उन सभी को खा जाती थी, और शाम को भी ऐसा ही होता था।

कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गई और उसी कस्बे से कुछ ही दूरी पर एक बदसूरत पेटी के रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ। उसी समय, आठ वृद्ध भिक्षु जो वर्षा ऋतु (वस्सा) प्रांत में बिता रहे थे और गुरु (बुद्ध) के दर्शन के लिए श्रावस्ती जा रहे थे, उसी गाँव से कुछ ही दूरी पर स्थित एक छायादार और जलयुक्त वन में पहुँचे। तब पेटी उन वृद्ध भिक्षुओं के सामने प्रकट हुई, जिनमें से एक ने उससे पूछा:

1. "तुम नग्न और बदसूरत हो; तुम्हारे मुंह से दुर्गंध और सड़ी हुई बदबू निकलती है; तुम मक्खियों से ढके हुए हो। अब तुम कौन हो जो यहाँ खड़े हो?"

पेटी:

2. "मैं, आदरणीय महोदय, एक पेटी हूँ, यमलोक का एक दुखी निवासी। क्योंकि मैंने एक दुष्ट कर्म किया था, इसलिए मैं पेटा (भूत) लोक में चला गया

3. "भोर होते ही मैं पाँच पुत्रों को जन्म देती हूँ, शाम को फिर पाँच और पुत्रों को, जिन्हें मैं खा जाती हूँ; फिर भी ये मेरे लिए पर्याप्त नहीं हैं।"

4. "मेरा हृदय भूख से झुलस रहा है और धुआँ उगल रहा है; मुझे पीने के लिए पानी नहीं मिल रहा है। देखो, मुझ पर विपत्ति आ पड़ी है।"

जब बुजुर्ग ने यह सुना, तो उसने उससे पूछा:

5. "अब शरीर, वाणी और मन से कौन सा दुष्ट कर्म किया गया? किस अपराध के प्रतिशोध में तुम अपने पुत्रों का मांस खाते हो?"

तब उस लड़की ने बुजुर्ग को बताया कि उसने क्या किया था:

6. "मेरे पति की दूसरी पत्नी गर्भवती थी, और मैंने उसके विरुद्ध दुष्टता की योजना बनाई; मैंने स्वयं कुटिल इरादे से उसके अजन्मे बच्चे का गर्भपात करवा दिया।"

7. "जब वह (भ्रूण) दो महीने का था, तब उसमें से रक्तस्राव हुआ। तब उसकी माँ क्रोधित होकर अपने रिश्तेदारों को मेरे पास लाई। और उसने मुझे अपशब्द कहे और मेरी निंदा भी करवाई।"

8. "मैंने, हाँ मैंने, वह भयानक शपथ झूठी खाई थी: 'यदि मेरे द्वारा किया गया हो तो क्या मैं बच्चों का मांस खा सकता हूँ?'"

9. "गर्भपात के कृत्य और झूठ दोनों के परिणामस्वरूप, मैं अतीत के रक्त से सने बच्चों का मांस खाता हूँ।"

वृद्धजनों को उस पर दया आ गई और वे उस जमींदार के घर गए। उन्होंने जमींदार से विनती की कि वह उन्हें दिए गए दान का पुण्य उस बेटी को दे दे। देखते ही देखते, बेटी अपने कष्टों से मुक्त हो गई और उसे अपार सुख प्राप्त हुआ। रात में उसने अपने पति को दर्शन दिए। तब वृद्धजन समय आने पर श्रावस्ती आए और उन्होंने यह बात भगवान बुद्ध को बताई, जिन्होंने उन्हें इस विषय में धर्म का उपदेश दिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> सत्त-पुट्टा-खड़क-पेटिवत्तु-वन्नन्ना

पिछला <<<<----------------------- 1.7 -------------------------->>>> अगला

1.7 सात बच्चों को भक्षक

जब गुरु सावत्थी में ठहरे थे, तब उन्होंने एक कुरूप, नग्न और सात बच्चों को खाने वाली स्त्री की यह कहानी सुनाई। सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित एक गाँव में, एक गृहस्थ शिष्य के दो पुत्र थे, जो सुंदर, प्रतिभाशाली और अच्छे स्वभाव के थे। उनके कारण उनकी माता अपने पति से घृणा करती थी। पत्नी द्वारा अपमानित किए जाने से क्रोधित होकर, वह एक और स्त्री को घर ले आया, जो गर्भवती हो गई। ईर्ष्या से ग्रस्त होकर, बड़ी पत्नी ने एक चिकित्सक को शुल्क लेकर अपनी प्रतिद्वंदी का गर्भपात कराने के लिए राजी किया। जब उसके परिवार और पति दोनों ने उससे पूछताछ की, तो उसने इससे इनकार किया और झूठी कसम खाई कि यदि यह सच हुआ, तो वह कुरूप और नग्न हो जाएगी और सात पुत्रों को खा जाएगी। इस प्रकार उसने उस अभिशाप को आमंत्रित किया जो वास्तव में उस पर आया। उसकी मृत्यु के बाद, वह कुरूप और नग्न स्त्री बन गई, वह प्रतिदिन सात पुत्रों को जन्म देती और फिर उन्हें खा जाती थी।

उस समय कई वरिष्ठ भिक्षु, जिन्होंने वर्षा ऋतु (वस्सा) के दौरान गाँव के एक निवास में विश्राम किया था, भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए सावत्थी जा रहे थे। उस अवसर पर उन्होंने उस गाँव के पास ही रात्रि व्यतीत की। तभी एक स्त्री इन वरिष्ठ भिक्षुओं के दर्शन में प्रकट हुई। उनमें से प्रमुख ने उससे एक श्लोक में पूछा:

1. "तुम नग्न और बदसूरत हो; तुम्हारे मुंह से दुर्गंध और सड़ी हुई बदबू निकलती है। तुम मक्खियों से ढके हुए हो। अब तुम कौन हो जो यहाँ खड़े हो?"

पेटी ने कहा:

2. "मैं, आदरणीय महोदय, एक पेटी हूँ, यमलोक का एक दुखी निवासी। क्योंकि मैंने एक बुरा कर्म किया है, इसलिए मैं यहाँ से पेटों (भूतों) के लोक में चला गया हूँ।"

3. "भोर होते ही मैं सात बच्चों को जन्म देती हूँ, शाम को फिर सात और बच्चों को, और मैं उन सभी को खा जाती हूँ; यहाँ तक कि ये भी मेरे लिए पर्याप्त नहीं हैं।"

4. "मेरा हृदय भूख से झुलस रहा है और धुआँ छोड़ रहा है; मुझे मन की शांति नहीं मिल रही है। मानो आग से जल गया हो। मैं पीड़ा भोग रहा हूँ।"

तब प्रधान भिक्षु ने उससे पूछा:

5. "अब तुमने शरीर, वाणी और मन से कौन सा दुष्ट कार्य किया? किस अपराध के कारण तुम बच्चों का मांस खाते हो?"

याचिका में कहा गया:

6. "मेरे दो बेटे थे; दोनों किशोरावस्था में पहुँच चुके थे। लेकिन बेटों की ताकत देखकर, मैं अपने पति से घृणा करती थी।"

7. "तब मेरे पति को गुस्सा आया और उसने दूसरी पत्नी से विवाह कर लिया। और जब वह गर्भवती हुई, तो मैंने उसके विरुद्ध बुराई करने की योजना बनाई।"

8. "और मैंने भ्रष्ट मन से उसके अजन्मे बच्चे को गिरा दिया। यह तीसरे महीने में, घिनौना और खून से लथपथ होकर गिरा।"

9. "तब उसकी माँ क्रोधित होकर अपने रिश्तेदारों को मेरे पास लाई। और उसने मुझसे शपथ दिलवाई और मुझे अपमानित करवाया। मैंने, हाँ मैंने, वह भयानक शपथ झूठी खाई: 'यदि मेरे द्वारा किया गया हो तो मैं अपने बच्चों का मांस खाऊँ।' "

10. "अपने कर्म और झूठ दोनों के फलस्वरूप, मैं अपने बच्चों का मांस खाता हूँ, क्योंकि मैं अपने अतीत के खून से सना हुआ हूँ।"

(बाकी की कहानी पिछली कहानी, क्रमांक 6 पंच-पुत्त-खडक-पेटवत्थु-वन्नन्ना जैसी ही है।)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> गौर-पेटवत्थु-वन्नन्ना

पिछला <<<<------------------------ 1.8 -------------------------->>>> अगला

1.8 बैल

जब गुरु (बुद्ध) जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई। श्रावस्ती में, एक गृहस्थ के पिता का निधन हो गया। पुत्र शोक से व्याकुल था और विलाप कर रहा था। वह पागलों की तरह इधर-उधर घूमता हुआ, जिसे भी देखता, पूछता: "क्या आपने मेरे पिता को देखा है कि वे कहाँ गए हैं?" कोई भी उसके शोक को दूर नहीं कर सका। परन्तु, उसके हृदय में, जैसे किसी कलश में दीपक जल रहा हो, वैसे ही ज्ञानोदय के प्रथम मार्ग (सोतापत्ति, धारा प्रवेश) की तात्कालिक अवस्था जल रही थी

जब गुरु (बुद्ध) सुबह-सुबह अपनी दिव्य अंतर्दृष्टि से संसार का अवलोकन कर रहे थे, तब उन्होंने यह देखा और सोचा: "इस व्यक्ति के अपने अतीत के अनुभव बताने और अपने दुःख को दबाने के बाद, इसे प्रथम मार्ग (सोतापत्ति) का फल देने का यही सही अवसर है।" अतः अगले दिन, भिक्षा मांगने के बाद, वे एक कनिष्ठ भिक्षु के साथ उस व्यक्ति के घर गए। भगवान बुद्ध के आने की सूचना पाकर, वे उनका स्वागत करने के लिए बाहर गए। जब भगवान बुद्ध बैठे, तो मेज़बान ने कहा: "प्रभु, आप जानते हैं कि मेरे पिता कहाँ गए हैं।" तब गुरु (बुद्ध) ने उससे पूछा: "शिष्य, क्या तुम अपने पिता के बारे में इस अवस्था में पूछ रहे हो या अतीत में?" ये शब्द सुनकर और अपना दुःख शांत होने पर उसने कहा: "मेरे अनेक पिता थे," और थोड़ा संभल गया। तब गुरु (बुद्ध) ने उसे संक्षिप्त धर्म शिक्षा दी, जिससे उसने तुरंत प्रथम मार्ग (सोतापत्ति) प्राप्त कर लिया। फिर भगवान बुद्ध अपने स्थान पर लौट गए। फिर उनके भिक्षुओं ने इस विषय पर बातचीत शुरू की।

उनके आने पर गुरु ने पूछा, "तो भिक्षुओं, आप यहाँ समूह में किस चर्चा के लिए बैठे हैं?" उन्होंने गुरु को सारी बात बताई। गुरु ने उनके अनुरोध पर बताया कि क्या हुआ था, "मैंने न केवल इस समय उस व्यक्ति के दुःख को दूर किया, बल्कि पिछले जन्म में भी उसे दूर किया था।"

बनारस में एक समय की बात है, एक गृहस्थ के पिता का निधन हो गया। शोक और विलाप से व्याकुल होकर वे अपनी छाती पीटते हुए आदरपूर्वक चिता के चारों ओर घूमने लगे। उनका पुत्र, सुजाता, जो एक बुद्धिमान और चतुर बालक था, अपने पिता के शोक को दूर करने का उपाय सोच रहा था। तभी उसने शहर के बाहर एक मृत बैल देखा, जिसके सामने उसने घास और पानी रखा। उसने बैल को एक निवाला खिलाया और जीवित बैल की तरह आदेश देते हुए वहाँ खड़ा रहा और बोला, "खाओ, खाओ, पियो, पियो।" राहगीरों ने उसे देखकर कहा, "अरे सुजाता, क्या तुम पागल हो गए

हो कि मृत बैल को घास और पानी चढ़ा रहे हो?" लेकिन उसने एक शब्द भी नहीं कहा। तब लोग उसके पिता के पास गए और उनसे कहा, "आपका बेटा पागल हो गया है और मृत बैल को घास और पानी चढ़ा रहा है।" यह सुनकर गृहस्थ का अपने पिता के लिए शोक दूर हो गया। व्याकुल होकर वह तुरंत गया और लड़के को डांटा: "सुजाता, क्या तुम बुद्धिमान, चतुर और समझदार नहीं हो? तुम मरे हुए बैल को घास और पानी क्यों चढ़ा रहे हो?" इस संदर्भ में उसने दो श्लोक कहे:

1. "अब तुम पागल की तरह क्यों दिख रहे हो, हरी घास काट रहे हो और उस बूढ़े बैल से बुदबुदा रहे हो जिसकी जिंदगी खत्म हो चुकी है, 'खाओ, खाओ'?"

2. "मरा हुआ बैल खाने-पीने से जीवित नहीं हो सकता। तुम भी दूसरों की तरह ही बचकाने और भोले हो।"

इसके जवाब में सुजाता ने निम्नलिखित बातें कहीं:

3. "ये पैर, ये सिर, ये शरीर पूंछ समेत, आंखें भी यहीं हैं। इस बैल को उठने दो।"

4. "पर दादाजी के हाथ-पैर, शरीर और सिर दिखाई नहीं दे रहे हैं। मिट्टी के ढेर पर रोने वाले तुम ही मूर्ख नहीं हो?"

पिता:

5. "सचमुच मैं दमक रहा था, उस आग की तरह जिस पर घी डाला गया हो। अब पानी की तरह छिड़के जाने पर, मैं अपने सारे दर्द का अंत करता हूँ।"

6. "सचमुच, आपने मेरे हृदय में गहराई से बैठी पीड़ा, मेरे दुख को मुझसे दूर कर दिया, आपने ही मुझे, जो शोक से अभिभूत था, मेरे पिता के शोक से मुक्त किया।"

7. "सचमुच मैंने अब यहाँ अपना शोक त्याग दिया है, और मैं शांत हूँ और मैंने इसे समाप्त कर दिया है। अब मैं शोक नहीं करता, मैं रोता नहीं हूँ, क्योंकि मैंने तुम्हारी बात सुन ली है, मेरे बेटे।"

8. "इसी प्रकार दयालु और बुद्धिमान लोग भी हमारा ध्यान दुख से हटाते हैं, जैसे सुजाता ने अपने पिता के साथ किया था।"

पिता ने अपना सिर धोया, भोजन किया और अपने काम में जुट गए। मृत्यु के बाद वे स्वर्ग चले गए।

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को धम्म, सत्य का उपदेश दिया, जिसे जानकर कई भिक्षु सोतापत्ति अवस्था (प्रथम मार्ग) में स्थापित हो गए।

इस प्रकार सुजाता जगत के स्वामी (बुद्ध) की रक्षक बन गईं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> महा-पेसाकर-पेटिवत्थु-वन्नन्ना

पिछला <<<<------------------------ 1.9 -------------------------->>>> अगला

1.9 मास्टर बुनकर

जब गुरु (बुद्ध) सावत्थी में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कथा सुनाई। गुरु से साधना का विषय प्राप्त करने के बाद, लगभग एक दर्जन भिक्षु रहने के लिए स्थान की खोज कर रहे थे। वर्षा ऋतु का विश्राम निकट था, तभी उन्हें छायादार और जलयुक्त एक रमणीय वन-आश्रय दिखाई दिया, और उससे कुछ ही दूरी पर भोजन के लिए एक गाँव भी था। उन्होंने रात वहीं बिताई और अगले दिन भिक्षा मांगने के लिए गाँव में प्रवेश किया। गाँव वालों ने भिक्षुओं का स्वागत किया और उनसे वर्षा ऋतु के विश्राम (वस्सा) के लिए अपने यहाँ निवास करने का अनुरोध किया। तब बुनकर संघ के प्रमुख ने आदरपूर्वक दो माह तक अपनी चार आवश्यक वस्तुओं के साथ उनकी सेवा की, जबकि संघ के शेष सदस्यों ने प्रत्येक भिक्षु की देखभाल की।

मुख्य बुनकर की पत्नी अविश्वासी, धर्महीन, रूढ़िवादी और लालची थी, और उसने भिक्षुओं की सहायता नहीं की। तब मुख्य बुनकर ने उसकी छोटी बहन से विवाह कर लिया और उसे अपने घर में रखैल बना लिया। वह आस्थावान थी और भिक्षुओं की पूरी लगन से देखभाल करती थी। इन सभी बुनकरों ने भी वर्षा ऋतु के दौरान तपस्या कर रहे प्रत्येक भिक्षु को एक-एक वस्त्र दिया। तब बुनकर संघ के मुखिया की स्वार्थी पत्नी ने दुष्ट मन से

अपने पति को धिक्कारते हुए कहा, “जो भी भोजन और पेय तुम शाक्य संन्यासियों को दान में देते हो, वह परलोक में गोबर, मूत्र, रक्त और मवाद में परिवर्तित हो जाए और वस्त्र जलते हुए लोहे की थालियाँ बन जाएँ।”

उनकी मृत्यु के बाद, कुशल बुनकर विंध्य वन में एक तेजस्वी रुक्खा-देव (लघु देवदूत) के रूप में पुनर्जन्म लिया। उनकी कंजूस पत्नी उनके निवास स्थान से कुछ ही दूरी पर एक प्रेत (भूत) के रूप में पुनर्जन्म लेकर लौटीं। वह नग्न, कुरूप और भूख-प्यास से व्याकुल थीं, और जब वह पृथ्वीदेव के पास पहुँचीं, तो उन्होंने कहा, "हे प्रभु, मैं नग्न हूँ और भूख-प्यास से अत्यधिक व्याकुल होकर भटक रही हूँ; मुझे वस्त्र, भोजन और जल दीजिए।" उन्होंने उन्हें अपना उत्तम देव भोजन और जल दिया; लेकिन जैसे ही उन्होंने उसे ग्रहण किया, वह तुरंत गोबर, मूत्र, रक्त और मवाद में परिवर्तित हो गया, और जिस लबादे से वह ढकी हुई थीं, वह जलती हुई लोहे की थाली बन गई। उल्टी करती और विलाप करती हुई वह अत्यंत पीड़ा में इधर-उधर भटकती रहीं।

उस समय, एक भिक्षु, जो गुरु (बुद्ध) को प्रणाम करने जा रहा था, अपने बड़े काफिले के साथ विंध्य वन में प्रवेश किया। रात्रि यात्रा के बाद, काफिले को दिन में एक ऐसा स्थान दिखाई दिया जहाँ भरपूर छाया और पानी था। वहाँ उन्होंने बैलों को खोलकर विश्राम किया। तब वह भिक्षु, जो एकांत की इच्छा से थोड़ी दूर चला गया था, एक वृक्ष के नीचे घनी घास पर अपना लबादा बिछाकर लेट गया। रात्रि यात्रा से थका हुआ होने के कारण वह सो गया। जब काफिले के लोग विश्राम कर चुके, तो वे अपने मार्ग पर चल पड़े, लेकिन वह भिक्षु नहीं जागा। फिर शाम को उठकर, अपने साथियों को न पाकर, वह एक पगडंडी पर चला और अंततः उस देव (देवदूत) के निवास पर पहुँचा जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। जब उस देव ने उसे देखा, तो वह मनुष्य रूप में प्रकट हुआ और उसका स्वागत किया; वह उसे अपने महल में ले गया, और उसके चरणों के लिए मरहम और अन्य उपहार देने के बाद, उसने उसे प्रणाम किया और बैठ गया। इसी समय, एक भक्त भी आई और बोली: "हे स्वामी, मुझे भोजन, पेय और एक वस्त्र दीजिए।" उन्होंने उसे ये वस्तुएँ दीं, जो उसके हाथ लगते ही तुरंत गोबर, मूत्र, रक्त, मवाद और जलती हुई लोहे की थालियों में बदल गईं। यह देखकर वह व्यक्ति बहुत व्याकुल हो गया और उसने देवता से इन दो श्लोकों में प्रार्थना की:

1. "उसे गोबर, पेशाब, खून और मवाद मिलता है; यह किसका परिणाम है?
अब इस स्त्री ने क्या कर्म किया है, जो हमेशा खून और मवाद खाती रहती है?"

2. "उसे जो वस्त्र दिए गए थे वे नए, चमकदार, आकर्षक, कोमल, सफेद और चमकीले थे,
लेकिन वे विभिन्न धातु की प्लेटों में बदल गए। अब इस स्त्री ने क्या कर्म किया है?"

तब देवी ने भिक्षु को अपने पिछले जन्म का रहस्य समझाया:

3. "यह मेरी पत्नी थी, हे पूज्यवर; वह दान देने को इच्छुक नहीं थी, वह अत्यंत कंजूस और कृपण थी।
जब मैंने भिक्षुओं और ब्राह्मणों को दान दिया, तो उसने मुझे अपशब्द कहे और मेरी निंदा करते हुए कहा:"

4. "तुम्हें सदा के लिए गोबर, मूत्र, रक्त और मवाद, यहाँ तक कि गंदगी भी खानी पड़े।
परलोक में तुम्हारा यही भाग्य हो, और तुम्हारे वस्त्र धातु की थालियों के समान हों।
क्योंकि उसने ऐसा दुष्ट कर्म किया है, इसलिए यहाँ आने के बाद वह लंबे समय तक उस गंदगी को खाएगी।"

“अब, क्या उसे प्रेतों के संसार से मुक्त करने का कोई उपाय है?”
उन्होंने कहा: “यदि कोई भगवान बुद्ध और आर्य संघ (प्रबुद्ध भिक्षुओं) को, या यहाँ तक कि किसी एक भिक्षु को भी दान दे और उसका श्रेय उसे दे दे, और वह इसकी सराहना करे, तो इस प्रकार उसे दुखों से मुक्ति मिल जाएगी।”

जब देवता ने यह सुना, तो उन्होंने उस भिक्षु को भोजन और पेय दिया और दान का पुण्य उस साध्वी को प्रदान कर दिया। तुरंत ही उसे पर्याप्त भोजन मिल गया; उसका हृदय प्रसन्न हुआ और वह दिव्य भोजन से तृप्त हो गई। फिर उन्होंने उसी भिक्षु के हाथ में भगवान बुद्ध के लिए दिव्य वस्त्रों का एक जोड़ा दिया और दान का पुण्य साध्वी को दे दिया। इसके तुरंत बाद, वह दिव्य वस्त्रों से सुसज्जित हो गई, उसकी सभी इच्छाएँ पूरी हो गईं और वह एक अप्सरा के समान हो गई।

इसके अलावा, उस देवता की शक्ति से वह भिक्षु उसी दिन श्रावस्ती के जेतवन मठ में पहुंचा और उसने बुद्ध को सारी घटना बताई। बुद्ध ने उसकी प्रशंसा की और फिर उन्होंने धम्म प्रवचन दिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> खल्लातिया-पेटिवत्थु-वन्नन्ना

पिछला <<<<----------------------- 1.10 ------------------------->>>> अगला

1.10 गंजी महिला

जब गुरुजी सावत्थी में ठहरे थे, तब उन्होंने एक गंजी स्त्री की यह कहानी सुनाई। एक समय की बात है, बनारस में एक स्त्री रहती थी जो अपनी सुंदरता के सहारे जीती थी। उसके लंबे, काले, मुलायम और चमकदार बाल बहुत सुंदर घुंघराले थे; उसकी लटें दो मुट्ठी भर होती थीं और जब खुली होती थीं तो उसकी कमर तक लटकती थीं। कुछ ईर्ष्यालु स्त्रियों ने आपस में सलाह की और दासी को रिश्वत देकर उसे एक ऐसी औषधि भेजी जिससे उसके बाल नष्ट हो जाएं। दासी ने स्नान पाउडर में वह औषधि मिलाकर अपनी मालकिन को गंगा में स्नान करते समय दे दी। उसने अपने बालों को जड़ों तक उस मिश्रण से अच्छी तरह गीला किया और पानी में डुबकी लगाई। जैसे ही वह नदी में डूबी, उसके सारे बाल जड़ समेत झड़ गए और उसका सिर करेले जैसा हो गया। फिर, पंख नोचे हुए कबूतर की तरह बदसूरत होकर, शर्म के मारे शहर में प्रवेश करने में असमर्थ, उसने अपना सिर शॉल से ढक लिया और शहर के बाहर रहने लगी। उसका संकोच दूर हो गया, और तिल पीसकर वह तेल और मादक पेय का व्यापार करके अपना जीवन यापन करने लगी। एक दिन, जब दो-तीन नशे में धुत आदमी गहरी नींद में सो गए, तो उसने उनके सारे कपड़े चुरा लिए जो खुले में लटके हुए थे।

फिर एक दिन, उसने भिक्षा माँगते हुए एक संत बुजुर्ग को देखा और उन्हें अंदर आने के लिए आमंत्रित करके तिल के तेल में मिला हुआ एक केक दिया। उस पर दया करके उन्होंने केक स्वीकार किया और खा लिया। वह प्रसन्न मन से उनके ऊपर छाता लिए खड़ी रही। बुजुर्ग ने भावुक होकर उसे धन्यवाद दिया और विदा ली। फिर उसने एक इच्छा माँगी: "काश मेरे बाल लंबे, सुंदर, चमकदार और कोमल हों और उनमें एक सुंदर घुंघरालेपन का वरदान हो।"

कुछ समय बाद उनकी मृत्यु हो गई, और उनके पुण्य कर्म के फलस्वरूप, उनका पुनर्जन्म समुद्र के बीचोंबीच एक स्वर्णमय महल में हुआ; उनके बाल उनकी इच्छा के अनुसार फिर से उग आए थे, परन्तु पुरुषों के वस्त्र चुराने के कारण वे नग्न थीं। उनका उस स्वर्णमय महल में बार-बार पुनर्जन्म हुआ और उन्होंने वहाँ बिना वस्त्रों के एक बुद्ध-काल व्यतीत किया। फिर भगवान गौतम बुद्ध का संसार में पुनर्जन्म हुआ और जब वे श्रावस्ती में धर्म का उपदेश दे रहे थे, तब वहाँ स्थित सौ व्यापारी सुवर्णभूमि के लिए एक जहाज में सवार हुए। तूफान से जूझता हुआ जहाज उस तट पर पहुँचा। तब उन्हें वह पेटी (महिला) उस महल के साथ दिखाई दी। जब सबसे बड़े व्यापारी ने उसे देखा, तो उसने पूछा:

1. "तुम कौन हो, हवेली में रह रहे हो? बाहर नहीं आ रहे हो।"
बाहर आओ, महिला; हमें तुम्हें और तुम्हारी शक्ति को देखने दो।"
याचिका:
2. "मैं दुखी हूँ; मुझे नग्न बाहर आने में शर्म आती है,
अपने बालों से ढका हुआ। मेरे द्वारा थोड़ा सा भी भला नहीं हुआ।"
व्यापारी:
3. "आओ। मैं तुम्हें एक पोशाक देता हूँ; इसे पहन लो;
इसे पहनो और बाहर आओ, सुंदरी
बाहर आओ, महिला। हमें तुम्हें और तुम्हारी शक्ति को देखने दो।"
यह कहते हुए उसने अपना लबादा उसकी ओर बढ़ा दिया।

याचिका:
4. "जो कुछ आपके हाथ से मेरे हाथ में दिया जाता है, वह मेरी मदद नहीं करता।
लेकिन यह शिष्य यहाँ सच्चे प्रबुद्ध बुद्ध का एक निष्ठावान शिष्य है।"
5. "इस आदमी को कपड़े पहनाकर, मुझे इसका श्रेय प्रदान करें।"
तब मुझे आशीर्वाद प्राप्त होगा और मैं सभी सुखों में समृद्ध होऊंगा।
उसकी बात सुनने के बाद, व्यापारियों ने उस शिष्य को स्नान कराया, तेल लगाया और उसे वस्त्र पहनाए। इस विषय को प्रकट करते हुए, संपादकों ने तीन छंद कहे:

6. व्यापारियों द्वारा स्नान कराकर और तेल लगाकर अभिषेक करने के बाद,
उन्होंने उसे वे वस्त्र पहनाए और उस महिला को उस उपहार का गुण प्रदान किया।
7. उपहार से यह परिणाम निकला:
भोजन, कपड़े और पेय पदार्थ
8. तब वह शुद्ध, स्वच्छ वस्त्र पहने हुए, सर्वश्रेष्ठ बनारस वस्त्र धारण किए हुए था।
मुस्कुराते हुए वह हवेली से बाहर निकली और बोली: "यह आपके उपहार का फल है।"

व्यापारी:
9. "विभिन्न शैलियों का यह महल, सुखद रूप से चमकता है,
हे देवी (देवदूत), हमें बताइए कि यह किस कर्म का परिणाम है।"
देवी:
10. "एक यात्रा करने वाले भिक्षु, एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति को,
मैंने पवित्र मन से तिल के तेल के साथ बीजों की एक रोटी दी।"
11. "इस अच्छे कर्म के फल के रूप में मुझे लंबे समय तक आनंद मिलता है।"
महल में; अब बस थोड़ा ही समय बचा है।"
12. "चार महीने बाद मेरी मृत्यु हो जाएगी;"
मैं अत्यंत भीषण और भयानक नरक में गिरूंगा।
13. "यह चार कोनों वाला है और इसमें चार दरवाजे हैं; इसे माप के अनुसार भागों में विभाजित किया गया है;
यह लोहे की बाड़ से घिरा हुआ है, और ऊपर से लोहे से ढका हुआ है।"
14. "इसका लोहे का फर्श गर्मी से चमक रहा है। चारों ओर से रोशनी की लपटें उठ रही हैं।"
यह सौ योजन तक भी अडिग रहता है।"
15. "वहाँ मुझे लंबे समय तक असहनीय पीड़ा सहनी पड़ेगी।"
और बुरे कर्मों का फल। इसलिए मैं इस सत्य पर शोक व्यक्त करता हूँ।"
उस शिष्य के मन में दया भाव जागा और उसने कहा:

"हे देवी, आपने मुझे जो वरदान दिया है, उसकी शक्ति से आपकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हुई हैं। अब, इन गृहस्थ शिष्यों को वरदान देकर और गुरु (बुद्ध) के गुणों को ध्यान में रखते हुए, आप नरक में पुनर्जन्म से मुक्त हो जाएँगी।" बेटी बहुत प्रसन्न हुई और उसने उन्हें देव-भोजन, वस्त्र और आभूषण देकर तृप्त किया तथा भगवान बुद्ध के लिए वस्त्रों का एक समूह उनके हाथों में सौंप दिया। उसने प्रणाम करते हुए कहा: "सावत्थी जाओ और मेरी ओर से गुरु (बुद्ध) को प्रणाम करो: 'आदरणीय महोदय, एक बेटी भगवान बुद्ध के चरणों को प्रणाम करती है'।" फिर अपनी शक्ति से उसने उसी दिन जहाज को उसके उचित स्थान पर पहुँचा दिया।

समय आने पर व्यापारियों ने वह उपहार गुरु को सौंप दिया और सारी बात बताई। तब बुद्ध ने धम्म पर विस्तृत प्रवचन दिया। इन शिष्यों ने बुद्ध और उनके संघ को बड़ी राशि दान की और उस उपहार का श्रेय उस पेटी को दिया, जिसके फलस्वरूप वह कई लोगों के साथ उच्च तावतिंसा स्वर्ग में एक स्वर्ण महल में पुनर्जन्म लेकर लौटीं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> नाग-पेटवत्थु-वन्नना

पिछला <<<<------------------------ 1.11 -------------------------->>>> अगला

1.11 हाथी

जब गुरुजी जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई। पूज्य संकिच्छ ने सात वर्ष की आयु में ही मुंडन कक्ष में अर्हतत्व (अंतिम ज्ञान) प्राप्त कर लिया था, और अभी भी एक नौसिखिया होते हुए, वे तीस भिक्षुओं के साथ एक जंगल में रह रहे थे, जिनसे उन्होंने पाँच सौ लुटेरों के हाथों मृत्यु को बचाया था। लुटेरों को परिवर्तित करने और उन्हें पवित्र भिक्षु जीवन अपनाने के लिए प्रेरित करने के बाद, वे इन भिक्षुओं के साथ बनारस में गुरुजी के पास गए, और वहाँ इसिपताना में रहने लगे

उस समय बनारस में एक ब्राह्मण (पुजारी) रहता था जिसके विचार भ्रामक थे। उसके दो पुत्र और एक पुत्री थी। बड़े पुत्र का एक मित्र था जो बुद्ध का गृहस्थ शिष्य था। एक बार वे दोनों पूज्य संकिच्छा के वनवास में गए। पूज्य संकिच्छा ने उन्हें धम्म (मार्ग) का उपदेश दिया। इससे उनमें दयालुता का भाव उत्पन्न हुआ और फिर वे भिक्षुओं को भोजन अर्पित करने लगे।

भिक्षुओं की बातें सुनकर, छोटा बेटा और बेटी भी धम्म का अनुसरण करने लगे। तीनों ने भिक्षुओं और ब्राह्मणों का आदर-सत्कार करके पुण्य अर्जित किया, यद्यपि उनके माता-पिता को कोई धर्म नहीं था और वे ऐसा कोई आदर नहीं दिखाते थे, बल्कि उन्हें 'अगले महीने आना' या 'अगले सप्ताह आना' कहकर वापस भेज देते थे। अब एक तूफान में, उनका कमजोर पुराना घर गिरने से वे पाँचों दबकर मर गए। इसके बाद ब्राह्मण और उनकी पत्नी का पुनर्जन्म पादों के रूप में हुआ, और दोनों बेटे और बेटी पृथ्वी पर देव (देवदूत) बन गए। अब उस ब्राह्मण का एक भतीजा, जो संकिच्छा का शिष्य था, उनके कहने पर उनसे मिलने गया, और जब वह खड़ा था, तो उसने अपने गुरु की शक्ति से देखा कि दोनों देव और उनकी बहन यक्षों (पृथ्वी पर देवदूतों) की सभा में जा रहे हैं, उसने दो पादों (भूतों) को भी उनके पीछे आते देखा, और उनसे बात की:

1. "सबसे आगे एक सफेद हाथी पर सवार होकर कोई चलता है;
बीच में एक खच्चरों द्वारा खींची जाने वाली रथ में कोई होता है;
और बिल्कुल अंत में एक युवती,
जो दसों लोकों को पूर्णतः प्रकाशित करती है, को पालकी में ले जाया जाता है।"
2. "परन्तु तुम लोग जिनके हाथों में हथौड़े हैं;
जिनके चेहरे उदास हैं और शरीर फटे-पुराने हैं;
जो मनुष्य जैसे दिखते हैं, तुमने क्या पाप किया है;
किसलिए तुम एक दूसरे का खून पीते हो?"
पेटास:
3. "जो सफेद हाथी पर सबसे आगे चलता है;
चार पैरों वाले जानवर पर, हाथी पर;
वह हमारा पुत्र था, वह सबसे बड़ा बच्चा था;
क्योंकि उसने दान दिया, अब वह खुशी से आनंदित होता है।"
4. "बीच में, खच्चरों द्वारा खींचे गए रथ पर;
चार घोड़ों से जुती हुई तेज गति वाली गाड़ी में;
हमारा दूसरा बच्चा था;
वह एक निस्वार्थ और महान दाता के रूप में चमकता है।"
5. "वह जो पालकी में पीछे-पीछे ले जाई जाती है;
एक बुद्धिमान महिला, जिसकी आंखें कबूतर जैसी कोमल हैं;
वह हमारी सबसे छोटी बेटी थी;
अपने हिस्से से खुश होकर वह आनंदित होती है।"
6. "ये लोग अपने पिछले जन्म में प्रसन्न मन से
भिक्षुओं और ब्राह्मणों को दान देते थे;
परन्तु हम कंजूस थे
और भिक्षुओं और ब्राह्मणों का अपमान करते थे;
दान देने के कारण वे भटकते रहते हैं;
और हम कटे हुए सरकंडे की तरह सूख गए हैं।"
अपनी दुष्टता का बखान करते हुए उन्होंने इस प्रकार समझाया: "हम तुम्हारी माँ के भाई और उसकी पत्नी हैं।" यह सुनकर भतीजा दुखी हुआ और उसने पूछा:

7. "तुम्हारा भोजन कैसा है? तुम्हारा बिस्तर कैसा है?
तुम अपना भरण-पोषण कैसे करते हो, हे महापापियों,
जो भोजन की प्रचुरता होते हुए भी
सुख खो बैठे और आज दुःख प्राप्त कर चुके हो?"
पेटास:
8. "हम एक दूसरे को मारते हैं
और मवाद और खून पीते हैं।
हालाँकि हमने बहुत कुछ पिया है, फिर भी
हमें पोषण नहीं मिलता, हम संतुष्ट नहीं होते।"
9. "जिस प्रकार दान न करने वाले मनुष्य विलाप करते हैं;
जो मृत्यु के बाद यमलोक में होते हैं;
भोजन को जानकर भी
वे न तो उसका आनंद लेते हैं और न ही उससे कोई लाभ करते हैं।"
10. "दूसरे लोक में भूख और प्यास से पीड़ित होकर,
पेटा लोग लंबे समय तक विलाप करते हैं, क्योंकि वे पीड़ा में हैं।
क्योंकि उन्होंने गंभीर परिणाम वाले कर्म किए हैं,
इसलिए उन्हें कड़वे फल के रूप में पीड़ा मिलती है;
11. "धन और संपत्ति क्षणभंगुर हैं;
पृथ्वी पर जीवन क्षणिक है;

क्षणभंगुरता को जानते हुए,
बुद्धिमान व्यक्ति को शरण का एक द्वीप तैयार करना चाहिए।"
12. "धम्म को जानने वाले और इस ज्ञान को प्राप्त करने वाले सभी लोग
अर्हंतों के वचन सुनने के बाद दान देने में लापरवाही नहीं करते।"
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> उरग-पेटवत्थु-वन्नना

पिछला <<<<------------------------ 1.12 --------------------------->>>> अगला

1.12 सर्प

जब गुरु (बुद्ध) जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई

कहा जाता है कि सावत्थी में एक गृहस्थ शिष्य के पुत्र का निधन हो गया। पिता गहरे शोक में डूब गए और घर से बाहर नहीं निकले; वे कुछ भी करने में असमर्थ थे और घर में ही बीमार पड़े रहे। तब गुरु, परम करुणा की प्राप्ति के बाद, भोर में उठकर बुद्ध दृष्टि से संसार का अवलोकन कर रहे थे; उन्होंने शिष्य को देखा, तो वे कुंड और वस्त्र लेकर उसके घर के द्वार पर खड़े हो गए। शिष्य शीघ्र ही उनसे मिलने बाहर गया, उनका कुंड लिया और उनका स्वागत किया। भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "हे गृहस्थ, तुम शोक से इतने व्याकुल क्यों प्रतीत हो रहे हो?" उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, प्रभु, मेरे प्रिय पुत्र का निधन हो गया है; इसलिए मैं शोक से व्याकुल हूँ।" तब भगवान बुद्ध, जो शोक को दूर करते हैं, ने उन्हें सर्प जातक कथा (पिछले जन्म की कथा) सुनाई।

बहुत समय पहले, काशी देश के बनारस में धम्मपाल नाम का एक ब्राह्मण परिवार रहता था। इस परिवार में ब्राह्मण, उनकी पत्नी, पुत्र, पुत्री, बहू और दासी, सभी मृत्यु के ध्यान में लीन रहते थे। उनमें से जो भी घर से बाहर जाता, वह घर के बाकी सदस्यों को बताकर बेपरवाह होकर चला जाता। एक दिन ब्राह्मण अपने पुत्र के साथ एक खेत में हल चलाने गया। पुत्र ने सूखी घास और लकड़ियों में आग लगा दी। तभी एक काला सांप पेड़ के एक छेद से डरकर निकला और ब्राह्मण के पुत्र को काट लिया। पुत्र की मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म देवों के राजा सक्का (इंद्र) के रूप में हुआ। तब ब्राह्मण ने स्नान करके, शुद्धिकरण करके और तेल लगाकर, अपने सेवकों से घिरे हुए, शव को चिता पर रखा और इस प्रकार अग्नि दी जैसे वह लकड़ियों का ढेर जला रहा हो। वह वहां शोक से मुक्त, आत्म-यातना के बिना खड़ा था, और उसका मन अनित्यता के विचार पर केंद्रित था।

अब ब्राह्मण के पुत्र, सक्का बनकर, हमारे बोधिसत्व बने। अपने पिछले जन्म में किए गए अच्छे कर्म का स्मरण करते हुए और अपने पिता और रिश्तेदारों के प्रति करुणा से प्रेरित होकर, वे ब्राह्मण का वेश धारण करके उनके घर गए। जब उन्होंने देखा कि वे शोक नहीं मना रहे हैं, तो उन्होंने कहा: "अरे! आप एक जानवर भून रहे हैं; मुझे मांस दीजिए; मुझे भूख लगी है।" पिता ने उत्तर दिया: "यह जानवर नहीं है; ब्राह्मण, यह एक मनुष्य है।" बोधिसत्व ने पूछा: "क्या वह आपका शत्रु था?" पिता ने उत्तर दिया: "वह शत्रु नहीं था, बल्कि हमारी ही गोद में पला-बढ़ा, हमारा अपना कोमल, उत्तम गुणों वाला पुत्र था।" बोधिसत्व ने पूछा: "आप उसके लिए शोक क्यों नहीं मना रहे हैं?" तब ब्राह्मण ने कहा:

1. "जिस प्रकार सर्प अपनी पुरानी केंचुली उतारकर अपना शरीर प्राप्त करता है,
ठीक उसी प्रकार शरीर के भोग-विलास से वंचित होने और मृतक के जीवन का समय पूरा हो जाने पर होता है।"
2. "जो जल रहा है, वह नहीं जानता कि उसके रिश्तेदार शोक मना रहे हैं;
इसलिए मैं उसके लिए नहीं रोता; वह अपने स्थान पर चला गया है।"
तब सक्का ने ब्राह्मण की पत्नी से पूछा, “हे स्त्री, वह मृत पुरुष तुम्हारे लिए क्या था?” उसने उत्तर दिया, “मैंने उसे दस महीने तक अपने गर्भ में रखा, उसे दूध पिलाया, उसके हाथ-पैर सुलगाए; वह बड़ा हुआ, मेरा पुत्र, श्रीमान।” उसने पूछा, “यदि पिता मनुष्य के रूप में रोता भी नहीं है, तो भी माँ का हृदय कोमल होता है। तुम क्यों नहीं रो रही हो?” यह सुनकर उसने कहा:

3. "बिना बुलाए वह आया, बिना कहे चला गया।
जैसा आया वैसा चला गया। यहाँ क्यों रोना?"
4. "जो जल रहा है, उसे नहीं पता कि उसके रिश्तेदार शोक मना रहे हैं;
इसलिए मैं उसके लिए नहीं रोता; वह अपने स्थान पर चला गया है।"
फिर उसने बहन से पूछा: "हे महिला, वह तुम्हारे लिए क्या था?" उसने कहा, "श्रीमान, वह मेरा भाई था।" उसने कहा, "हे महिला, बहनों का अपने भाइयों के प्रति स्नेह होता है। तुम क्यों नहीं रो रही हो?" उसने समझाया:

5. "अगर मैं रोऊँ तो मैं कमजोर हो जाऊँगी। मुझे इससे क्या इनाम मिलेगा?

हमारे रिश्तेदारों, साथियों और दोस्तों को और भी अधिक असुविधाएँ होंगी।"
6. "जो जल रहा है, उसे नहीं पता कि उसके रिश्तेदार शोक मना रहे हैं;
इसलिए मैं उसके लिए नहीं रोता; वह अपने स्थान पर चला गया है।"
फिर उसने विधवा से पूछा: "वह तुम्हारे लिए क्या मायने रखती थी?"

उसने कहा, "महोदय, वह मेरे पति थे।" उन्होंने पूछा, "महिम, पत्नियों को अपने पतियों से स्नेह होता है। तो फिर आप क्यों नहीं रोतीं?" उसने समझाया:

7. "जिस प्रकार एक शिशु चंद्रमा के जाने पर रोता है,
ठीक वही व्यक्ति जो किसी दिवंगत व्यक्ति के लिए शोक मनाता है।"
8. "जो जल रहा है, वह नहीं जानता कि उसके रिश्तेदार शोक मना रहे हैं;
इसलिए मैं उसके लिए नहीं रोता; वह अपने स्थान पर चला गया है।"
फिर उसने नौकरानी से पूछा: "स्त्री, वह आदमी तुम्हारे लिए क्या था?" उसने कहा, "महोदय, वह मेरा स्वामी था।" उसने पूछा, "अगर ऐसा है, तो शायद उसने तुम्हें पीटा होगा, और तुम घर की नौकरानी रही होगी; इसलिए तुम यह सोचकर क्यों नहीं रो रही हो कि 'मैं उस मरे हुए आदमी से छुटकारा पाकर खुश हूँ?' " उसने उत्तर दिया, "महोदय, मुझसे ऐसा मत कहिए। यह उचित नहीं है। वह सज्जन मेरे प्रति बहुत धैर्यवान, मित्रवत और दयालु थे, एक सजे-धजे बड़े बेटे की तरह उचित व्यवहार करते थे।" उसने पूछा, "तो फिर तुम क्यों नहीं रो रही हो?" उसने कहा:

9. "जिस प्रकार ब्राह्मण के मामले में टूटा हुआ पानी का घड़ा वापस नहीं रखा जा सकता,
उसी प्रकार दिवंगत आत्मा के लिए शोक करने वाले का प्रयास व्यर्थ ही होता है।"
10. "जो जल रहा है, वह नहीं जानता कि उसके रिश्तेदार शोक मना रहे हैं;
इसलिए मैं उसके लिए नहीं रोता; वह अपने स्थान पर चला गया है।"
जब सक्का ने उनकी बातें सुनीं, तो वे प्रसन्न हुए और बोले: "तुमने मृत्यु के प्रति सही ध्यान विकसित किया है। अब से तुम हल चलाना और अन्य श्रम न करना।" उन्होंने उनके घर को सात राजसी खजानों से भर दिया और उन्हें सलाह दी: "लगन से दान करो, नैतिक नियमों का पालन करो और पर्व मनाओ।" फिर उन्होंने स्वयं को उनके सामने प्रकट किया और अपने धाम चले गए। तब ब्राह्मण और उनके परिवार ने दान दिया और अन्य पुण्य कर्म किए, और अच्छी आयु प्राप्त करके देवलोक में पुनर्जन्म लिया।

जब बुद्ध ने यह कहानी शोकग्रस्त शिष्य को सुनाई, तो वह शांत हो गया और उसी क्षण उसने मुक्ति का सोतापत्ति (प्रथम मार्ग) प्राप्त कर लिया।

पुस्तक का अंत — 1
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> संसार-मोचक-पेटिवत्तु-वन्नन्ना

पिछला <<<<------------------------ 2.1 --------------------------->>>> अगला

खंड II: उब्बरीवाग्गो

2.1 संसार में पुनर्जन्मों से मुक्ति

जब गुरु (बुद्ध) वेलुवाना में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई

मगध के इत्थकवती नामक गाँव और दिघारजी गाँव में कई ऐसे लोग रहते थे, जिन्होंने पुनर्जन्मों से मुक्ति पाकर भी गलत मत रखे थे। बहुत समय पहले, एक स्त्री का पुनर्जन्म ऐसे ही एक परिवार में हुआ। अनेक भृंग और टिड्डे मारकर, मरने के बाद वह एक पेटी के रूप में पुनर्जन्म लेकर पाँच सौ वर्षों तक भूख और प्यास की पीड़ा सहन करती रही। उस समय भगवान बुद्ध राजगृह में थे, जब उसका उसी परिवार में इत्थकवती में पुनः जन्म हुआ। एक दिन जब वह गाँव के द्वार के पास मुख्य सड़क पर अन्य स्त्रियों के साथ खेल रही थी, तो आदरणीय थेरा (वरिष्ठ भिक्षु) सारिपुत्त अपने बारह अन्य भिक्षुओं के साथ वहाँ से गुज़रे और स्त्रियाँ उन्हें प्रणाम करने के लिए दौड़ीं। लेकिन वह वहाँ अनादरपूर्वक खड़ी रही। तब थेरा ने उसके अतीत और भविष्य को जानकर, सहानुभूति से द्रवित होकर, स्त्रियों के प्रति उसके इस व्यवहार पर टिप्पणी की। स्त्रियों ने उसका हाथ पकड़कर उसे प्रणाम करने के लिए घसीटा। बाद में प्रसव के दौरान उसकी मृत्यु हो गई और वह फिर से पेटियों के बीच जन्मी। और वह रात में सारिपुत्त के दर्शन हुए, जिन्होंने उसे देखकर कहा:

1. "तुम नग्न और भयानक रूप वाले हो, दुबले-पतले और उभरी हुई नसों वाले, पतले-दुबले, तुम्हारी पसलियां बाहर निकली हुई हैं, अब तुम कौन हो, तुम जो यहां हो?"

पेटी:
2. "हे पूज्यवर, मैं एक पेटी हूँ, यमलोक का एक दुखी निवासी; क्योंकि मैंने एक बुरा कर्म किया था। मैं यहाँ से पेटों के लोक में चला गया।"

सारिपुत्त:
3. "अब तुमने अपने शरीर, वाणी या मन से कौन सा बुरा कर्म किया? किस कर्म के कारण तुम पेटों के लोक में चले गए?"

याचिका:
4. "हे पूज्यवर, मेरे पास कोई दयालु रिश्तेदार, माता-पिता या यहाँ तक कि अन्य सगे-संबंधी भी नहीं थे जो मुझे यह कहकर प्रेरित करते, 'अपने हृदय में श्रद्धापूर्वक भिक्षुओं और ब्राह्मणों को दान दो।'"
5. "उस समय से पाँच सौ वर्षों तक मैं इसी रूप में नग्न, भूख और प्यास से त्रस्त होकर भटकता रहा हूँ; यह मेरे बुरे कर्मों का फल है।"
6. "हे प्रभु, मैं श्रद्धापूर्वक आपकी आराधना करता हूँ। हे ज्ञानी, शक्तिशाली, मुझ पर दया कीजिए! जाइए, मेरे नाम पर कुछ दान दीजिए; हे पूज्यवर, मुझे मेरे कष्टों से मुक्त कीजिए।"
संपादकों ने वर्णन जारी रखा:
7. "बहुत अच्छा" कहते हुए, दयालु सारिपुत्त ने भिक्षुओं को भोजन का एक टुकड़ा, मुट्ठी भर कपड़ा और एक कटोरा पानी दिया और दान का श्रेय उसे दिया।
8. जैसे ही यह उसे दिया गया, परिणाम सामने आया। दान का फल यह था:
भोजन, वस्त्र और पेय।
9. फिर पवित्र, स्वच्छ वस्त्र पहने, बनारस के उत्तम वस्त्र धारण किए, विभिन्न वस्त्रों और आभूषणों से सजी हुई, वह सारिपुत्त के पास गई।

सारिपुत्त:
10. "हे देवी, आप अत्यंत सुंदर रूप धारण किए हुए हैं, आप भोर के तारे के समान समस्त लोकों को प्रकाशित करती हैं।"
11. "ऐसा रूप किस कारण है? आपको यह सौभाग्य क्यों प्राप्त हुआ है, और मन को प्रिय सुख-सुविधाएँ आपके भाग में क्यों आती हैं?"
12. "हे देवी, मैं आपसे यही पूछता हूँ। हे अत्यंत शक्तिशाली, मनुष्य रूप धारण करने वाली आप, आपने कौन सा पुण्य कर्म किया है? आपको यह तेजस्वी महिमा कहाँ से प्राप्त हुई है, और आपका प्रकाश समस्त लोकों को क्यों प्रकाशित करता है?"

प्रार्थना
13. "हे दयालु द्रष्टा, मेरी सारी हड्डियाँ दिखाई दे रही हैं, मैं दुबला-पतला, भूखा, नंगा और झुर्रीदार त्वचा वाला हूँ, आपने मेरी इस दयनीय स्थिति में मुझे देखा है।"
14. "जब आपने भिक्षुओं को भोजन का एक टुकड़ा, मुट्ठी भर कपड़ा और एक कटोरा पानी दिया, तो आपने मुझे उस दान का पुण्य प्रदान किया।"
15. "देखो उस टुकड़े का फल: सुख की इच्छा से, मैं दस सौ वर्षों तक अनेक स्वादों वाले भोजन का आनंद लेता हूँ।
" 16. "देखो मुट्ठी भर कपड़े से कैसा परिणाम निकला: उतने ही कपड़े जितने नंदराज के राज्य में थे।" 17.
"आदरणीय, मेरे पास उससे भी अधिक वस्त्र और आवरण हैं, रेशमी और ऊनी, लिनेन और सूती।" 18.
"वे अनेक और अनमोल हैं; और वे आकाश में लटके हुए हैं; और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं उनमें से जो भी मुझे अच्छा लगता है, उसे पहन लेता हूँ।"
19. "देखो, जल के कटोरे से कैसा परिणाम निकला है: चार गहरे, सुव्यवस्थित कमल-कुंड।
20. "उनका जल स्वच्छ है और किनारे सुंदर हैं; वे शीतल हैं और उनमें मनमोहक सुगंध है; वे गुलाबी कमल और नीले कमल से ढके हुए हैं और कमल के रेशों से भरे हुए हैं। 21. "
मैं स्वयं आनंदित होता हूँ, खेलता हूँ और प्रसन्न होता हूँ, मुझे किसी भी ओर से कोई भय नहीं है। आदरणीय महोदय, मैं इस संसार में दयालु द्रष्टा की आराधना करने आया हूँ।"
बुद्ध ने राजा नंदराज की कथा भी सुनाई। हजारों वर्ष पूर्व, बनारस नगर में एक गृहस्थ रहता था जिसने जंगल में एक पाचेक बुद्ध (एक प्रबुद्ध व्यक्ति) को देखा। पाचेक बुद्ध अपने वस्त्रों के लिए कपड़े ढूंढ रहे थे। गृहस्थ ने उनसे पूछा, 'आप क्या कर रहे हैं?' और जब उन्हें बताया गया, तो वे द्रवित हो गए और उन्होंने अपने वस्त्र उन्हें दान कर दिए। उनके दान के फलस्वरूप, मृत्यु के बाद उनका जन्म तावंती स्वर्ग में हुआ, जहाँ उन्हें अनेक दिव्य धन-संपत्ति और एक आलीशान महल प्राप्त हुआ। स्वर्ग में उनका समय समाप्त होने के बाद, उनका पुनः जन्म बनारस नगर के निकट एक गाँव में मनुष्य के रूप में हुआ। काम की तलाश में वे बनारस गए। बनारस के राजा की केवल एक पुत्री थी, कोई पुत्र नहीं था। समय बीतने के साथ, इस व्यक्ति का विवाह राजकुमारी से हुआ और वे राजा नंदराज बन गए। उन्होंने न्यायपूर्वक शासन किया और उनका राज्य समृद्ध था। वे और उनकी पत्नी अपने पाँचों पुत्रों के साथ, जरूरतमंदों, धर्मात्माओं और प्रबुद्ध व्यक्तियों को, जो उनकी सहायता के लिए इधर-उधर भटक रहे थे, भरपूर दान देते थे। एक

बार खोजते-खोजते रानी को हिमालय क्षेत्र में एक अरिहंत, एक प्रबुद्ध व्यक्ति, पाचेक बुद्ध मिले। उन्होंने राजा की ओर से उन्हें महल में आमंत्रित किया और उन्होंने एक निश्चित दिन आने का वादा किया। नियत दिन पाचेक बुद्ध आकाश से उतरकर शहर के उत्तरी द्वार पर आ पहुँचे। सभी ने उनके चरणों में नतमस्तक होकर उन्हें दान दिया, दीक्षा ली और उन्हें महल में रहने का स्थान दिया। उनकी और उनके शिष्यों की अच्छी देखभाल की गई। पाचेक बुद्ध की मृत्यु के बाद उनका अंतिम संस्कार किया गया और उनके अवशेषों को उनके लिए बनाए गए एक मंदिर में रखा गया। शरीर क्षय और मृत्यु के अधीन है, यह जानकर उनका बड़ा पुत्र इतना प्रभावित हुआ कि वह भी भिक्षु बन गया।

इस मार्ग का अनुसरण करते हुए, पूरे परिवार ने ध्यान के आनंद का अनुभव किया। उनकी मृत्यु के बाद, दोनों का जन्म सर्वोच्च ब्रह्मलोक (देवदूतों का निवास स्थान) में हुआ। बाद में, जब उनका समय वहाँ समाप्त हो गया, तो राजा का जन्म बुद्ध के प्रमुख शिष्य, वरिष्ठ भिक्षु महाकस्सपा के रूप में हुआ। उनकी पत्नी प्रमुख भिक्षुणी, भद्दा कपिलाणी बनीं।

इस प्रकार बुद्ध ने कथा का विस्तार से वर्णन किया, फिर धर्म प्रवचन द्वारा सभा को प्रेरित और प्रोत्साहित किया।

(चूंकि महाकस्सपा और भद्दा कपिलानी ने बुद्ध के मार्गदर्शन में अर्हतत्व/ज्ञान प्राप्त कर लिया था, इसलिए उनके लिए पुनर्जन्म का कोई विकल्प नहीं था, अर्थात् उन्होंने पुनर्जन्मों से मुक्ति प्राप्त कर ली थी।)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> सारिपुत्त-थेरा-मातु-पेटिवत्तु-वन्नना

पिछला <<<<----------------------- 2.2 -------------------------->>>> अगला

2.2 वरिष्ठ भिक्षु सारिपुत्त की माता

जब गुरु वेलुवाना में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

एक दिन पूज्य सारिपुत्त, महामोग्गलाना, अनुराधा और कप्पिना राजगृह से कुछ ही दूरी पर जंगल में एक स्थान पर ठहरे हुए थे। उस समय बनारस में एक अत्यंत धनी ब्राह्मण (पुजारी) भिक्षुओं, ब्राह्मणों, निर्धनों, यात्रियों, राहगीरों और भिखारियों की सहायता करने में उदार थे। वे उन्हें भोजन, पेय, वस्त्र, आवास और अन्य लाभ प्रदान करते थे। उन्होंने अपने जीवन को सुव्यवस्थित रखा और अवसर के अनुसार और उचित समझे जाने पर आने-जाने वालों को यात्रा के लिए आवश्यक सभी चीजें दान करते थे। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा,
"श्रीमती, दान के इस कार्य में लापरवाही न करें, बल्कि इसे विधिवत बनाए रखें।" उनकी पत्नी ने सहमति दी, लेकिन उनके जाने के बाद उन्होंने भिक्षुओं के प्रति दान के नियम को संक्षिप्त कर दिया। इसके अलावा, आश्रय लेने आए यात्रियों को उन्होंने घर के पीछे एक परित्यक्त, जर्जर झोपड़ी की ओर इशारा करते हुए कहा, "यहीं ठहरें।" जब यात्री भोजन, पेय और अन्य चीजों के लिए वहाँ आते थे, तो वह शाप देती थी, प्रत्येक को अशुद्ध और घृणित चीजों की सूची देती हुई कहती थी: "गोबर खाओ! मूत्र पियो! रक्त पियो! अपनी माता का मस्तिष्क खाओ!" कर्म के बल पर मृत्यु के समय उसे उठा लिया गया और उसका पुनर्जन्म एक छोटी कुतिया के रूप में हुआ, जिसने अपने कुकर्म के अनुसार दुख भोगा। अपने पिछले जन्म के रिश्ते को याद करते हुए और सारिपुत्त के पास जाने की इच्छा से वह उनके निवास पर आई। वहाँ उनके घर के देवों ने उसे प्रवेश देने से इनकार कर दिया। इसलिए उसने इस प्रकार कहा: "पाँचवें पिछले जन्म में मैं आदरणीय सारिपुत्त की माता थी; मुझे उनसे मिलने के लिए अंदर जाने की अनुमति दें।" यह सुनकर उन्होंने उसे प्रवेश दे दिया। अंदर जाकर वह कुटिया के दूसरे छोर पर खड़ी हो गई और उन्हें देखा। जैसे ही उन्होंने उसे देखा, उनके मन में करुणा जागी और उन्होंने उससे पूछा:

1. "तुम नग्न और भयानक रूप से विकृत हो, दुबले-पतले और उभरी हुई नसों वाले। हे पतले, उभरी हुई पसलियों वाले, तुम कौन हो, जो यहाँ हो?"

पेटी:
2. "पिछले जन्मों में मैं तुम्हारी माँ थी। पेटा-लोक में मेरा पुनर्जन्म हुआ है, मैं भूख और प्यास से पीड़ित हूँ।"
3. "त्यागा हुआ, बाहर निकाला हुआ, लार, नाक का बलगम, कफ, जलते हुए शरीर की चर्बी और प्रसवित स्त्रियों का रक्त;"
4. "और घायलों का रक्त, और जिनके नाक और सिर कटे हुए हैं, संक्षेप में, पुरुषों और स्त्रियों से जुड़ी हर (घृणित) चीज, मैं भूख से अधमरी हूँ, खाती हूँ।"
5. "मैं जानवरों और मनुष्यों का मवाद और रक्त खाती हूँ; मैं बिना आश्रय और बिना घर के, काले पलंग पर पड़ी हूँ।"
6. "प्रिय पुत्र, मेरे लिए एक उपहार दो, और जब तुम इसे दे दो, तो इसका श्रेय मुझे दे देना; इस प्रकार मैं मवाद और रक्त खाने से मुक्त हो जाऊँगी।"
अगले दिन, सारिपुत्त अन्य तीन शिष्यों के साथ राजगृह में भिक्षा मांगने राजा बिम्बिसार के निवास पर पहुंचे। जब राजा ने पूछा, "आदरणीय महोदय, आप यहाँ क्यों आए हैं?" तो आदरणीय महामोग्गलाना ने राजा को सारी घटना बताई। राजा ने कहा, "आदरणीय महोदय, अनुमति है," और उन्हें विदा कर दिया। उन्होंने अपने मंत्री को बुलाया और आदेश दिया, "नगर के उपवन में छाया और पानी से सुसज्जित चार कुटियाएँ बनवाओ।" जब

कुटियाएँ बनकर तैयार हो गईं, तो उन्होंने उन्हें जीवन की सभी आवश्यक वस्तुओं सहित बड़े सारिपुत्त को दे दिया। तब सारिपुत्त ने उन्हें भिक्षुओं के सर्वव्यापी संघ में प्रस्तुत किया, जिसके प्रमुख बुद्ध थे, और इसका श्रेय भिक्षापात्र को दिया। भिक्षापात्र का लाभ उठाकर उनका देवलोक में पुनर्जन्म हुआ। अपनी सभी इच्छाओं से संपन्न होकर, एक दिन वह आदरणीय महामोग्गलाना के पास गईं और उन्हें अपने भिक्षापात्र और देवलोक पुनर्जन्म की विस्तृत कहानी सुनाई।

इस प्रकार कहा गया है:
7. अपनी माता का वचन सुनने के बाद, दयालु उपतिस्सा (सारिपुत्त) ने मोग्गलाना, अनुराधा और कप्पिना को बुलाया।
8. चार कुँवें बनवाकर उन्होंने उन्हें चारों लोकों के संघ को दे दिया; उन्होंने कुँवों, भोजन और पेय को अपनी माता की ओर से भेंट बताया।
9. इसके तुरंत बाद, जब इसका श्रेय उन्हें दिया गया, तो भेंट का फल प्राप्त हुआ, जो फल, भोजन, पेय और वस्त्र थे।
10. तब, पवित्र, स्वच्छ वस्त्र पहने, सर्वश्रेष्ठ बनारसी वस्त्र और आभूषणों से सजी, विभिन्न प्रकार के वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित होकर, वह कोलिता (महामोग्गलाना का मूल नाम) के पास पहुँचीं।

महा-मोग्गलाना ने पूछा:
11. "देवी (देवी/परी), आप अत्यंत सुंदर रूप धारण किए हुए हैं, आप भोर के तारे के समान समस्त लोकों को प्रकाशित करती हैं।"
12. "आपको ऐसा रूप किस कारण प्राप्त हुआ है? यहाँ आपको सुख क्यों प्राप्त होता है, और हृदय को प्रिय सभी सुख आपको क्यों प्राप्त होते हैं?"
13. "हे देवी, मैं आपसे यही पूछता हूँ। मनुष्य रूप धारण करने वाली आपने कौन सा पुण्य कर्म किया है? आपको यह तेजस्वी महिमा कहाँ से प्राप्त हुई, और आपकी चमक समस्त लोकों को क्यों प्रकाशित करती है?"

याचिका:
14. "सारिपुत्त के वरदान से मैं प्रसन्न हूँ, मुझे किसी भी ओर से कोई भय नहीं है। आदरणीय महोदय, संसार में आप ही दयालु संत हैं, जिनकी आराधना करने मैं यहाँ आया हूँ।"

वरिष्ठ महामोगल्लाना ने यह घटना बुद्ध को सुनाई, जिन्होंने तब धर्म प्रवचन दिया और सभा को प्रसन्न किया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> मट्टा-पेटी-वत्थु-वन्नाना

पिछला <<<<----------------------- 2.3 ------------------------->>>> अगला

2.3 मट्टा की कहानी

जब गुरु (बुद्ध) जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

सावत्थी में एक गृहस्थ रहता था, जो आस्थावान और धर्मपरायण था। उसकी पत्नी, मत्ता, नास्तिक, क्रोधी स्वभाव की और बांझ थी। अपने वंश के समाप्त होने के भय से, उस व्यक्ति ने तिस्सा नाम की एक युवती से विवाह किया। वह आस्थावान, धर्मपरायण और अपने पति को प्रसन्न करने वाली थी। उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम भूता रखा गया। गृहस्थी के रूप में, वह आदरपूर्वक चार भिक्षुओं की सेवा करती थी। अपनी प्रतिद्वंदी को सहन न कर पाने के कारण, मत्ता ने घर की सफाई करते समय सारा कूड़ा तिस्सा के सिर पर डाल दिया। कुछ समय बाद मत्ता की मृत्यु हो गई और वह एक प्रेत (भूत) के रूप में पुनर्जन्म लेकर अपने कर्मों के फलस्वरूप पांच प्रकार के कष्ट भोगने लगी। फिर एक दिन अतीत की स्मृति के साथ वह प्रेत तिस्सा के सामने प्रकट हुई, जो घर के पीछे उपासना कर रही थी। तिस्सा ने उसे देखकर पूछा:

1. "तुम नग्न और भयानक रूप से विकृत हो, दुबले-पतले और उभरी हुई नसों वाले। तुम पतले हो, तुम्हारी पसलियां उभरी हुई हैं, अब तुम कौन हो, तुम जो यहां हो?"

मत्ता :

2. "मैं मत्ता हूँ, तुम तिस्सा हो; पहले मैं तुम्हारी सहपत्नी थी। एक बुरे कर्म के कारण, मैं यहाँ से पेटों की दुनिया में चली गई।"

तिस्सा:

3. "अब तुम्हारे शरीर, वाणी या मन से कौन सा बुरा कर्म किया गया था? किस कर्म के फलस्वरूप तुम यहाँ से पेटों के लोक में चले गए?"

माता:

4. "मैं क्रोधित और निर्दयी था। ईर्ष्यालु, कंजूस और कपटी। क्योंकि मैंने तुम्हारे साथ अपशब्दों का प्रयोग किया, इसलिए मैं यहाँ से पेटों की दुनिया में चला गया हूँ।"

तिस्सा:

5. "मैं भी सब जानती हूँ, तुम कितने हिंसक थे; लेकिन अब मैं तुमसे कुछ और पूछूँगी। तुम गंदगी से क्यों ढके हुए हो?"

माता:

6. "तुमने अपना सिर धो लिया था और साफ कपड़े पहने हुए थे; और मैंने सोचा, मैं तुमसे भी ज्यादा साफ-सुथरा था; मैं तुमसे ज्यादा सजे-धजे हुए था।"

7. "जब मैं इस ओर झुकी हुई थी और देख रही थी, तब तुम हमारे पति से बात कर रही थी। इसी कारण मेरे मन में बहुत ईर्ष्या और क्रोध उत्पन्न हुआ।"

8. "फिर मैंने कुछ धूल ली और उसे तुम पर बिखेर दिया। उस कर्म के फलस्वरूप मैं धूल से ढक गया हूँ।"

तिस्सा:

9. "मैं सचमुच सब कुछ जानता हूँ; आपने मुझ पर धूल छिड़की है। लेकिन अब मैं आपसे एक और बात पूछूंगा। आपको इतनी खुजली क्यों हो रही है?"

मत्ता :

10. "हम दोनों औषधीय जड़ी-बूटियाँ इकट्ठा करने के लिए जंगल में गए। तुमने औषधियाँ लीं और मैंने कपिकच्छु के फल।"

11. "फिर मैंने तुम्हारी जानकारी के बिना उन्हें तुम्हारे बिस्तर पर बिखेर दिया। इस कृत्य के परिणामस्वरूप मुझे खुजली सता रही है।"

तिस्सा:

12. "मैं यह सब जानती हूँ; तुमने मेरा बिस्तर बिछाया। लेकिन अब एक और बात है जो मैं तुमसे पूछूँगी। तुम नग्न क्यों हो; "

मत्ता :

13. "दोस्तों की एक सभा थी; रिश्तेदारों का एक जमावड़ा हुआ; और आपको हमारे पति के साथ आमंत्रित किया गया था, जबकि मुझे नहीं।"

14. "फिर मैंने तुम्हारी जानकारी के बिना तुम्हारा वस्त्र उतार लिया। इस कर्म के फलस्वरूप मैं नंगा हो गया हूँ।"

तिस्सा:

15. "सचमुच, मैं सब जानती हूँ। तुमने मेरे कपड़े ले लिए। लेकिन अब मैं तुमसे कुछ और पूछूँगी। तुम्हारे शरीर से मल की गंध क्यों आ रही है?"

मत्ता :

16. "मैंने तुम्हारा इत्र, माला और नया मरहम तालाब में फेंक दिया। यह बुरा कर्म मैंने किया है। इस आचरण के फलस्वरूप, मेरे शरीर से मल की दुर्गंध आ रही है।"

तिस्सा:

17. "मैं यह सब जानता हूँ; कि बुराई तुम्हारे द्वारा की गई है। लेकिन अब मैं तुमसे कुछ और पूछूंगा। तुम क्यों दुखी हो?"

मत्ता :

18. "हमारे घर में जो भी संपत्ति थी, वह हम दोनों की बराबर-बराबर थी। यद्यपि दान करना हमारा कर्तव्य है, फिर भी मैंने अपने लिए कोई आश्रय नहीं बनाया। उस पाप के फलस्वरूप मैं दु:ख में हूँ।"

19. "तुमने मुझसे यही शब्द कहे थे: 'तुम बुरे कर्म कर रहे हो, क्योंकि बुरे कामों से तुम्हें आसानी से सुख प्राप्त नहीं होगा।' "

तिस्सा:

20. "तुम शत्रुतापूर्ण भाव से मेरे पास आए; और तुमने मुझसे ईर्ष्या भी की। देखो, बुरे कर्मों का दंड कैसा होता है।"

21. "तुम्हारे घर में नौकरानियाँ थीं; निश्चय ही तुम्हारे वे अनेक आभूषण भी अब दूसरों द्वारा भोगे जा रहे हैं। सुख शाश्वत नहीं होते।"

22. "अब भूता के पिता बाजार से घर लौटेंगे। शायद वे तुम्हें कुछ देंगे। तब तक तुम यहाँ से मत जाना।"

मत्ता :

23. "मैं नग्न और बदसूरत दिखता हूँ, दुबला-पतला हूँ और मेरी नसें उभरी हुई हैं। ये रही मेरी धोती; भूता के पिता मुझे न देखें।"

तिस्सा:

24. "आओ, मैं तुम्हें क्या दूं, या तुम्हारे लिए क्या करूं जिससे तुम खुश रहो और तुम्हारी सारी इच्छाएं पूरी हों?"

मत्ता:

25. "यहाँ संघ के चार भिक्षु और चार अन्य पुरुष हैं। इन आठों को भोजन कराएँ और दान का श्रेय मुझे हस्तांतरित करें। तब मैं प्रसन्न हो जाऊँगा, मेरी सभी इच्छाओं की पूर्ति में धन्य हो जाऊँगा।"

26. तिस्सा ने "ठीक है" कहते हुए सहमति दी और आठ भिक्षुओं को भोजन कराया। उसने उन्हें वस्त्र पहनाए और दान का श्रेय स्वयं को दिया।

27. इसके तुरंत बाद, जब इसका श्रेय उसे हस्तांतरित किया गया, तो परिणाम सामने आया। दान का फल यह था: भोजन, वस्त्र और पेय।

28. फिर पवित्र, स्वच्छ वस्त्र पहने, सर्वश्रेष्ठ बनारस वस्त्र धारण किए, विभिन्न प्रकार के वस्त्रों और आभूषणों से सजी हुई, वह अपनी सहपत्नी के पास पहुँची।

तिस्सा:

29. "हे देवी (देवी/परी), आप अत्यंत सुंदर रूप वाली हैं, आप भोर के तारे के समान समस्त लोकों को प्रकाशित करती हैं।"

30. "किस कारण से तुम्हारा ऐसा रूप है? यहाँ सुख तुम्हारा हिस्सा क्यों है, और जो भी सुख तुम्हें प्रिय हैं, वे तुम्हें क्यों प्राप्त होते हैं?"

31. हे देवी, हे अत्यंत शक्तिशाली, मनुष्य रूप धारण करने वाली, मैं आपसे यह प्रश्न पूछता हूँ: आपने क्या अच्छा कार्य किया है? कब से आपमें यह तेजस्वी महिमा है, और क्यों आपका प्रकाश समस्त लोकों को प्रकाशित करता है?

मत्ता :

32. "मैं मत्ता हूँ, तुम तिस्सा हो। पहले मैं तुम्हारी सहपत्नी थी। एक बुरे कर्म के कारण, मैं यहाँ से पेटों की दुनिया में चली गई। तुम्हारे द्वारा दिए गए उपहार से मैं प्रसन्न हूँ, क्योंकि मुझे किसी भी तरफ से डरने की कोई बात नहीं है।"

33. "हे बहन, तुम अपने सभी सगे-संबंधियों के साथ दीर्घायु हो! तुम्हें दु:ख और वासना से मुक्त, अपने आप को मुक्त करने वाले लोगों का निवास स्थान (स्वर्ग) प्राप्त हो।"

34. "यहाँ धर्मपरायण जीवन जीकर और दान देकर, हे सुंदर, स्वार्थ के दाग को जड़ से मिटाकर स्वर्ग में निर्दोष प्रवेश करो।"

तिस्सा ने यह कहानी अपने पति को सुनाई, उन्होंने इसे भिक्षुओं को सुनाया और भिक्षुओं ने इसे बुद्ध को सुनाया। बुद्ध ने इसे प्रवचन का विषय बनाया, जिसे सुनकर अनेक गृहस्थ उदारता से भर गए और उन्होंने कंजूसी छोड़कर दान करना शुरू कर दिया और पुण्य अर्जित करने लगे।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> नंदा-पेटी-वत्थु-वन्नाना

पिछला <<<<----------------------- 2.4 -------------------------->>>> अगला

2.4 नंदा की कहानी

जब गुरु (बुद्ध) जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने पेटी नंदा की यह कहानी सुनाई।

सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित एक गाँव में नंदसेना नाम का एक धर्मनिष्ठ और धार्मिक शिष्य रहता था। उसकी पत्नी, जिसका नाम नंदा था, धर्महीन, लालची, गुस्सैल, कठोर वाणी वाली और अपने पति की अवज्ञाकारी थी; वह ढोल की तरह बेबाक बोलती थी और अपशब्दों का प्रयोग करती थी। मृत्यु के बाद, वह एक प्रेत (पेटी) के रूप में पुनर्जन्म लेकर उसी गाँव के पास रहने लगी। एक दिन, जब नंदसेना गाँव से बाहर आ रहा था, तब वह उसके सामने प्रकट हुई। उसे देखकर उसने उससे इस श्लोक में बात की:

1. "तुम काले और बदसूरत दिखते हो; तुम्हारा शरीर खुरदरा है और तुम भयानक दिखते हो। तुम्हारी आँखें लाल हैं, तुम्हारे दाँत पीले हैं। मुझे लगता है कि तुम इंसान नहीं हो।"

पेटी :

2. मैं नंदा, नंदसेना हूँ; पहले मैं तुम्हारी पत्नी थी। दुर्व्यवहार करने के कारण, मैं पेटा-लोक में चली गई

नंदसेना:

3. "अब शरीर, वाणी या मन से कौन सा दुष्ट कर्म किया गया? किस कर्म के फलस्वरूप तुम यहाँ से पादलोक में गए हो?"

पेटी:

4. "मैं गुस्से में था और मेरी वाणी कठोर थी, और मैंने आपके प्रति कोई आदर भी नहीं दिखाया। इसलिए, अपशब्दों का प्रयोग करने के कारण, मैं यहाँ से पेटा-लोक चला गया।"

नंदसेना:

5. "आओ, मैं तुम्हें एक लबादा देता हूँ; इसे पहन लो। जब तुम इसे पहन लो, तो आओ, मैं तुम्हें घर ले चलूँगा

6. "घर लौटने पर तुम्हें कपड़े, भोजन और पेय पदार्थ मिलेंगे। तुम अपने बेटों को देखोगे, और अपनी शरारती बेटी को भी देखोगे।"

पेटी:

7. "जो कुछ तुम्हारे हाथ से मुझे दिया जाता है, उससे मुझे कोई लाभ नहीं होता। परन्तु जो भिक्षु नैतिक नियमों का पालन करते हैं, वासना से मुक्त हैं और सत्य के ज्ञाता हैं,

8. "उन्हें भोजन और पेय पदार्थ खिलाओ और दान का पुण्य मुझे प्रदान करो। तब मेरी सभी इच्छाएँ पूरी होंगी और मैं प्रसन्न और धन्य हो जाऊँगा।"

9. फिर "बहुत अच्छा" कहते हुए उन्होंने भरपूर दान दिया: भोजन, पेय पदार्थ, ठोस भोजन, वस्त्र, आवास, छतरियाँ, इत्र, पुष्पमालाएँ और विभिन्न प्रकार की चप्पलें। भोजन और पेय से विश्राम करने के बाद, उन्होंने नैतिक उपदेशों में निपुण, वासना से मुक्त और विद्वान भिक्षुओं को दान का पुण्य प्रदान किया।

10. इसके तुरंत बाद, जब इसका श्रेय उसे हस्तांतरित किया गया, तो परिणाम सामने आया। दान का फल यह था: भोजन, वस्त्र और पेय।

11. फिर पवित्र, स्वच्छ वस्त्र पहने, उत्तम बनारस का कपड़ा पहने, विभिन्न वस्त्रों और आभूषणों से सजी हुई, वह अपने पति के पास पहुँची।

नंदसेना ने उससे पूछा:

12. "हे देवी (देवदूत), आप तेजस्वी स्वरूप की हैं, आप भोर के तारे के समान समस्त लोकों को प्रकाशित करती हैं।"

13. "किस गुण के कारण तुम्हारा ऐसा रूप है? यहाँ सुख तुम्हारा हिस्सा क्यों है, और जो भी सुख तुम्हें प्रिय हैं, वे तुम्हें क्यों प्राप्त होते हैं?"

14. "हे देवी, हे महानुभाव, आप मनुष्य के समान रूप धारण कर चुकी हैं, मैं आपसे पूछता हूँ कि आपने कौन सा पुण्य कर्म किया है? आप इतनी तेजस्वी क्यों हैं, और आपका प्रकाश समस्त लोकों को क्यों प्रकाशित करता है?"

पेटी:

15. "मैं नंदा, नंदसेना हूँ; पहले मैं तुम्हारी पत्नी थी। एक बुरा कर्म करने के कारण, मैं यहाँ से पेट-लोक में चली गई। तुम्हारे द्वारा दिए गए उपहार से, मैं हर तरफ से भय से मुक्त होकर आनंदित हूँ

16. "हे गृहस्थ, आप अपने सभी सगे-संबंधियों के साथ दीर्घायु हों; आप दुःख और वासना से मुक्त उस निवास को प्राप्त करें, जो स्वतंत्र इच्छाशक्ति वाले लोगों (अर्थात् स्वर्गदूतों) का निवास स्थान है।"

17. "यहाँ (मनुष्य जीवन में) धर्म/धार्मिक जीवन जीते हुए और दान देते हुए, गृहस्थ बनकर, नैतिकता का पालन करते हुए, आप हृदय के दागों को जड़ से मिटा दें और दोषरहित होकर स्वर्ग में प्रवेश करें।"

इस प्रकार नंदा ने नंदसेना की सहायता से दिव्य धन और दिव्य निवास प्राप्त किया। इस कहानी को उनके शिष्य ने भिक्षुओं को सुनाया, भिक्षुओं ने इसे भगवान बुद्ध को बताया। बुद्ध ने इसे धन संबंधी अपने प्रवचन का विषय बनाया। यह लोगों के कल्याण के लिए एक शिक्षा बन गई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> मत्थाकुंडली-पेटा-वत्थु-वन्नाना

पिछला <<<<------------------------ 2.5 --------------------------->>>> अगला

2.5 मत्थाकुंडली की कहानी

यह बात विमानवत्थु 7.9 में पहले ही बताई जा चुकी है ।
अतः इसे इसी प्रकार समझा जाना चाहिए।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> कान्हा-पेटा-वत्थु-वन्नाना

पिछला <<<<------------------------ 2.6 --------------------------->>>> अगला

2.6 कान्हा (कृष्ण) की कहानी

जब गुरु (बुद्ध) जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

सावत्थी में एक गृहस्थ शिष्य के पुत्र का निधन हो गया। दुखी पिता न तो स्नान कर पा रहे थे, न भोजन कर पा रहे थे, न अपना काम कर पा रहे थे और न ही बुद्ध की सेवा कर पा रहे थे। वे व्याकुल होकर कहते थे, "मेरा प्रिय पुत्र कहाँ है, जो मुझे छोड़कर चला गया? वह हमसे पहले क्यों चला गया?" जब गुरु (बुद्ध) भोर में (दिव्य दृष्टि से) संसार का अवलोकन कर रहे थे, तो उन्होंने देखा कि वह व्यक्ति सोतापत्ति (प्रथम स्तर का ज्ञानोदय) के फल के लिए नियत था; अगले दिन, भिक्षुओं के एक समूह से घिरे हुए, वे सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए घूमने लगे। भोजन के बाद, वे अपने सेवक आनंद के साथ उस व्यक्ति के घर के द्वार पर गए। तब उसके परिवार ने गृहस्थ शिष्य को यह बात बताई और उसे गुरु (बुद्ध) के समक्ष प्रस्तुत किया। जब गुरु ने उसे एक तरफ बैठे देखा, तो उन्होंने कहा, "गृहस्थ शिष्य, क्या तुम शोक में हो?" उसने उत्तर दिया, "जी, पूज्यवर।" बुद्ध ने कहा, "हे गृहस्थ शिष्य, पुराने समय के ज्ञानी पुरुष किसी मृत पुत्र के लिए शोक नहीं करते थे, जब वे ऋषियों की कहानी सुन लेते थे।" फिर घर के मुखिया के आग्रह पर उन्होंने यह कहानी सुनाई।

द्वारवती नगर में एक समय की बात है, दस राजभाई रहते थे: वासुदेव (कृष्ण), बलदेव, चंददेव, सूर्यदेव, अग्गीदेव, वरुणदेव, अज्जुन, पज्जुन, घटपांडित (अब बुद्ध) और अंकुर। इनमें से महान राजा वासुदेव के पुत्र का निधन हो गया। राजा (कृष्ण) शोक से व्याकुल होकर अपने सभी कर्तव्यों का उपकार कर, शय्या को अंजलि प्रणाम करके लेट गए और निरर्थक बातें करने लगे। तब घटपांडित ने सोचा, "मेरे भाई के शोक को दूर करने वाला मेरे सिवा कोई नहीं है। मैं चतुराई से उसका शोक दूर करूँगा।" अतः उन्होंने पागल का वेश धारण कर लिया और आकाश की ओर देखते हुए पूरे नगर में घूमने लगे और कहने लगे, "मुझे एक खरगोश दो, मुझे एक खरगोश दो।" तब पूरे नगर ने सोचा, "घटपांडित पागल हो गया है।" उस समय राजा के सलाहकार, रोहिनेय्या नाम के व्यक्ति, राजा वासुदेव (कृष्ण) के पास गए और उनसे इस श्लोक से बातचीत शुरू की:

1. "उठो, कान्हा (कृष्ण)। तुम क्यों लेटे हो? नींद के सपने तुम्हें क्या लाभ पहुंचाते हैं? जो तुम्हारा अपना भाई है, तुम्हारा हृदय और दाहिनी आंख है, वह हवाओं से व्याकुल है। घट व्यर्थ की बातें कर रहा है, केशव (कृष्ण)!"

शिक्षक ने आगे कहा:

2. जब केशव (कृष्ण) ने रोहिणी का यह कथन सुना, तो वे अपने भाई के शोक से व्याकुल होकर घबराए हुए चेहरे के साथ उठ खड़े हुए।

तब राजा चबूतरे से नीचे उतरे और घटपांडित से मिलने गए। उन्होंने घटपांडित को दोनों हाथों से कसकर पकड़ लिया और उनसे बातचीत करते हुए कहा:

3. "अब तुम पागलों की तरह द्वारवती नगर में क्यों घूम रहे हो और 'एक खरगोश, एक खरगोश' बुदबुदा रहे हो? तुम्हें किस तरह का खरगोश चाहिए?"

4. मैं तुम्हारे लिए सोने, रत्नों, तांबे, चांदी, बहुमूल्य पत्थरों और मूंगे से बना एक खरगोश बनवाऊंगा।

5. जंगल में और भी छोटे खरगोश दौड़ रहे हैं; मैं उन्हें भी तुम्हारे पास भेजूंगा। तुम्हें किस तरह का खरगोश चाहिए?

घटपंडित:

6. "मुझे ये खरगोश नहीं चाहिए, ये पृथ्वी पर रहने वाले खरगोश; मुझे चंद्रमा का खरगोश चाहिए: उसे मेरे पास लाओ, केशव!"

तब राजा ने उसकी बात सुनी, वह इस विचार से व्याकुल हो गया, 'निस्संदेह, मेरा भाई पागल हो गया है,' और बोला:

7. "अब मेरे रिश्तेदार, तुम अपना प्यारा जीवन अवश्य ही बर्बाद कर दोगे। तुम ऐसी चीज की लालसा कर रहे हो जो वांछनीय नहीं है, क्योंकि तुम चाँद के खरगोश की कामना कर रहे हो।"

जब घटपांडित ने राजा के शब्द सुने, तो वह वहीं खड़े होकर बोले:

8. "यदि हे कान्हा (कृष्ण), आप इतने बुद्धिमान हैं कि आप दूसरों को भी ज्ञान देते हैं, तो आप आज भी अपने उस पुत्र के लिए शोक क्यों मनाते हैं जो अतीत में मर गया था?"

जब वह सड़क के बीचोंबीच खड़ा था, तब उसने इस प्रकार कहा:

"मैं तो वास्तव में उस चीज़ की इच्छा रखता हूँ जो समझ में आती है, परन्तु तुम उस चीज़ के लिए शोक मनाते हो जो समझ में नहीं आती।"

फिर उन्हें धम्म की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा:

9. "यह न तो मनुष्य के लिए संभव है और न ही आत्मा के लिए, लेकिन यह तो बिल्कुल असंभव है कि जन्म लेने वाला पुत्र न मरे?"

10. "हे कान्हा, मंत्रों से, जड़ों से बनी औषधियों से, जड़ी-बूटियों से, या धन से भी उस दिवंगत आत्मा को यहाँ लाना संभव नहीं है, जिसके लिए तुम शोक मना रहे हो।"

11. "अत्यंत धनी, अनेक संपत्तियों के स्वामी, राज्यधारी और योद्धा, जो प्रचुर धन से संपन्न हैं, वे भी वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं हैं।"

12. "क्षत्रिय (योद्धा), ब्राह्मण (पुजारी), वैश्य (व्यापारी), शूद्र (सेवक), चांडाल, पुक्कुश, ये और इनके वंश सहित अन्य सभी वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं हैं।"

13. "जो लोग ब्राह्मणों द्वारा सोचे गए छह भागों वाले मंत्र का जाप करते हैं, वे और उनके ज्ञान से युक्त अन्य लोग भी वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होते।"

14. "निःसंदेह, जो ऋषि वास्तव में संत हैं, वे तपस्वी जिन्होंने स्वयं को वश में कर लिया है, वे भी उचित समय पर शरीर त्याग देते हैं।"

15. "सत्य को जानने वाले, अरिहंत (बुद्ध की तरह पूर्णतः प्रबुद्ध), और मानवीय भावनाओं से मुक्त लोग अपने अच्छे और बुरे कर्मों के अंत में इस शरीर को त्याग देते हैं।"

इस प्रकार घटपांडित (अब बुद्ध) ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। जब राजा (कृष्ण) ने उन्हें सुना, तो उनके दुःख का देहांत दूर हो गया और उनका मन शांत हो गया। घटपांडित की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा:

16. "निःसंदेह, मैं जल रहा था, मानो आग पर घी डाला गया हो, और आपने उस पर पानी छिड़का हो; अब मैं अपने सभी कष्टों का अंत करता हूँ।"

17. "निश्चित रूप से, आपने मुझसे वह पीड़ा, वह दुख जो मेरे हृदय में गहराई से बैठा हुआ था, दूर कर दिया, आपने मुझसे शोक, मेरे बेटे के लिए शोक को दूर कर दिया।"

18. "अब मैंने अपना शोक त्याग दिया है; मैं शांत और स्थिर हूँ। जब से मैंने आपके वचन सुने हैं, मैं न तो शोक करता हूँ और न ही रोता हूँ।"

19. "इसी प्रकार दयालु बुद्धिमान लोग भी करते हैं; वे हमें दुःख से दूर करते हैं, जैसे घटा ने अपने बड़े भाई के साथ किया था।"

20. "जिनके पास ऐसे साथी और सेवक होते हैं, वे उत्साहवर्धक शब्दों के साथ उनका अनुसरण करते हैं, जैसा कि घटा ने अपने बड़े भाई के साथ किया था।"

गुरु ने इस उपदेश को दोहराते हुए कहा: "हे शिष्य, प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों ने पुत्र की मृत्यु के शोक को ऋषियों की कथा सुनकर दूर किया।" फिर सत्य को समझाते हुए उन्होंने उस घटना का जातक कथा (जन्म कथा) सुनाई। प्रवचन के अंत में शिष्य को सोतापत्ति (दिव्य ज्ञान का प्रथम स्तर) का फल प्राप्त हुआ।

नोट : जातक क्रमांक 454 (घटा-जातक 2) देखें । घटपांडित का पुनर्जन्म गौतम बुद्ध के रूप में हुआ, और उनके बड़े भाई कृष्ण का पुनर्जन्म सारिपुत्र (या सारिपुत्त) के रूप में हुआ। सारिपुत्र बुद्ध के प्रमुख शिष्यों में से एक बने, उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया, अरिहंत (या अर्हत/बुद्ध के समतुल्य) बने और निर्वाण (अवतरण/मोक्ष) प्राप्त किया। बुद्ध ने सारिपुत्र को धर्म का सेनापति (धम्म सेनापति) नियुक्त किया।

लिंक:
घट पंडित (कृष्ण के भाई) की कहानी: घट-जातक2
अंकुर (कृष्ण के भाई) की कहानी: पेटवत्थु (भूत_कहानियाँ)1.21

पिछला <<<<----------------------- 2.7 ------------------------->>>> अगला

2.7 धनपाला, धनी व्यापारी

जब गुरु जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।
बुद्ध के जन्म से पहले, दासन्ना राज्य के एराकच्छ नगर में धनपालका नामक एक धनी व्यापारी रहता था, जो अविश्वासी, धर्महीन, नीच और विधर्मी था। उसके कार्यों को निम्नलिखित ग्रंथ से समझा जा सकता है। उसकी मृत्यु के बाद, उसका पुनर्जन्म एक प्रेत (भूत) के रूप में रेगिस्तान में हुआ। भूख और प्यास से व्याकुल होकर वह इधर-उधर भटकता रहा।
जब बुद्ध का जन्म हुआ और उन्होंने धम्म (मार्ग) का प्रचार शुरू किया, उस समय श्रावस्ती में रहने वाले कुछ व्यापारियों ने पाँच सौ गाड़ियाँ माल से भर लीं और उत्तरपथ (उत्तर भारत) जाकर अपना माल बेच दिया। वहाँ उन्होंने वापसी यात्रा के लिए अपनी गाड़ियों पर माल लादा। वे घर की ओर चल पड़े और शाम को एक वृक्ष के नीचे पहुँचे। तब उन्होंने अपने बैलों को खोल दिया और रात वहीं बिताई। तभी प्यास से व्याकुल वह व्यक्ति कुछ पीने के लिए वहाँ आया, और एक बूँद भी पानी न मिलने पर उसने पुकार लगाई। जब व्यापारियों ने उसे देखा, तो उन्होंने उससे पूछा:
1. "आप नग्न और भद्दे दिखते हैं, पतले और
आपकी नसें साफ दिखाई दे रही हैं। आपकी पसलियां उभरी हुई हैं, और आप
बहुत कमजोर हैं। अब आप कौन हैं, महोदय?"
पेटा:
2. "मैं, आदरणीय महोदय, एक पेटा हूँ,
यमलोक का एक दुर्भाग्यशाली निवासी। मैंने बुराई की थी इसलिए मैं इस लोक से
पेटाओं के लोक में चला गया।"
व्यापारी:
3• "अब तुम्हारे शरीर, वाणी या
मन से क्या बुराई की गई थी? किस कर्म के कारण तुम यहाँ से
पेटों की दुनिया में चले गए?"
पेटा:
4• "दसन्नाओं का एक प्रसिद्ध नगर है, जो
एराकच्छा के नाम से जाना जाता है। वहाँ मैं पहले एक धनी व्यापारी था;
वे मुझे धनपाला के नाम से जानते थे।"
5. "मेरे पास अस्सी गाड़ी भर सोना था; मेरे पास
प्रचुर मात्रा में सोना और बहुत सारे मोती और बिल्ली की आंख जैसे रत्न थे।"
6. "मैं इतना धनवान था,
परन्तु दान देना मुझे अच्छा नहीं लगता था। भोजन करते समय मैं
अपना दरवाजा बंद कर लेता था ताकि भिखारी मुझे न देख सकें।"
7. "मैं अविश्वासी और कंजूस था, लालची और गाली देने वाला था; मैं बहुत से दानशील और सक्रिय
लोगों को रोकता था ।"

8. "यह कहना कि 'दान करने का कोई प्रतिफल नहीं है।
आत्मसंयम का फल कहाँ है?'"
"मैंने कमल के तालाब, कुएँ, लगाए गए मनोरंजक उद्यान, रास्ते के किनारे बने जल स्रोत और दुर्गम स्थानों
पर स्थित मार्ग नष्ट कर दिए हैं।"

9. "इसलिए मैं, अपने कर्मों में निर्गुण होने के कारण, एक दुष्ट के रूप में संसार से विदा हुआ
। मेरा पुनर्जन्म पेटा क्षेत्र में हुआ और मैं
भूख और प्यास से पीड़ित हूँ। मेरी मृत्यु को पचपन वर्ष हो गए हैं।"
10. "मैं न तो भोजन को पहचानता हूँ और न ही पीने के पानी को।
जैसा अवरोध है, वैसा ही नुकसान है।
पेटा के लिए, वे कहते हैं, इसे जान लो: 'जैसा अवरोध है,
वैसा ही नुकसान है'"

11. "मैंने अतीत में संयम बरता; मैंने बहुत से
खजाने दान नहीं किए। यद्यपि दान करना कर्तव्य है, मैंने
अपने लिए कोई शरणस्थल नहीं बनाया।"
12. "अब मुझे घोर पश्चाताप हो रहा है, और मैं
अपने कर्मों के फल से बोझिल हूँ। चार महीने बाद मेरी मृत्यु हो जाएगी।"
13. मैं अत्यंत कठोर और भयानक नरक में
गिरूँगा; वह चार कोनों वाला है और उसके चार द्वार हैं; वह
माप के अनुसार भागों में विभाजित है; वह लोहे की बाड़ से घिरा हुआ है और
ऊपर से लोहे से ढका हुआ है।
14. "इसका लोहे का फर्श गर्मी से दमक रहा है।
सौ योजन (x8 किमी) तक चारों ओर चमकता हुआ, यह शाश्वत काल के लिए खड़ा है।"
15. "वहाँ मुझे लंबे समय तक घोर
पीड़ा और अपने बुरे कर्मों का फल भुगतना पड़ेगा। इसलिए, मैं
इस वास्तविकता पर शोक व्यक्त करता हूँ।"
16. "इसीलिए मैं तुम सबको एक उत्तम बात बताता हूँ,
तुम सब जो यहाँ एकत्रित हो; न
तो खुलेआम और न ही छुपकर कोई पापपूर्ण कार्य करो।"
17. "यदि तुम यह बुरा कर्म करोगे या करोगे, तो दुःख
तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेगा, चाहे तुम इससे बचने के लिए हवा में उड़ जाओ।"
18. "माता-पिता का आदर करो; परिवार में
बड़ों का आदर करो; भिक्षुओं और ब्राह्मणों (ज्ञानी) का सम्मान करो। इस प्रकार
तुम स्वर्ग प्राप्त करोगे।"
19. "न तो आकाश में, न ही सागर के बीच में, और न
ही पहाड़ों की गुफाओं में प्रवेश करने पर,
पृथ्वी पर ऐसा कोई स्थान नहीं मिलता जहाँ कोई खड़ा होकर
अपने बुरे कर्मों से मुक्त हो सके।"

व्यापारियों को उस पर दया आई और उन्होंने उसके मुँह में पानी छिड़का। परन्तु उस प्रेत (भूत) के बुरे कर्मों के कारण वह पानी निगल नहीं सका। उन्होंने उससे पूछा, “क्या अब तुम्हें थोड़ी भी राहत नहीं मिलेगी?” उसने उत्तर दिया, “हाँ, जब यह बुरा कर्म नष्ट हो जाएगा। यदि तथागत (बुद्ध) या तथागत (बुद्ध) के शिष्यों को दान दिया जाए और दान का पुण्य मुझमें समा जाए, तो मैं इस प्रेत जीवन से मुक्त हो जाऊँगा।” जब व्यापारियों ने यह सुना, तो वे सावत्थी गए और बुद्ध को बताया, वहाँ के भिक्षुओं के संघ को सात दिनों तक बड़ा दान दिया, जिसके प्रमुख बुद्ध थे, और दान का श्रेय उस प्रेत को दिया। तब बुद्ध ने उन व्यापारियों को धर्म प्रवचन दिया और लोभ और कंजूसी की बुराई से दूर रहने और दान और अच्छे कर्मों के मार्ग पर चलने की ज्ञानवर्धक सलाह दी।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> चुला-सेट्ठी-पेटा-वत्थु-वन्नाना

पिछला <<<<----------------------- 2.8 -------------------------->>>> अगला

2.8 एक धनी कंजूस आदमी चुलसेठी की कहानी

जब गुरु (बुद्ध) वेलुवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने चुलसेठी की यह कहानी सुनाई। बनारस में चुलसेठी एक गृहस्थ (आम आदमी) थे, जो नास्तिक, धर्महीन, कंजूस, नीच और पुण्य कर्मों के प्रति अनादरी रखते थे। मृत्यु के समय उनका जन्म पादों (भूखे प्रेतों) के बीच हुआ, जिनका शरीर कुरूप था, सड़ता और लहूलुहान मांस था और सिर सिकुड़ा हुआ और दुबला-पतला था। उनकी पुत्री अनुला अपने पति के घर अंधकविन्द में रहती थी। अपने पिता के नाम पर ब्राह्मणों (पुजारियों) का सत्कार करने की इच्छा से उसने चावल और अन्य भोजन भेंट के रूप में तैयार किया। जब पाद को यह पता चला, तो वह आशा से हवा में उड़कर उस स्थान की ओर चल पड़ा और राजगृह पहुँच गया। उस समय, राजा अजातसत्तु ने देवदत्त (बुद्ध के विरोधी) के उकसावे पर अपने पिता की हत्या कर दी थी। पश्चाताप और बुरे सपने के कारण वह सो नहीं पा रहा था। जब वह ऊपरी छत पर टहल रहा था, तो उसने पेटा को हवा में आते देखा, जिससे उसने पूछा:

1. "हे महाराज, आप जैसे नग्न, दुबले-पतले, तपस्वी हैं। आप रात में कहाँ जा रहे हैं और किस उद्देश्य से? कम से कम इतना तो बता दीजिए; शायद हम आपको धन और सब कुछ दे सकें।"

पेटा (भूत):

2. "बनारस नाम का एक शहर है, जो बहुत प्रसिद्ध है; वहाँ मैं एक गृहस्थ था, धनी तो था, लेकिन कंजूस और लालची था। मैं दान नहीं देता था और भोग-विलास में लिप्त रहता था। अपने बुरे आचरण के कारण मैं यमलोक में आ गया।"

3. "उन पापों के कारण मैं मानो सुई चुभने से व्याकुल हो गया हूँ; इसी कारण मैं भोजन के लिए अपने सगे-संबंधियों के पास जाता हूँ। परन्तु अधर्मी स्वभाव के लोग यह विश्वास नहीं करते कि दान का फल परलोक में मिलता है।"
4. "मेरी बेटी ने मुझसे कहा: 'मैं पिताओं और दादाओं को दान दूंगी।' ब्राह्मण (पुजारी/पवित्र पुरुष) आपस में (तैयार भोजन के बारे में) बात करते हुए कहते हैं, 'मैं अंधकविन्द में भोजन करने जा रहा हूँ।'
5. राजा ने उससे कहा, "इसे प्राप्त करने के बाद, तुम शीघ्र ही यहाँ फिर आना। मैं भी तुम्हारा सम्मान करूंगा। यदि तुम्हारी कोई इच्छा हो, तो मुझे बताना; हम तुम्हारी बात सुनेंगे और जो संभव होगा वह करेंगे।"
6. "ऐसा ही हो" कहकर वह (अंधकविन्द) चला गया। वहाँ बहुतों ने भोजन किया, परन्तु वे दान के योग्य नहीं थे। बाद में वह दूसरी बार राजगृह आया और राजा के समक्ष उपस्थित हुआ।
7. जब राजा ने पेटा को दूसरी बार अपनी ओर आते देखा, तो उसने कहा: "अब मैं क्या दूँ? मुझे यह बताइए, क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे आप कुछ समय के लिए संतुष्ट हो सकें?"
पेटा:
8. "हे राजा, बुद्ध और उनके संघ (भिक्षुओं के संप्रदाय) की सेवा करो, उन्हें भोजन, पेय और वस्त्र प्रदान करो। इस दान को मेरे लाभ के लिए मानो। इस प्रकार मैं काफी समय तक संतुष्ट रहूंगा।"
9. इसके बाद राजा नीचे उतरे और तुरंत अपने हाथों से संघ (भिक्षुओं के संप्रदाय) को असीम दान दिया; उन्होंने तथागत (बुद्ध) को इस बात की जानकारी दी और इस दान का श्रेय उन्होंने इस पेटा को दिया।
10. आदरणीय होकर, अत्यंत तेजस्वी होकर, पेटा राजा के समक्ष प्रकट हुआ और बोला: "मैं अब सर्वोच्च शक्ति से युक्त प्राणी हूँ; मनुष्य शक्ति में मेरे समान नहीं हैं।"
11. "मेरी इस अतुलनीय महिमा को देखिए, जो आपने संघ को असीम दान देकर उत्पन्न की है। हे मनुष्यों के स्वामी, मैं अनेक उपहारों से सदा और निरंतर संतुष्ट होकर प्रसन्नतापूर्वक विचरण करता हूँ।"
जब वह व्यक्ति चला गया, तो राजा ने यह बात भिक्षुओं को बताई, और भिक्षुओं ने यह बात भगवान (बुद्ध) को बताई। तब भगवान (बुद्ध) ने लोगों को धन दान के महत्व के बारे में उपदेश दिया। यह सुनकर, बहुत से लोगों ने अपनी कंजूसी की प्रवृत्ति को त्याग दिया और दान से पुण्य कमाने का निश्चय किया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> अंकुरा-पेटवत्थु-वन्नाना

पिछला <<<<----------------------- 2.9 ------------------------->>>> अगला

2.9 कृष्ण के भाई अंकुरा की कहानी
जब गुरु (बुद्ध) श्रावस्ती में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।
इस कथा में अंकुरा कोई भूत नहीं है, लेकिन भूत से उसके संबंध के कारण ही इस कथा को अंकुरपेट कथा कहा जाता है। उत्तरी भारत के उत्तरपथ प्रांत के कामसभोग क्षेत्र में स्थित असितांजना नगर में, मथुरा के राजा महासागर के पुत्र उपसागर और महाकामसका की पुत्री देवगब्भा के पुत्र अंजनादेवी, वासुदेव (कृष्ण), बलदेव, चंददेव, सूर्यदेव, अग्निदेव, वरुणदेव, अज्जुन, पज्जुन, घटपंडित और अंकुरा - ये ग्यारह क्षत्रिय योद्धा संतानें थीं। वासुदेव (कृष्ण) और उनके भाई असितंजन नगर से प्रस्थान करते हुए, जंबूद्वीप (भारत का प्राचीन नाम जामुन का देश) के 63 हजार नगरों के सभी राजाओं को मृत्यु के घाट उतारने के बाद द्वारवती (द्वारका) में आकर रुके और वहीं अपना निवास स्थान बनाया। फिर उन्होंने राज्य को दस भागों में बाँटा, परन्तु वे अपनी बहन अंजनादेवी को भूल गए थे। जब उन्हें अंजनादेवी की याद आई, तो उनमें से एक ने कहा, "चलो हम ग्यारह भाग बाँटते हैं।" तब उनमें सबसे छोटे अंकुर ने कहा, "मेरा हिस्सा अंजनादेवी को दे दीजिए; मैं व्यापार करके अपना जीवन यापन करूँगा। आप मेरे कर माफ कर दीजिए, प्रत्येक अपने-अपने राज्य में।" वे सहमत हो गए और अपनी बहन को उसका हिस्सा देने के बाद, नौ राजा द्वारवती (द्वारका) में रहने लगे।
अंकुरा व्यापार में लगे रहते थे और नियमित रूप से बड़े दान देते थे। उनके पास एक दास था, जो उनके भंडार का रखवाला था और उनकी भलाई में रुचि रखता था। अंकुरा ने एक अच्छे परिवार की स्त्री से उसका विवाह कर दिया। लेकिन दास की कम उम्र में ही मृत्यु हो गई, तब अंकुरा ने दास के पुत्र को भी उतनी ही मजदूरी दी। जब लड़का वयस्क हुआ, तो राजा के दरबार में यह धारणा बन गई कि वह दास वास्तव में दास नहीं है। जब अंजनादेवी को इसके बारे में पता चला, तो उन्होंने एक दूध देने वाली गाय का उदाहरण देते हुए उसे दासता से मुक्त कर दिया और कहा: "एक स्वतंत्र माता का पुत्र भी स्वतंत्र ही होता है।" लेकिन शर्मिंदगी के कारण वह युवक भेरुवा नगर चला गया, जहाँ उसने एक दर्जी की पुत्री से विवाह किया और दर्जी का काम करके अपना जीवन यापन करने लगा।
उस समय भेरुवा नगर में असायह नाम का एक महान संघ प्रमुख रहता था, जो संन्यासियों, ब्राह्मणों, घुमंतूओं, यात्रियों, भिखारियों और भिक्षुओं को बड़ी मात्रा में दान देता था। उस दर्जी ने प्रसन्नता और संतोष के साथ असायह के निवास स्थान को अपरिचित लोगों को बताते हुए कहा, "वे वहाँ जाएँ और जो कुछ प्राप्त करना है, उसे प्राप्त करें।" पाली ग्रंथ में उनके इस कार्य का उल्लेख मिलता है। उनकी मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म एक रेगिस्तानी क्षेत्र में एक बरगद के वृक्ष पर पृथ्वी-देव के रूप में हुआ, जहाँ उनका दाहिना हाथ सुख और आनंद की वस्तुएँ प्रदान करता था।
उसी भेरुवा नगर में एक व्यक्ति था जो असायह की उदारता का आनंद लेता था। परन्तु वह अविश्वासी, अधार्मिक, विधर्मी और पुण्य कर्मों के प्रति अनादरी भाव रखता था, इसलिए मृत्यु के समय उसका पुनर्जन्म उपरोक्त देवता के निवास स्थान के निकट पेटा के रूप में हुआ। उसके कर्मों का वर्णन पाली भाषा में मिलता है।

अब असायह की भी मृत्यु हो गई और वह तैंतीस करोड़ देवदूतों के स्वर्ग में देवों के राजा सक्का के साथ संगति में आ गया। फिर अंकुर ने अपना सामान पाँच सौ गाड़ियों पर लादा, और एक ब्राह्मण (पुजारी) ने भी ऐसा ही किया। हज़ार गाड़ियों वाले वे दोनों व्यक्ति एक कठिन रेगिस्तानी रास्ते पर चल पड़े और रास्ता भटक गए। एक ही जगह पर भटकते-भटकते घास, पानी और भोजन समाप्त हो गया। अंकुर ने पानी की तलाश में अपने दूतों को बुलवाया। तब उस यक्ष ने, जिसका हाथ सुख और आनंद की वस्तुएँ प्रदान करता था, उनकी दुर्दशा देखी और अंकुर द्वारा पिछले जन्म में किए गए उपकार को याद करते हुए, उन्हें वह बरगद का पेड़ दिखाया जिसमें वह रहता था, और सोचा: "अब मुझे इस आदमी की मदद करनी चाहिए।" यह बरगद का पेड़ शाखाओं और घने पत्तों से भरा हुआ था, घनी छाया देता था और इसमें हज़ारों शाखाएँ थीं। यह लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई में एक योजन के बराबर था। अंकुरा ने उसे देखकर प्रसन्नता और प्रसन्नता से उसके नीचे अपना शिविर स्थापित करवाया। यक्ष ने अपना दाहिना हाथ बढ़ाया और तुरंत सभी को पानी पिलाया; फिर उसने उनमें से प्रत्येक को उनकी इच्छा अनुसार वस्तुएँ दीं। इन सभी लोगों को उनकी इच्छा के अनुसार आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराने और यात्रा से विश्राम करने के बाद, ब्राह्मण व्यापारी ने नासमझी से यह विचार किया: "धन की खोज में यहाँ से कंबोज आकर हम क्या करेंगे? चलो किसी तरह इस यक्ष को पकड़कर एक रथ पर बिठाते हैं। फिर हम उसके साथ सीधे अपने नगर चलेंगे।" इस विचार को मन में रखते हुए, उसने अंकुरा को अपनी योजना बताई।

1. "जिस उद्देश्य से हम अपने सामान के साथ कंबोजा जा रहे हैं, वह इस यक्ष से मिलने में पूरा हो गया है जिसने हमें वह सब कुछ दिया जो हम चाहते थे; चलो इस यक्ष को अपने साथ ले चलते हैं।"

2. "इस यक्ष को उसकी सहमति से या बलपूर्वक, हम उसे गाड़ी पर उठाकर जल्दी से द्वारका शहर चलें।"

3. "जिस वृक्ष की छाया में कोई बैठता या लेटता है, उसकी एक भी शाखा नहीं टूटनी चाहिए; क्योंकि ऐसा करने वाला अपने मित्र का विश्वासघात करेगा, हाँ, एक दुष्ट होगा।"

इसके जवाब में ब्राह्मण ने सामान्य ज्ञान के आधार पर कहा कि समस्या की जड़ पाखंड को दूर करना है:

4. "जिस वृक्ष की छाया में कोई बैठता या लेटता है, उसके एक पत्ते को भी नुकसान नहीं पहुँचाना चाहिए; क्योंकि ऐसा करने वाला अपने मित्र के साथ विश्वासघात करेगा, हाँ, एक दुष्ट होगा।"

ब्राह्मण:

6. "जिस वृक्ष की छाया में कोई बैठता या लेटता है, उसे उसकी जड़ों सहित उखाड़ देना चाहिए, यदि ऐसा करना हमारे लिए लाभकारी हो।"

अंकुरा:

7. "जिसके घर में एक रात के लिए भी कोई ठहरता है, जिससे भोजन और पेय प्राप्त करता है, उसके विरुद्ध मन में भी बुराई का विचार नहीं करना चाहिए। कृतज्ञता अच्छे लोगों द्वारा सराही जाती है।"

8. "जिसके घर में एक रात के लिए भी ठहरना पड़े और भोजन-पान करना पड़े, उसके विरुद्ध मन में भी दुष्टता का विचार न करना चाहिए। जो हाथ किसी को हानि नहीं पहुँचाता, वह मित्रों के प्रति विश्वासघात से बच जाता है।"

9. "जो कोई अतीत में अपने कर्मों में अच्छा था और बाद में पाप करके किसी को हानि पहुँचाता है, तो निर्मल हाथों वाला वह मनुष्य सौभाग्य प्राप्त नहीं करेगा।"

तब वह ब्राह्मण चुप हो गया। यक्ष ने उन दोनों की बातें सुनीं और ब्राह्मण पर क्रोधित होकर बोला, "इस दुष्ट ब्राह्मण को उसका फल मिले; बाद में मैं समझ जाऊंगा।" फिर यह दर्शाते हुए कि उसे कोई भी पराजित नहीं कर सकता, उसने कहा:

10 "मैं किसी देव (देवदूत) या मनुष्य या राजा द्वारा आसानी से वश में नहीं किया जा सकता। मैं एक यक्ष हूं, सर्वोच्च शक्ति से संपन्न; मैं बहुत दूर तक (पलक झपकते ही) जा सकता हूं और सौंदर्य एवं बल से धन्य हूं।"

अंकुरा:

11. "आपका हाथ पूरी तरह से सुनहरा है, शहद टपक रहा है, और इसकी पाँचों उंगलियों से उपहारों की धाराएँ निकल रही हैं: इससे विभिन्न मीठे रस टपक रहे हैं। मेरा मानना है कि आप पुरिंददा (इंद्र) हैं।

यक्खा:

यक्खा:

12. "मैं न तो देवता हूँ, न गंधर्व, और न ही सक्का (देवताओं के राजा इंद्र) पुरिन्ददा। अंकुरा, मुझे भेरुवा से आए एक पेटा के रूप में पहचानो।"

अंकुरा:

Yakkha:

13. "आपका चरित्र कैसा था, भेरुवा में आपके पिछले जन्म में आपका आचरण कैसा था? आपके किस पवित्र जीवन के कारण आपके हाथों से अच्छे कार्य पूरे हो रहे हैं?"

14 "पहले मैं भेरुवा में एक दर्जी था, और बहुत दयनीय जीवन व्यतीत करता था। मेरे पास दान देने की सामर्थ्य नहीं थी।"

15. "अब मेरी कार्यशाला असायहा के पड़ोस में थी, जो धम्म का अनुयायी था, दान-पुण्य, अच्छे कर्म करने और विनम्र स्वभाव का स्वामी था।"

16. "फिर वहाँ भिखारी थे, विभिन्न परिवारों के गरीब लोग; और उन्होंने मुझसे वहाँ असायहा के निवास के बारे में पूछा, और कहा; 'हम कहाँ जाएँ? आपको शुभकामनाएँ! दान कहाँ दिया जाता है?'"

18. "इसलिए मेरा हाथ तुम्हें तुम्हारी इच्छा पूरी करता है; इसी कारण मेरा हाथ शहद से लथपथ है; मेरे पवित्र जीवन के कारण मेरे हाथों से अच्छे कर्म पूरे होते हैं।"
12. "मैं न तो देवता हूँ, न गंधर्व, और न ही सक्का (देवताओं के राजा इंद्र) पुरिन्ददा। अंकुरा, मुझे भेरुवा से आए एक पेटा के रूप में पहचानो।"
19. "इस प्रकार हम देखते हैं कि आपने अपने हाथों से किसी को कोई दान नहीं दिया, बल्कि दूसरे के दान में आनंदित होकर और अपना हाथ बढ़ाकर, आपने उसे प्रकट किया
20. "इसलिए तुम्हारा हाथ चाहा हुआ काम देता है; इसी कारण तुम्हारा हाथ शहद से लथपथ है; तुम्हारे पवित्र जीवन के कारण तुम्हारे हाथों से अच्छे काम पूरे होते हैं।"
21. "हे प्रभु, वह धर्मनिष्ठ पुरुष, जिसने अपने हाथों से दान दिया, अपने नश्वर शरीर को त्यागने के बाद, मुझे अब बताइए, वह किस क्षेत्र में गया?"
22. "मैं असंभव को संभव करने वाले अंगिरसा (आसायह) की मृत्यु और पुनर्जन्म के बारे में नहीं जानता, लेकिन मैंने वेसवना (देवता कुबेर) से सुना है कि आसायह को सक्का (स्वर्ग में देवदूतों/देवताओं के राजा इंद्र) का साथ मिला था।"
12. "मैं न तो देवता हूँ, न गंधर्व, और न ही सक्का (देवताओं के राजा इंद्र) पुरिन्ददा। अंकुरा, मुझे भेरुवा से आए एक पेटा के रूप में पहचानो।"
23 "इतना ही काफी है कि हम भलाई करें और अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान दें। जब कोई व्यक्ति अपने हाथ से दान देता हुआ देखे, तो वह पुण्य कर्म क्यों न करे?"
24. "निश्चित रूप से अब, जब मैं यहाँ से चला जाऊँगा और द्वारका पहुँचूँगा, तो मैं ऐसे दान दूँगा जो मुझे खुशी देंगे।"
25. "मैं भोजन और पेय, कपड़े और रहने की जगह, रास्ते में पानी का स्रोत और कुआँ, और दुर्गम स्थान पर मार्ग प्रदान करूँगा।"
फिर पेटा प्रकट हुआ, जिससे अंकुआ ने पूछा:
26. "तुम्हारी उंगलियां टेढ़ी क्यों हैं, तुम्हारा मुंह विकृत क्यों है, और तुम्हारी आंखें क्यों टपक रही हैं? तुमने कौन सा बुरा काम किया है?"
पेटा:
27. "धर्मात्मा गृहस्थ अंगिरसा (असयहा) के लिए, जो घर पर ही रहे, मैं उनके दान से जुड़ा हुआ था; मैं उनकी उदारता का निरीक्षक था
28. "वहाँ, जब मैंने देखा कि भोजन की इच्छा रखने वाले भिखारी आ गए हैं, तो मैं एक तरफ हट गया और मुँह बना लिया।"
29. "इसीलिए मेरी उंगलियां विकृत हो गई हैं, मेरा मुंह बेढंगा हो गया है और मेरी आंखों से पानी बह रहा है। मैंने ऐसा दुष्ट कर्म किया है।"
12. "मैं न तो देवता हूँ, न गंधर्व, और न ही सक्का (देवताओं के राजा इंद्र) पुरिन्ददा। अंकुरा, मुझे भेरुवा से आए एक पेटा के रूप में पहचानो।"
30. "हे दुष्ट, यह उचित ही है कि दूसरों के उपहारों पर मुँह बनाने के कारण तेरा मुँह विकृत हो गया है।"
31. "भला कोई व्यक्ति भोजन, पेय पदार्थ, कपड़े और रहने की जगह जैसी उपहार वस्तुएँ बाँटते समय दूसरे की सेवाओं पर निर्भर हुए बिना कैसे रह सकता है?"
32. "यद्यपि अब जब मैं यहाँ से निकलकर द्वारका पहुँचूँगा, तो मैं ऐसे उपहार बाँटूँगा जो मुझे प्रसन्नता प्रदान करेंगे।"
33. "मैं भोजन और पेय, कपड़े और रहने की जगह, रास्ते में पानी का स्रोत और कुआँ, और दुर्गम स्थानों पर मार्ग प्रदान करूँगा।"
34. फिर वह वापस मुड़ा और द्वारका नगर पहुँचा। अंकुरा ने ऐसा दान-पुण्य स्थापित किया जिससे उसे सुख प्राप्त हो।
35. उसने शांत मन से भोजन और पेय पदार्थ, कपड़े और रहने की जगह, रास्ते में पानी का स्थान और एक कुआँ दिया।
36. "कौन भूखा है, कौन प्यासा है, किसे कपड़े और रहने की जगह चाहिए? किसके जानवर थके हुए हैं? यहीं से उन्हें गाड़ी में जोत दिया जाएगा। किसे छाता और इत्र चाहिए? किसे फूलों की माला चाहिए? किसे चप्पल चाहिए?"
37. इस प्रकार वह अंकुरा के निवास स्थान पर शाम और सुबह लगातार नाइयों, रसोइयों और सुगंध विक्रेताओं को पुकारता रहा।
इसके बाद अंकुरा और सिंधाका नामक एक युवक के बीच बातचीत होती है, जिसे उसके दान-पुण्य संगठन का प्रमुख नियुक्त किया गया था।
12. "मैं न तो देवता हूँ, न गंधर्व, और न ही सक्का (देवताओं के राजा इंद्र) पुरिन्ददा। अंकुरा, मुझे भेरुवा से आए एक पेटा के रूप में पहचानो।"
38. लोग मेरे बारे में सोचते हैं 'अंकुरा अच्छी नींद सोता है'। सिंधका, मुझे नींद नहीं आती, क्योंकि मुझे कोई भिखारी नहीं दिखता।'
39. . "लोग मेरे बारे में सोचते हैं कि 'अंकुरा अच्छी नींद सोती है'। सिंधका, मैं ठीक से सो नहीं पाती, क्योंकि राहगीरों की संख्या बहुत कम है।"
सिंधका:
40. "यदि तैंतीस (करोड़ देवताओं) के स्वामी सक्का आपको एक इच्छा पूरी करने का वरदान दें, तो आप अपनी पसंद के समय, पूरी दुनिया में किस चीज के लिए अपनी इच्छा व्यक्त करेंगे?"
12. "मैं न तो देवता हूँ, न गंधर्व, और न ही सक्का (देवताओं के राजा इंद्र) पुरिन्ददा। अंकुरा, मुझे भेरुवा से आए एक पेटा के रूप में पहचानो।"
41. "यदि सक्का, तैंतीस (स्वर्ग में करोड़ों देवताओं के स्वामी) मुझे एक वरदान दें, तो मैं यह माँगूँगा कि जब मैं सुबह उठूँ, सूर्योदय के समय, स्वर्गदूतों के योग्य मिठाइयाँ और धर्मनिष्ठ भिखारी उपस्थित हों;

42. "कि जब मैं दान दूं, तो मेरे दान का पुण्य व्यर्थ न हो जाए, और दान देने के बाद मुझे पछतावा न हो। दान देते समय मेरा हृदय आनंदित हो। इस प्रकार मैं सक्का से एक इच्छा चुनूंगा।"
इस प्रकार अंकुरा ने अपनी इच्छा प्रकट की। उस स्थान पर सोनाका नाम का एक नेक चरित्रवान व्यक्ति बैठा था। अंकुरा ने उसे अत्यधिक दान देने से रोकने की इच्छा व्यक्त करते हुए कहा:
43. अपनी सारी संपत्ति दूसरों को मत दो; बल्कि दान और धन की रक्षा करो। इसीलिए धन देना निःसंदेह श्रेष्ठ है। अत्यधिक दान देने से परिवार अधिक योग्य नहीं रह जाते।

44. "बुद्धिमान लोग न तो दान न देने को और न ही अधिक दान देने को उचित मानते हैं। इसलिए, ध्यान रखो, धन दान से बेहतर है। दृढ़ निश्चयी व्यक्ति को मध्य मार्ग अपनाना चाहिए।"
45. अंकुरा: "अच्छा, आप जो भी कहें, मैं अपनी ओर से दान दूंगा, और भले, धर्मनिष्ठ लोग मेरी शरण में आएं। जैसे बादल नाले को भर देता है, मैं सभी भिखारियों को तृप्त करना चाहता हूं।"
46. "यदि कोई व्यक्ति संतों (सन्यासियों) के दर्शन से प्रसन्न होता है और दान देने में आनंदित होता है, तो घर में रहने वाले के लिए यही सुख है।"

47. "यदि कोई संत (सन्यासियों) के दर्शन से शांत भाव रखता है और दान देने में प्रसन्न होता है, तो यही पुण्य प्राप्ति है।"
48. "दान देने से ठीक पहले प्रसन्न होना चाहिए; दान देते समय अपने हृदय को आनंदित करना चाहिए; दान देने के बाद प्रसन्न होना चाहिए। यही पुण्य प्राप्ति है।"
49. अंकुरा के घर में, जो भलाई करने की इच्छा रखता है, प्रतिदिन साठ हजार गाड़ी भर भोजन वितरित किया जाता है।
50. अंकुरा के साथ तीन हजार रसोइये रहते हैं जो गहनों और बालियों से सजे हुए हैं और दान देने के लिए पूरी तरह समर्पित हैं।
51. साठ हजार युवकों ने, गहने और बालियां पहने हुए, अंकुरा के उपहारों के व्यापक प्रस्तुतीकरण में लकड़ियां काटीं।
52. सोलह हजार महिलाएं, उत्तम वस्त्रों से सजी हुई, हाथों में चम्मच लिए, अंकुरा के महान दान में शामिल हो रही हैं।
53. उसने बहुतों को बहुत कुछ दिया; लंबे समय तक, इस रईस ने अपने हाथों से बहुत कुछ देना जारी रखा, बार-बार अपनी देखभाल का प्रदर्शन किया।

55. कई महीनों, पखवाड़े, ऋतुओं और वर्षों तक, हाँ, लंबे समय तक, अंकुरा ने अपना महान दान जारी रखा।
56. इसलिए अंकुरा ने लंबे समय तक दान दिया और भेंट की; फिर जब उसने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया, तो वह तैंतीस (करोड़ देवताओं/देवदूतों) के स्वर्ग में प्रवेश कर गया।
जब इस प्रकार उनका वहाँ पुनर्जन्म हुआ और वे देवदूतों के आनंद का अनुभव कर रहे थे, तब बुद्ध के समय में, इंदका नामक एक युवक ने भक्ति भाव से पूज्य वरिष्ठ भिक्षु अनुराधा को भोजन का एक भाग भेजा, क्योंकि अनुराधा भिक्षा मांगने के लिए भ्रमण पर थे। जब इंदका की मृत्यु हुई और उनके पुण्य कर्मों के फलस्वरूप, उनका पुनर्जन्म तैंतीस करोड़ देवदूतों के स्वर्ग में हुआ। इसीलिए कहा जाता है:
57. "अनुराद्ध को इंदक ने चम्मच भर-भरकर भोजन दिया। जब उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया, तो उन्हें तैंतीस करोड़ स्वर्गदूतों के स्वर्ग में प्रवेश मिला।"
58. "दस बिंदुओं में इंद्राका अंकुरा से श्रेष्ठ है, अर्थात् रूप, वाणी, स्वाद, गंध और सुखद स्पर्श में।"
59. "कहा जाता है कि जीवन की लंबाई, प्रसिद्धि, रंग-रूप, सौभाग्य और प्रभुत्व में इंदका, अंकुरा से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।"
आगे:
60. "एक बार जब बुद्ध मूंगा वृक्ष के चरणों में स्थित पांडुकंबल पत्थर (वह सजावटी पत्थर जिससे सक्का/इंद्र का सिंहासन बना है) पर तैंतीस (करोड़ देवदूतों) के स्वर्ग में एक दिव्य यात्रा पर उपस्थित थे,
61. जब दस लोकों के देव/देवदूत वहाँ एकत्रित हुए, तो उन्होंने उस पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति (बुद्ध) को प्रणाम किया, जो पर्वत के शिखर पर निवास कर रहे थे।
62. कोई भी देव/देवदूत दिखने में प्रबुद्ध (बुद्ध) से अधिक तेजस्वी नहीं है; सभी देवों/देवदूतों से श्रेष्ठ, केवल वही तेजस्वी हैं।
63. उसी समय अंकुरा वहाँ था, उससे बारह योजन दूर; लेकिन इंदका बुद्ध से दूर नहीं था, इंदका अंकुरा से कहीं अधिक तेजस्वी था।
64. जब बुद्ध ने अंकुरा और इंदका को दान योग्य बनाते हुए देखा, तो उन्होंने ये शब्द कहे:
65. "अंकुरा, तुमने बहुत दान दिया है; तुम मुझसे बहुत दूर बैठे हो; मेरे पास आओ।"
66. "विकसित आत्मा वाले उस व्यक्ति द्वारा प्रेरित होकर, अंकुरा ने इस प्रकार कहा: "मेरे उस उपहार का मुझे क्या लाभ है? वह पुरस्कार के योग्य व्यक्ति से रहित था।"
67. "यद्यपि, इंदका ने यहाँ केवल एक तुच्छ उपहार दिया, फिर भी वह हमें उसी प्रकार मंद कर देता है जैसे चंद्रमा अनेक तारों को मंद कर देता है।"

बुद्ध ने ऐसा कहा:
68. "जैसे बंजर/अनुत्पादक खेत में, बीज, चाहे कितना भी बोया जाए, भरपूर फल नहीं देता और न ही उसके मालिक/किसान को प्रसन्न करता है।"
69. "इसी प्रकार, दुष्टों को उदारतापूर्वक दान देने से प्रचुर फल/परिणाम प्राप्त नहीं होता, न ही दानकर्ता प्रसन्न होता है।"
70. "और ठीक उसी तरह जब अच्छी जमीन में कम बीज बोए जाते हैं, तो भरपूर बारिश होने पर फसल किसान को प्रसन्न करती है।"
71. "इसी प्रकार, जब दान धर्मात्माओं को दिया जाता है, तो चाहे वह कर्म कितना भी छोटा क्यों न हो, पुण्य का बड़ा प्रतिफल प्राप्त होता है।"
72. विवेकपूर्वक दान देना चाहिए, जब दान से महान प्रतिफल प्राप्त हो। जो लोग उचित विचारपूर्वक दान देते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं।
73. जीवित प्राणियों के बीच जो कृपा के पात्र हैं, उनके लिए शुभ और उत्कृष्ट उपहार की तलाश करनी चाहिए। इन्हें दिए गए उपहार भरपूर फलदायी होते हैं, जैसे उपजाऊ खेत में बोए गए बीज।
लिंक:
घट पंडित (कृष्ण के भाई) की कहानी: घट-जातक2

कान्हा (कृष्ण) की कहानी: पेटवत्थु (भूत_कहानियाँ)2.6

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> उत्तरा की माँ

पिछला <<<<------------------------ 2.10 -------------------------->>>> अगला

22. उत्तरा की माता की कहानी (2.10)
गुरु (बुद्ध) के देहांत के बाद, जब प्रथम महान सभा चल रही थी, आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महा-कच्चयन अपने बारह साथियों के साथ कोसंबी के निकट एक वन आश्रम में थे। उनके पास राजा उदेना के निजी सलाहकार के पुत्र और उत्तराधिकारी उत्तरा, बढ़ईयों के साथ मरम्मत के लिए लकड़ी लेने आए। तब वरिष्ठ भिक्षु ने उन्हें धम्म (बुद्ध का मार्ग) सिखाया। इसके बाद उत्तरा अक्सर उनका आतिथ्य सत्कार करते थे और उनके लिए एक विहार/मठ बनवाया।

लेकिन उत्तरा की माता को उसके उपहार पसंद नहीं आए। उन्होंने कहा, "मेरी अनुमति के बिना तुम जो भी भोजन और पेय इस प्रकार संन्यासियों को दोगे, वह तुम्हारे परलोक में रक्त बन जाए।" फिर भी, मठ के समर्पण के दिन उन्होंने मोर के पंखों का एक गुच्छा दान करने की अनुमति दे दी। अपनी मृत्यु के समय, उनका पुनर्जन्म एक पेटी के रूप में हुआ, और मोर के पंखों के गुच्छे के दान के बदले में उनके बाल काले, चमकदार, घुंघराले, महीन और लंबे थे। जब भी वह यह सोचकर नीचे जातीं कि "मैं गंगा नदी का जल पीऊँगी", तो नदी रक्त से भर जाती थी। पचपन वर्षों तक भूख और प्यास से व्याकुल भटकने के बाद, एक दिन उन्होंने गंगा नदी के किनारे दोपहर के विश्राम के लिए बैठे हुए बड़े कंखारेवत को देखा। और संपादक के दो श्लोकों (1, 2) के बाद यह संवाद हुआ:

1. जब एक भिक्षु दोपहर के विश्राम के लिए गंगा नदी के किनारे बैठा था, तभी एक भयानक रूप और डरपोक चेहरे वाली एक छोटी सी परी उसके पास आई।

2. उसके बाल बहुत लंबे थे और ज़मीन तक लटके हुए थे; केवल अपने बालों से ढकी हुई, उसने तपस्वी को इस प्रकार संबोधित किया:

याचिका :

3. "मेरी मृत्यु को पचपन वर्ष हो गए हैं। मुझे न तो भोजन का ज्ञान है और न ही पीने के पानी का। कृपया मुझे थोड़ा पानी दीजिए, आदरणीय महोदय; मुझे प्यास लगी है।"

भिक्षु:

4. "यह रही गंगा नदी, जिसका पानी ठंडा है; यह हिमालय से बहती है, इसमें से थोड़ा पानी लेकर पी लो। तुम मुझसे पानी क्यों मांग रहे हो?"

याचिका:

5. "आदरणीय महोदय, यदि मैं स्वयं गंगा नदी से जल लेता हूँ, तो वह रक्त में बदल जाता है। इसलिए मैं आपसे जल की विनती करता हूँ।"

भिक्षु:

6. अब शरीर, वाणी और मन से कौन सा अपराध किया गया? किस कर्म के फलस्वरूप गंगा नदी तुम्हारे स्पर्श से रक्तमय हो जाती है?

याचिका:

7. "आदरणीय महोदय, मेरा पुत्र उत्तरा एक विश्वासी गृहस्थ (बुद्ध का अनुयायी) था, और उसने मेरी इच्छा के विरुद्ध संन्यासियों (भिक्षुओं) को वस्त्र, भोजन, औषधि और आवास प्रदान किए।"

8. "लालच से प्रेरित होकर मैंने उसे धिक्कारा और कहा: जो कुछ भी तुम मेरी इच्छा के विरुद्ध संन्यासियों (भिक्षुओं) को दोगे, चाहे वह वस्त्र हों, भोजन हो, औषधि हो या आवास हो।"

9. "हे उत्तरा, परलोक में वह तुम्हारे लिए रक्त बन जाए।' उस कर्म के फलस्वरूप, मेरे स्पर्श से गंगा नदी रक्त बन जाती है।"

तब पूज्य रेवता ने उस साध्वी के नाम पर भिक्षु संघ को जल दिया; वे भिक्षा मांगने गए और भोजन ग्रहण करके भिक्षुओं को दे दिया। फिर उन्होंने कूड़े के ढेर से कुछ चिथड़े उठाए, उन्हें साफ करके उन पर पानी छिड़का और छाल के वस्त्र बनाकर भिक्षुओं को दे दिए। इसके फलस्वरूप साध्वी को देवप्रसन्नता प्राप्त हुई (स्वर्ग प्राप्त हुआ और देवदूत बन गईं) और उन्होंने यह बात बड़े भिक्षु को बताई और उन्हें अपनी देवप्रसन्नता दिखाई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> धागे की कहानी

पिछला <<<<------------------------ 2.11 -------------------------->>>> अगला

23. धागे की कहानी (2.11)
हमारे गुरु के उदय से सात सौ वर्ष पूर्व, सावत्थी के निकट एक गाँव में, एक अकेले बुद्ध की सेवा में लगे एक युवक की विवाह के दिन साँप के काटने से मृत्यु हो गई। अपने जीवन में उसने अनेक पुण्य कर्म नहीं किए थे, फिर भी अपनी दुल्हन के प्रति प्रेम के कारण उसका पुनर्जन्म एक शक्तिशाली और वैभवशाली देवदूत के रूप में हुआ। अपनी प्रेमिका को अपने महल में रखने की इच्छा रखते हुए, और एक अकेले बुद्ध को वस्त्र सिलते हुए देखकर, उन्होंने मानव रूप धारण करके उनसे कहा, "आदरणीय महोदय, क्या आपको धागे की आवश्यकता है?" उत्तर मिला, "गृहस्थ शिष्य, हम वस्त्र बनाने में व्यस्त हैं।" शोक संतप्त दुल्हन के घर की ओर इशारा करते हुए, देव ने कहा, "आप उस घर में धागा मांग सकते हैं।" उन्होंने ऐसा ही किया और युवती ने उन्हें धागे का एक गोला दिया। देव, अभी भी पृथ्वी-मनुष्य के रूप में, लड़की की माँ से कुछ दिनों के लिए अपने घर में रहने की अनुमति प्राप्त की और घर के सभी पात्रों को धन से भर दिया। फिर वे लड़की के साथ अपने महल के लिए प्रस्थान कर गए। माँ ने अधिकांश धन अपने रिश्तेदारों और गरीब यात्रियों को दे दिया। मरते समय उन्होंने कहा, "अगर मेरी बेटी वापस आती है, तो उसे यह धन दिखाना।" 700 वर्षों के बाद हमारे भगवान बुद्ध का जन्म हुआ और वे श्रावस्ती आए। तब वह स्त्री, जो अभी भी देव के साथ रह रही थी, ने उनसे उसे वापस ले जाने की विनती करते हुए कहा:

1. "मैंने अतीत में एक ऐसे भिक्षु को, जिसने संसार का त्याग कर दिया था, कुछ धागा दिया था। फलस्वरूप, मुझे प्रचुर आशीर्वाद प्राप्त हुआ और मेरे लिए असंख्य वस्त्र उत्पन्न हुए।"

2. "वह महल फूलों से ढका हुआ है और बहुत सुंदर है; वह तरह-तरह से सजा हुआ है, और नौकर-चाकर उसकी सेवा में लगे रहते हैं। इसलिए मैं उसका आनंद लेता हूँ, और कपड़े पहनता हूँ, और यह प्रचुर धन कभी खत्म नहीं होता।"

3. मात्र एक कर्म के फल स्वरूप यहाँ आनंद और सुख प्राप्त होता है। और जब मैं एक बार फिर मनुष्यों के संसार में जाऊँगा, तो अच्छे कर्म करूँगा। हे मेरे स्वामी, मुझे वहाँ ले चलो।

जब आत्मा ने उसकी यह बात सुनी, तो अपनी प्रियतमा पर दया करते हुए वह जाने को तैयार नहीं हुआ; इसलिए उसने कहा:

4. "तुम यहाँ सात सौ साल पहले आए थे।"

वहाँ जाकर तुम कमजोर और बूढ़े हो जाओगे, और जहाँ तक मुझे पता है तुम्हारे सारे रिश्तेदार मर चुके हैं। अगर तुम यहाँ से उस जगह चले गए तो क्या करोगे?

उसे विश्वास न हुआ और उसने फिर कहा:

5. "सात साल पहले ही मैं यहाँ आया था और मैंने स्वर्गिक आनंद का अनुभव किया है। और जब मैं एक बार फिर मनुष्यों के संसार में जाऊँगा, तो अच्छे कर्म करूँगा, हे मेरे प्रभु, मुझे वहाँ ले चलो।"

6. फिर, बिना किसी देरी के, उसने उसका हाथ पकड़ा और उसे लड़खड़ाती हुई और बूढ़ी महिला के रूप में वापस लाते हुए कहा:

"वहाँ आए हुए अन्य लोगों से भी कहो, 'अच्छे काम करो, तो सुख अवश्य प्राप्त होगा'।"

जब वह स्त्री अपने रिश्तेदारों के घर आई, तो उसने अपना परिचय उन्हें दिया। उसने उनसे प्राप्त धन को वापस ले लिया और संन्यासियों (भिक्षुओं) और ब्राह्मणों को दान देकर, आने-जाने वालों को सलाह दी।

7. मैंने देखा है कि पाद, अच्छे कर्म न करने के कारण दुःख में पड़ जाते हैं, ठीक वैसे ही मनुष्य भी। दान का ऐसा कर्म करने से जिससे सुख प्राप्त हो, देवता और मनुष्य दोनों ही सुखमय वंश के सदस्य बन जाते हैं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> कन्नमुंडा

पिछला <<<<------------------------ 2.12 -------------------------->>>> अगला

24. कन्नमुंडा पेटी की कहानी(2.12)
जब गुरुजी सावत्थी में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई। कहा जाता है कि एक समय की बात है, बुद्ध कश्यप के समय में, किंबिला में एक गृहस्थ शिष्य रहते थे, जो बुद्ध के मार्ग पर परिवर्तित हुए थे। वे पाँच सौ गृहस्थ शिष्यों के समान धर्म के थे और पुण्य कर्मों में लगे रहते थे, जैसे कि उद्यान लगाना, पुल बनाना, रास्ते बनाना और अन्य उपयोगी कार्य। उन्होंने भिक्षुओं के लिए एक मठ बनवाया था और समय-समय पर उनके साथ वहाँ जाया करते थे। उनकी पत्नियाँ, जो आपस में सौहार्दपूर्ण थीं, मालाएँ, इत्र और मलहम लेकर मठ जाती थीं और रास्ते में उद्यानों और छात्रावासों में विश्राम करती थीं। फिर एक दिन, कुछ बदमाश एक महिला के छात्रावास में बैठे थे, जब वे महिलाएँ वहाँ विश्राम कर रही थीं, तो उन्होंने उनकी अपार सुंदरता देखी और उन पर मोहित हो गए। उन्हें अच्छा जानते हुए, उन्होंने बातचीत शुरू की: "इनमें से किसी एक के साथ भी कौन अनैतिकता कर सकता है?" इस पर एक ने कहा, "मैं।" उन्होंने कहा, "चलो उससे एक हज़ार सिक्कों की शर्त लगाते हैं," और शर्त लगा ली, साथ ही यह भी कहा: "अगर तुम जीतते हो, तो हम तुम्हें हज़ार दे देंगे; अगर नहीं, तो तुम्हें हमें दे देने होंगे।" जीतने की लालसा और हारने के डर से, वह कई तरह की चालें चल रहा था जबकि औरतें सराय में थीं, सात तारों वाला मधुर वीणा बजा रही थीं और प्रेम गीत गा रही थीं। उसने एक औरत को उनके बीच लाकर नैतिक नियम तोड़ा, जिससे उन बदमाशों को हज़ार का नुकसान हुआ। उससे पिटने के बाद, उन्होंने यह बात उसके पति को बताई, जिसने विश्वास नहीं किया और उससे पूछा: "क्या तुम वैसी ही हो जैसा उन आदमियों ने कहा है?" उसने इनकार करते हुए कहा: "मैं ऐसा कुछ नहीं जानती।" चूंकि उसे उस पर भरोसा नहीं था, उसने पास खड़े एक कुत्ते की ओर इशारा किया और कसम खाई: "अगर मैंने ऐसा कोई बुरा काम किया है, तो जब मैं यहाँ या वहाँ पुनर्जन्म लूँगी, तो यह कान कटे काले कुत्ते मुझे खा जाए!" इसके अलावा, जब अन्य महिलाओं से, जो जानती थीं कि उसने पाप किया है, पूछा गया: "क्या इस महिला ने ऐसा दुष्ट कार्य किया है या नहीं किया है?" तो उन्होंने झूठी शपथ ली: "यदि हम जानते हैं, तो हम इस या उस पुनर्जन्म में उसके दास बन जाएं।"

फिर वह व्यभिचारिणी अपने पाप के पश्चाताप से व्याकुल होकर मर गई। उसका पुनर्जन्म हिमालय के सात महान झीलों में से एक, कन्नामुंडा झील के किनारे एक पेटी (लाल रंग की कुटिया) के रूप में हुआ। इसके अलावा, कुटिया के चारों ओर आनंद के लिए उपयुक्त कमल-कुंड बन गए। जब अन्य स्त्रियाँ अपनी ली गई शपथ के फलस्वरूप मर गईं, तो वे उसकी दास बन गईं। उस स्थान पर, अपने पिछले जन्म के अच्छे कर्मों के कारण, वह दिन के समय स्वर्गिक आनंद का अनुभव करती थी, लेकिन आधी रात को, अपने बुरे कर्मों के फलस्वरूप, वह अपने पलंग से उठकर कमल-कुंड के किनारे चली जाती थी, जहाँ एक बड़े कुत्ते द्वारा उसे नोंच डाला जाता था। इसके बाद वह तुरंत अपनी पूर्व सुंदरता के साथ पुनः प्रकट हुई और अपनी कुटिया में चढ़कर अपने पलंग पर लेट गई। हालाँकि, अन्य स्त्रियों ने बड़ी कठिनाई से उसकी निरंतर दासता सहन की। इस प्रकार पांच सौ पचास वर्ष बीत गए, और चूंकि वे अपने पतियों के बिना देव-आनंद का आनंद ले रही थीं, इसलिए उन्हें अपने पतियों की याद सताने लगी।

उस स्थान पर कन्नामुंडा झील से एक नदी निकलती थी जो पर्वत की एक दरार से होकर गंगा नदी में मिल जाती थी। उसके पास ही एक उद्यान था जिसमें आम के पेड़ थे, जिनमें से कुछ पर देवफल लगते थे, कुछ पर ब्रेडफ्रूट के पेड़ थे और कुछ अन्य पेड़ थे। उन्होंने सोचा, "चलो, अब हम इन आमों को नदी में बहा देते हैं; इस तरह बहते हुए आमों को देखकर कोई न कोई यहाँ आकर इन्हें ले जाएगा। फिर हम इनका आनंद लेंगे।" उन्होंने ऐसा ही किया। बहाए गए आमों में से कुछ तपस्वियों को मिले; कुछ वनवासियों को; और कुछ नदी के किनारे ही अटके रहे। एक आम गंगा नदी की धारा तक पहुँच गया और कुछ समय बाद बनारस तक चला गया।

उस समय बनारस के राजा गंगा नदी में तांबे के जाल से घिरे जल में स्नान कर रहे थे। तभी एक आम बहकर आया और उस जाल में फंस गया। राजा के अंगरक्षकों ने जब उस विशाल, दिव्य आम को रंग, सुगंध और स्वाद में उत्कृष्ट पाया, तो वे उसे राजा के पास ले आए। प्रयोग के तौर पर राजा ने उसका एक टुकड़ा लिया और उसे एक कुख्यात डाकू को दिया जो जेल में बंद था। जब उसने उसे खाया, तो उसने कहा: "महाराज, मैंने पहले कभी ऐसा आम नहीं खाया; मुझे लगता है कि यह दिव्य आम है।" राजा ने उसे एक और टुकड़ा दिया। उसे खाने के बाद, उसकी झुर्रीदार त्वचा और सफेद बाल गायब हो गए; वह बहुत सुंदर हो गया और मानो यौवन लौट आया हो। यह देखकर राजा आश्चर्यचकित रह गए, उन्होंने भी आम खाया और उनके शरीर में भी तेज आ गया। उन्होंने पूछा:

“ऐसे आम कहाँ मिलते हैं?” उनके आदमियों ने उत्तर दिया: “महाराज, कहते हैं कि ये हिमालय में मिलते हैं, जो पर्वतों के राजा हैं।” “क्या इन्हें लाना संभव है?” महाराज, वनपाल जानते हैं।” राजा ने वनपालों को बुलवाया, एक गरीब वनपाल को एक हजार सिक्के दिए और उसे यह कहकर भेज

दिया: “जाओ, जल्दी से मेरे लिए आम ले आओ।” वह वनपाल गंगा नदी के ऊपर कन्नामुंडा झील की ओर गया। जब वह मनुष्य मार्ग से आगे निकल गया, तो उसे एक के बाद एक तीन तपस्वी मिले जिन्होंने उसका मार्गदर्शन किया। तीसरे तपस्वी ने उसे सलाह दी: “इस बड़ी गंगा नदी को छोड़ दो; उस छोटी नदी का अनुसरण करो, धारा के विपरीत दिशा में तब तक जाओ जब तक तुम्हें पर्वत में एक दरार न दिखाई दे। फिर तुम्हें रात में जलती हुई मशाल लेकर उसमें प्रवेश करना होगा।” "चूंकि यह नदी रात में नहीं बहती, इसलिए आप उस रास्ते से जा सकते हैं।" उसने वैसा ही किया और सूर्योदय के समय वह एक ऐसे क्षेत्र में पहुँचा जहाँ आमों का एक बहुत ही सुंदर बाग था। फिर जब उन अविवाहित स्त्रियों ने उसे दूर से आते देखा, तो वे दौड़कर उसके पास आईं और बोलीं, "वह पुरुष मेरा है, वह पुरुष मेरा है।" अब उसने वे पुण्य कर्म नहीं किए थे जो उस स्थान पर उनके साथ देव-आनंद का अनुभव करने के लिए उपयुक्त थे। इसलिए उन्हें देखते ही वह भयभीत हो गया और चिल्लाते हुए भाग गया। बनारस पहुँचकर उसने राजा को सारी घटना बताई।

जब राजा ने यह सुना, तो उसके मन में उन स्त्रियों को देखने और आमों का आनंद लेने की तीव्र इच्छा जागृत हुई। अतः उसने राज्य अपने निजी सलाहकारों को सौंप दिया और शिकार पर जाने के बहाने, उसने अपना धनुष, तरकश और तलवार ली और कुछ आदमियों के साथ वनपाल के निर्देशानुसार चल पड़ा। कुछ योजन दूर जाकर उसने उन आदमियों को वहीं छोड़ दिया और केवल वनपाल के साथ आगे बढ़ गया। कुछ देर बाद उसने उसे भी वापस भेज दिया; सूर्योदय के समय वह आमों के बाग में पहुंच गया।

फिर, जब उन स्त्रियों ने उसे एक देव के पुनर्जन्मित युवा पुत्र के रूप में देखा और उससे मिलने बाहर गईं, तो वे जान गईं कि वह एक राजा है, और उसे महल में ले गईं। उन्होंने उसे देवों का भोजन दिया और उसकी इच्छा अनुसार उसकी सेवा की।

फिर डेढ़ सौ वर्ष बीत जाने के बाद, राजा आधी रात को उठे और उन्होंने देखा कि पाप करने वाली स्त्री कमल-कुंड के किनारे जा रही है। उत्सुकतावश वे उसके पीछे गए। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने देखा कि एक कुत्ते ने उसे नोंच डाला है। तीन दिन तक वे इस बात पर विचार करते रहे कि क्या करें, फिर उन्होंने एक तीखे तीर से कुत्ते को मार गिराया; इस प्रकार कुत्ते को मार डालने और स्त्री को कमल-कुंड में डुबो देने के बाद, उन्होंने उसे उसकी पूर्ववत सुंदरता में पुनर्जीवित देखा।

फिर उसने उससे पूछा कि उसके साथ क्या हुआ था:

1. "यहाँ सुनहरी रेत पर टिकी हुई सोने की सीढ़ियाँ हैं; यहाँ सुंदर, मीठी सुगंध वाली लिली हैं, जो हृदय को आनंदित करती हैं।"

2. "विभिन्न प्रकार के वृक्ष जल के ऊपर एक छत्र बनाते हैं, विभिन्न सुगंधों से महकती हवाएँ उन पर बहती हैं; तालाब कई गुलाबी कमलों से ढके हुए हैं और सफेद कमलों से सजे हुए हैं।"

3. हवा से हिलते हुए, रमणीय तालाब एक सुखद सुगंध उत्सर्जित करते हैं; वे हंसों और बगुले के शोर से गूंजते हैं; वे लाल हंसों की आवाज़ से प्रतिध्वनित होते हैं।

4- "विभिन्न प्रकार के पक्षियों के झुंडों से भरे और अनेक प्रकार के गीतों से गूंजते हुए, वृक्ष विविध प्रकार के फल देते हैं, वन अनेक प्रकार के फूल उत्पन्न करते हैं।"

5. "ऐसा नगर मनुष्यों में नहीं पाया जाता। तुम्हारे पास सोने और चांदी से बने कई महल हैं।"

6. "चारों लोक अत्यंत उज्ज्वल हैं। आपके पास ये पाँच सौ सेविकाएँ हैं जो आपकी सेवा करती हैं।"

7. "उन्होंने सीपियों के बाजूबंद पहन रखे हैं और सोने के वस्त्रों से सजे हुए हैं। तुम्हारे पास सोने और चांदी के बने कई पलंग हैं।"

8. "वे कदली मृगों की खालों से ढके हुए हैं; वे पूरी तरह से तैयार हैं और ऊनी कंबलों से ढके हुए हैं। जब आप उन पर लेटते हैं, तो आपको सभी प्रकार के आनंद से भरपूर अनुभव प्राप्त होता है।"

9. "फिर भी जब आधी रात हो जाती है, तो तुम उठकर बाहर जाते हो; जब तुम कमल-तालाब के चारों ओर आनंद उद्यान में पहुँच जाते हो।"

10. "हे सुंदरी, तुम इसके किनारे हरी घास पर खड़ी हो; तभी कटे हुए कानों वाला एक कुत्ता तुम्हें एक-एक अंग करके खा जाता है।"

11. जब तुम्हारा भक्षण हो जाता है और तुम हड्डियों की एक श्रृंखला बन जाते हो, तो तुम कमल-कुंड में गिर जाते हो, जहाँ तुम्हारा शरीर पहले जैसा हो जाता है।

12. "फिर पूरे शरीर के साथ, बहुत सुंदर, देखने में आकर्षक, अपने वस्त्रों में सजे हुए, तुम मेरी उपस्थिति में आते हो।"

13. "अब शरीर, वाणी और मन से कौन सा दुष्ट कर्म किया गया? किस पाप के दंड के रूप में कटे कान वाला कुत्ता तुम्हारे शरीर के एक-एक अंग को कुतर कर खा रहा है?"

जब राजा ने उससे इस प्रकार पूछा, तो उस लड़की ने उसे अपनी कहानी सुनाई:

14. "किम्बिला में एक गृहस्थ रहता था, जो एक धर्मनिष्ठ गृहस्थ था; उसकी पत्नी मैं थी, एक दुष्ट व्यभिचारिणी।"

15. "चूंकि मैं व्यभिचारी थी, इसलिए मेरे पति ने मुझसे इस प्रकार कहा: 'यह उचित या सही नहीं है कि तुम मेरे प्रति बेवफा हो।'

16. "तब मैंने झूठी और भयानक शपथ खाई: 'मैं तुम्हें अपने शरीर या विचारों से धोखा नहीं देता।

17. "परन्तु यदि मैं अपने शरीर या मन से अपराध करूँ, तो वह कान कटे हुए कुत्ते मुझे अंग-अंग करके खा जाए।"

18. "उस कर्म और झूठ दोनों के लिए मुझे सात सौ वर्षों से दंड भुगतना पड़ रहा है: तब से ही कटे कान वाला कुत्ता मुझे अंग-अंग करके कुतर रहा है।"

इस प्रकार उसने कहा; फिर दो छंदों में उसने उसके द्वारा किए गए उपकार की प्रशंसा की:

19. "हे प्रभु, आप बहुत शक्तिशाली हैं: आप मेरे लिए यहाँ आए हैं। कटी हुई बालियों वाले से मुक्त होकर, मैं दुःख से मुक्त हूँ और किसी भी प्रकार के भय से मुक्त हूँ।"

20. "हे प्रभु, मैं आपका आदर करता हूँ और आपको प्रणाम करते हुए विनती करता हूँ: अलौकिक सुखों का लाभ उठाएँ; हे प्रभु, मेरे साथ आनंद लें।"

तब राजा, वहाँ रहते-रहते थककर, वहाँ से जाने की अपनी मंशा ज़ाहिर कर दी और अंतिम छंद बोला:

21. "मैंने देव-आनंद का अनुभव किया है और तुम्हारे साथ आनंद लिया है, अब, हे सुंदरी, मैं तुमसे विनती करता हूँ, मुझे जल्दी वापस ले लो।"

तब उस युवती ने राजा की बातें सुनकर विरह सहन नहीं किया। उसका हृदय शोक और दुःख से व्याकुल हो गया और उसका शरीर कांपने लगा। उसने अनेक प्रकार से राजा से विनती की, पर भी वह उसे वहाँ रुकने के लिए राजी नहीं कर सकी। वह राजा को बहुमूल्य रत्नों के साथ उसके नगर ले गई और उसे उसके महल में ले गई। फिर रोते-बिलखते हुए वह तुरंत अपने घर लौट गई। जब राजा ने यह देखा, तो वह अत्यंत व्याकुल हुआ और दान-पुण्य और अन्य कर्म करके स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त किया।

फिर, जब भगवान बुद्ध का जन्म हुआ और समय बीतने के साथ वे श्रावस्ती में निवास करने आए, तो एक दिन आदरणीय महामोगल्लन पर्वतों में भ्रमण करते हुए उस स्त्री को उसके दल के साथ देखकर उससे पूछा कि उसने क्या किया है। उसने उन्हें सब कुछ बता दिया और उन्होंने यह घटना भगवान बुद्ध को सुनाई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> उब्बारि

पिछला <<<<----------------------- 2.13 -------------------------->>>> अगला

25. उब्बारी की कहानी (2.13)
जब गुरु जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

श्रावस्ती में एक गृहस्थ शिष्या के पति का निधन हो गया। वह शोक में डूबी हुई श्मशान में रोने लगी। जब भगवान बुद्ध ने देखा कि उसने मार्ग के फल की प्राप्ति कर ली है, तो दया से द्रवित होकर वे उसके घर गए और पूछा कि वह क्यों शोक मना रही है? "हे भगवान बुद्ध, मैं अपने प्रियतम के वियोग के कारण शोक मना रही हूँ।" तब भगवान बुद्ध ने एक कथा सुनाई।

एक समय की बात है, पंचाल देश में, कपिला नगर में, चुआनी ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा था, जो अपनी प्रजा के हित में दस राजनियमों का उल्लंघन किए बिना, उनके कल्याण के लिए काम करता था। एक बार, अपने राज्य में लोगों की बातें जानने की इच्छा से, उसने एक दर्जी का वेश धारण किया और बिना किसी सेवक के नगर छोड़ दिया। जब वह गाँव-गाँव और जिले-जिले घूमता रहा, तो उसने पाया कि पूरा देश चोरों और अत्याचारों से मुक्त था, लोग सौहार्दपूर्ण थे और अपने घरों के दरवाजे खुले रखे हुए थे। नए उत्साह के साथ वह वापस लौटने के लिए निकला और एक नगर में एक गरीब विधवा के घर में प्रवेश किया। जब उसने उसे देखा, तो उसने कहा, "महोदय, आप कौन हैं? आप कहाँ से आए हैं?" उसने उत्तर दिया, "महोदय, मैं एक दर्जी हूँ; मैं मजदूरी के लिए सिलाई का काम करता हूँ। यदि आपके पास कोई सिलाई का काम हो, तो मुझे कपड़े और सिर के वस्त्र दोनों दे दीजिए, मैं आपके लिए बना दूँगा।" तब उसने कहा, "हमारे पास न तो कपड़ों का काम है और न ही सिर के वस्त्रों का। कृपया दूसरों के लिए कर दीजिए, महाराज।" वहाँ कुछ दिनों तक रहने के दौरान, उन्होंने उस गाँव की बेटी को देखा, जो भविष्य में सौभाग्य और पुण्य के लक्षणों से परिपूर्ण थी। उन्होंने माँ से कहा, "यदि उसका विवाह नहीं हुआ है, तो उसे मुझे दे दीजिए। मैं आपके लिए सुख-सुविधाओं से जीवन यापन कर सकता हूँ।" माँ ने उन्हें वह लड़की दे दी। कुछ दिनों तक उसके साथ रहने के बाद, उन्होंने उसे एक हजार कहपना (सिक्के) दिए और कहा, "मैं कुछ ही दिनों में लौट आऊँगा। मेरी प्रिय, चिंता मत करो।" इसके बाद वे अपने शहर चले गए। शहर और उस गाँव के बीच एक समतल सड़क बनवाकर उसे सजाया-संवारा और बड़े धूमधाम से वहाँ गए। लड़की को बड़ी रकम भेंट करने और सोने-चाँदी के बर्तनों में स्नान करवाने के बाद, उन्होंने उसका नाम उब्बारी रखा और उसे रानी बना दिया। उन्होंने गाँव उसके रिश्तेदारों को दे दिया और फिर बड़े धूमधाम से उसे शहर ले गए। उसके साथ सुखपूर्वक रहते हुए, उन्होंने एक सफल शासनकाल व्यतीत किया और उनका निधन हो गया।

इसके बाद उब्बारी के शोक का वर्णन संपादकों द्वारा इस प्रकार किया गया है:

1. पंचाल वंश के सारथियों के स्वामी ब्रह्मदत्त नामक एक राजा था; कुछ दिन और रात बीतने के बाद, राजा का समय पूरा हो गया।

2. उसकी पत्नी उब्बारी उसकी अंतिम संस्कार की चिता पर गई और विलाप करने लगी।

हालांकि उसने ब्रह्मदत्त को नहीं देखा, फिर भी उसने विलाप करते हुए कहा, "हे ब्रह्मदत्त!"

3. वहाँ एक ऋषि आए, जो धार्मिक आचरण में निपुण एक पवित्र व्यक्ति थे, और उस अवसर पर उन्होंने वहाँ विधिवत एकत्रित लोगों से पूछा:

4- "यह किसकी चिता है जिस पर तरह-तरह की सुगंध फैल रही है? यह किसकी पत्नी है जो अपने पति के लिए शोक मना रही है जो यहाँ से दूर चला गया है? यद्यपि वह ब्रह्मदत्त को नहीं देख पा रही है, फिर भी विलाप कर रही है, 'हे ब्रह्मदत्त!'"

5. और वहाँ उपस्थित लोगों ने इस पर समझाया: "हे पूज्यवर, वह ब्रह्मदत्त की पत्नी हैं: आपको और ब्रह्मदत्त को सौभाग्य प्राप्त हो।"

6. यह उनकी अंतिम संस्कार की चिता है जिस पर तरह-तरह की सुगंध फैली हुई है; यह उनकी पत्नी हैं जो अपने पति के बिछड़ने पर शोक मना रही हैं। यद्यपि वह ब्रह्मदत्त को देख नहीं पा रही हैं, फिर भी विलाप करते हुए कहती हैं, 'हे ब्रह्मदत्त।'

तपस्वी ने उब्बारी से कहा:

7. "इस श्मशान में ब्रह्मदत्त नाम के छियासी हजार पुरुषों को जलाया गया है; इनमें से किसके लिए आप शोक मना रहे हैं?"

उब्बारी:

8. "आदरणीय महोदय, मैं उनके लिए शोक मना रही हूँ जो राजा थे, कुलानी के पुत्र, पंचालों के रथ चालकों के स्वामी, मेरे पति जिन्होंने मेरी हर इच्छा पूरी की।"

तपस्वी:

9. "निश्चित रूप से ब्रह्मदत्त नाम के सभी लोग राजा थे; सभी चुलानी के पुत्र थे, जो पंचालों के सारथियों के प्रमुख थे

10. "क्रमशः आप सभी की रानी थीं। आप अपने पूर्व पतियों की उपेक्षा क्यों करती हैं और केवल अंतिम पति के लिए ही शोक क्यों मनाती हैं?"

उब्बारी:

11. "मैं इतने लंबे समय से स्त्री हूँ, महोदय, क्या यह मेरे स्त्रीत्व के कारण है कि आप इतना कुछ कहते हैं?"

तपस्वी:

12. "तुम एक स्त्री थी, तुम एक पुरुष भी रही हो, एक पशु के रूप में भी तुम्हारा जन्म हुआ था। इस प्रकार यह उस चीज़ की सीमा के रूप में प्रकट नहीं होता जो हो चुका है।"

उब्बारी:

13. "सचमुच, मैं, जो घी से भरी आग की तरह चमक रहा था, मानो मैंने उस पर पानी छिड़का हो। अब मैं अपने सभी दुखों का अंत करता हूँ।"

14. "निश्चित रूप से आपने मुझसे वह तीर निकाल दिया जो शोक ने मेरे हृदय में जड़ जमा रखा था, आपने ही शोक से व्याकुल होकर मेरे पति के शोक को मुझसे दूर किया।"

15. "अब मैं भाला खींचे जाने से शांत हो गया हूँ। मैं शोक नहीं करता, मैं रोता नहीं, क्योंकि मैंने आपकी बात सुन ली है, हे महान द्रष्टा।"

उब्बारी की उपलब्धि का वर्णन करते हुए, गुरु ने चार श्लोक कहे:

16. "जब उसने संन्यासी के ये शब्द सुने, तो उसने कटोरा और वस्त्र लेकर बेघर अवस्था में प्रवेश किया।"

17. "और उसने घर-बार छोड़कर घर-बार त्याग कर निर्जन राज्य में प्रवेश किया और ब्रह्मा के लोक में पुनर्जन्म लेने के लिए प्रेम भाव का अभ्यास किया।"

18. "वह गाँव-गाँव, कस्बों और राजसी शहरों में भटकती रही; उरुवेला उस गाँव का नाम है जहाँ उसने अपने अंतिम दिन बिताए।"

19. "ब्रह्मा के लोक में पुनर्जन्म लेने के लिए जब उसने प्रेम भाव विकसित किया और स्त्रीत्व के विचारों को त्याग दिया, तब वह ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) के लोक की निवासी बन गई।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> पानी में नहीं डूबना

पिछला <<<<----------------------- 3.1 -------------------------->>>> अगला

भाग III - चुलवाग्गो
26. पानी में न डूबने की कहानी (3.1)
जब गुरु वेलुवाना मठ में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

बनारस के पश्चिम में, गंगा नदी के उस पार, वासभागमा से आगे, कुंडथिला नामक गाँव में एक शिकारी रहता था। वह जंगल में हिरणों का शिकार करता, सबसे अच्छा मांस अंगारों पर पकाकर खाता और जो बच जाता उसे पत्तों की टोकरी में बाँधकर डंडे पर लादकर गाँव ले जाता। जब बच्चे उसे गाँव के द्वार पर देखते, तो वे हाथ फैलाकर उसके पास दौड़ते हुए कहते, "मुझे मांस दो, मुझे मांस दो।" तो वह उनमें से प्रत्येक को मांस का एक छोटा टुकड़ा देता। एक दिन वह केवल फूल लेकर गया और प्रत्येक बच्चे को फूलों का एक गुच्छा दिया। मरते समय, उसका पुनर्जन्म एक पेटा के रूप में हुआ। भूखा-प्यासा, वह अपने गाँव और रिश्तेदारों की तलाश में गंगा नदी में बिना डूबे चलता रहा। राजा बिम्बिसार का मुख्य मंत्री, एक विद्रोह को दबाने के बाद, नाव से नदी के रास्ते वापस जा रहा था, और उसने पेटा को जाते हुए देखा और उससे पूछा:

1. "जल में डूबे बिना, तुम गंगा नदी पर यहाँ चल रहे हो; तुम नग्न हो; फिर भी, मानो अपने पूर्व भाग्य से मुक्त होकर, तुम मालाओं से सुशोभित हो। हे पेटा, तुम कहाँ जा रहे हो? तुम्हारा निवास कहाँ होगा?"

अब पेटा और कोलिया द्वारा कही गई बातों का वर्णन संपादकों द्वारा निम्नलिखित छंदों में किया गया है:

2. पेटा ने कहा: "मैं बनारस के पास वासभागमा और यहाँ के बीच स्थित चुंडत्थिला जाऊँगा।"

3. और जब कोलिया नाम से प्रसिद्ध मंत्री ने उसे देखा, तो उसने पेटा को जौ के आटे, उबले हुए चावल और एक सूट का गुण देने का निश्चय किया।

4. फिर उसने अपनी नाव रोकी और ये सब एक नाई को दे दिए; जब नाई को खिलाया गया, तो पेटा में इसका परिणाम दिखाई दिया।

5. तब पेटा, मालाओं से सजे वस्त्रों में लिपटा हुआ, वहाँ खड़ा था, उस पर तुरंत (दिव्य) उपहार बरसाए गए; इसी कारण पेटाओं के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए बार-बार उपहार देने चाहिए।

तो मंत्री कोलिया को पेटा पर दया आई और उन्होंने उसे निर्धारित तरीके से उपहार दिया। वे नदी के साथ-साथ आगे बढ़े और सूर्योदय के समय बनारस पहुँचे। भगवान बुद्ध, जो उनका स्वागत करने के लिए वायु से प्रकट हुए थे, नदी के किनारे खड़े थे। प्रसन्न और आनंदित कोलिया ने भगवान बुद्ध को अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। भगवान बुद्ध ने मौनपूर्वक निमंत्रण स्वीकार कर लिया। शांत मन से कोलिया ने बुद्ध और भिक्षुओं का सत्कार किया। फिर जब भीड़ एकत्रित हुई, तो भगवान बुद्ध ने करुणावश कुछ पेटाओं को उनके सामने प्रकट किया और उनसे पूछा कि वे इस प्रकार कैसे प्रकट हुए। संपादकों ने इसे इस प्रकार वर्णित किया है:

6. कुछ चिथड़े-चिथड़े कपड़ों में लिपटे हुए, कुछ अपने बालों से ढके हुए, पेटा भोजन की तलाश में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भटकते हैं।

7. कुछ लोग दूर देश के लिए निकल पड़ते हैं और कुछ न पाकर भूखे-प्यासे, बेहोश, लड़खड़ाते और ज़मीन पर गिर पड़ते हैं।

8. उनमें से कुछ वहीं ज़मीन पर औंधे मुंह गिर पड़े। उन्होंने अपने पूर्व जीवन में कोई पुण्य कर्म नहीं किए थे; वे मानो गर्मी में आग से झुलस रहे थे, और कहने लगे:

9. "पहले हम दुष्ट पत्नियाँ और गृहस्थ माताएँ थीं। हमने दी गई वस्तुओं के दान में अपने लिए कोई आश्रय नहीं बनाया।"

10. "हाँ, बहुत सारा भोजन और पेय पदार्थ भी फेंक दिए गए, और हमने एकत्रित संसार-त्यागियों (तपस्वियों/सन्यासियों) को कुछ भी नहीं दिया।"

11. "हम, जानबूझकर बुरे कर्म करते हुए, आलसी, मनमानी करते हुए और बहुत खाते हुए, केवल थोड़ा-थोड़ा दान देते हुए, भिक्षा लेने वालों का अपमान करते थे।"

12. "हमारे वे घर, वे दासियाँ, यहाँ तक कि हमारे वे आभूषण भी अब दूसरों की सेवा में हैं, हमारे हिस्से में केवल कष्ट ही है।"

13. टोकरी बनाने वालों के कबीले कलंकित हैं, और रथ बनाने वाले विश्वासघाती हैं; चांडाल महिलाएं; भिखारी और स्नान करने वाले भी बार-बार ऐसा ही करते हैं।

14- "ऐसे ही नीच और दुखी परिवारों में ये जन्म लेते हैं। कंजूसों का यही हश्र होता है।"

15. "जिन्होंने पूर्व जन्मों में अच्छे कर्म किए, दान दिए, उदार हृदय वाले थे, वे इस उज्ज्वल संसार को भर देंगे और नंदनवन (स्वर्ग) को प्रकाशित करेंगे।"

16. "वे सुख-सुविधाओं में आनंदित और प्रसन्न होकर महलों के स्वामी बनेंगे; इससे आगे बढ़कर, वे उच्च और धनी परिवारों में जन्म लेंगे।"

17. "शिखर वाले भवन में, यहाँ तक कि महल में भी, ऊनी चादर से ढके पलंग पर, जिन्होंने अपने शरीर को वश में कर लिया है, वे अच्छे परिवार में जीवन के सभी सुख-सुविधाओं के साथ जन्म लेते हैं; प्रत्येक के हाथ में एक मोर पंखा होता है।"

18. वे स्थान-स्थान पर मालाएँ धारण करके और सजे-धजे जाते हैं; सेवक सुबह-शाम उनकी प्रसन्नता के लिए खड़े रहते हैं।

19. "शोक रहित और मनमोहक नंदन वन (स्वर्ग का), यह दस देवदूतों का महान वन उन लोगों का नहीं है जिन्होंने पुण्य नहीं कमाया; बल्कि केवल उन्हीं का है जिन्होंने पुण्य कमाया है।"

20. "जिन लोगों ने पुण्य नहीं कमाया है, उन्हें न तो इस दुनिया में सुख मिलेगा और न ही इस दुनिया से परे; परन्तु जिन्होंने पुण्य कमाया है, उन्हें इस दुनिया में और इस दुनिया से परे दोनों जगह सुख मिलेगा।"

21 "देवताओं की संगति चाहने वालों को बहुत भलाई करनी चाहिए; क्योंकि पुण्य कमाने वाले स्वर्ग में धन-संपत्ति से भरपूर होकर आनंदित होते हैं।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> सनुवासिन

पिछला <<<<----------------------- 3.2 -------------------------->>>> अगला

27. सानुवासी की कहानी (3.2)
जब शिक्षक बांस के जंगल में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस में राजा कितवा के पुत्र, उद्यान में आनंद लेकर लौटते समय, अकेले बुद्ध सुनेत्ता को भिक्षा मांगने आते हुए देखकर, उनका अपमान किया। उनके आगे बढ़ते ही उन्हें नरक की आग जैसी तीव्र जलन का अनुभव हुआ। इसी कारण उनकी मृत्यु हो गई और वे अविची नामक महान नरक में पुनर्जन्म लिए। इसके बाद उनका पुनर्जन्म पेटा के रूप में हुआ, और फिर इस बुद्ध-काल में, कुंडी नगर के निकट मछुआरों के गाँव में उनका पुनर्जन्म हुआ। पिछले जन्मों को याद करते हुए, वे दूसरों के साथ मछली पकड़ने नहीं जाते थे और उनके द्वारा पकड़ी गई मछलियों को वापस पानी में फेंक देते थे। उनके परिजनों ने उन्हें घर से निकाल दिया, लेकिन एक भाई ने उनसे स्नेह रखा। बड़े भाई आनंद ने उन्हें भिक्षु बनने के लिए प्रेरित किया; बाद में अरहंत के रूप में वे बारह भिक्षुओं के साथ सानुवासिन पर्वत पर निवास करते थे। लेकिन उनके सभी संबंधी पेटा के रूप में पुनर्जन्म लेते रहे। अब उसके माता-पिता को यह सोचकर शर्म आ रही थी कि "पिछले जन्म में हमने उसे घर से निकाल दिया था", इसलिए वे उसके पास नहीं गए, बल्कि उसके भाई को भेजा, जो उससे स्नेह रखता था। जब वह भाई भिक्षा मांगने के लिए बड़े के गाँव में पहुँचा, तो उसने अपना दाहिना घुटना ज़मीन पर रखा, आदरपूर्वक अभिवादन किया और ये पंक्तियाँ बोलीं, "आदरणीय महोदय, आपके माता-पिता, इत्यादि।" लेकिन संपादकों ने पहले पाँच पंक्तियों को इस प्रकार रखा ताकि संबंध स्पष्ट हो सके:

1. कुंडीनगर में सानुवसिन पर रहने वाला एक बुजुर्ग व्यक्ति था; वह एक विकसित बुद्धि वाला संन्यासी (भिक्षु) था, जिसका नाम पोत्थपाद था।

2. उसके माता-पिता और भाई यमलोक के दुखी निवासी बन गए। बुरे कर्मों के कारण वे पतरसलोक चले गए।

3. वे बुरे जन्म के थे, उनकी हड्डियाँ सुई जैसी थीं, वे थके हुए, नंगे और दुबले-पतले थे, चिंतित और बहुत भयभीत थे—वे निर्दयी नहीं दिखते थे।

4. उसका भाई जल्दी से, नग्न अवस्था में, अकेले एक सुनसान रास्ते पर आया, और पानी के घड़े की तरह चारों हाथों-पैरों के बल रेंगते हुए उसने खुद को बड़े भाई को दिखाया।

5. अब आदरणीय व्यक्ति अनसुना करते हुए चुपचाप चले गए; लेकिन दूसरे ने उन्हें यह बात बता दी और बड़े से कहा: "मैं तुम्हारा भाई हूँ जो पेटस लोक में चला गया हूँ।"

6. आदरणीय महोदय, आपके माता-पिता यमलोक के दुखी निवासी हैं। बुरे कर्म करने के कारण वे पतरसलोक चले गए।

वे दुर्भाग्यवश जन्म से हैं.... (जैसा कि 3 में है)

दयालु और करुणामय बनो; हमें दान दो और इसका श्रेय हमें दो। तुम्हारे दिए गए दान से निर्दयी लोग अपना भरण-पोषण करेंगे।

9. जब बड़े भिक्षु और बारह अन्य भिक्षु भिक्षा मांगने के लिए अपने चक्कर लगा चुके थे, तो वे भोजन करने के लिए एक ही स्थान पर एकत्रित हुए।

10. बुजुर्ग ने उन सभी को संबोधित करते हुए कहा, "तुम्हारे पास जो कुछ भी है, मुझे दे दो। मैं अपने (दिवंगत) रिश्तेदारों के प्रति करुणावश संघ के लिए भोज का आयोजन करूंगा।"

11. उन्होंने इसे उसकी देखरेख में सौंप दिया: बड़े भिक्षु ने भिक्षुओं के समूह को आमंत्रित किया; भोजन परोसते समय, बड़े भिक्षु ने दान का श्रेय अपनी माता, पिता और भाई को देते हुए कहा:

यह मेरे परिजनों के लिए हो; मेरे सगे-संबंधियों को आशीर्वाद मिले।"

12. पुण्य का यह हस्तांतरण होते ही, (दिव्य) भोजन (पेटों के लिए) तैयार किया गया, जो स्वच्छ, स्वादिष्ट, अच्छी तरह से तैयार किया गया और स्वादों और मसालों से भरपूर था। फिर उसके भाई ने घोषणा की, जो सुंदर, बलवान और सुखी हो गया था:

13. "हे महोदय, यहाँ भोजन प्रचुर मात्रा में है, परन्तु देखिए, हम नंगे हैं। महोदय, कृपया हमें वस्त्र दिलाने की इच्छा कीजिए।"

14. बड़े भिक्षु ने कूड़े के ढेर से कपड़े के कुछ टुकड़े उठाकर, उन चिथड़ों को वस्त्रों में परिवर्तित किया और चारों लोकों के भिक्षुओं के नाम पर उन्हें दे दिया।

15. जब उन्होंने अपना दान दिया, तो आदरणीय भिक्षु ने दान का पुण्य अपनी माता, पिता और भाई को देते हुए कहा: "यह मेरे सगे-संबंधियों के लिए हो; मेरे सगे-संबंधियों को आशीर्वाद मिले।"

16. पुण्य के इस हस्तांतरण के तुरंत बाद, (दिव्य) वस्त्र (पेटों के लिए) प्रस्तुत किए गए: फिर उत्तम वस्त्रों में सज-धज कर, उन्होंने बड़े व्यक्ति के सामने प्रकट होकर ये शब्द कहे:

17. "हे पूज्यवर, नंदराज के राज्य में जितने आवरण हैं, उससे कहीं अधिक वस्त्र और लबादे हमारे पास हैं।"

18. "वे रेशम और ऊन, सन और कपास के बने हैं; वे बहुत सारे और कीमती हैं; और वे आकाश में लटके हुए हैं।"

19. "अब हम वही पहनते हैं जो हमें प्रिय लगता है। हे प्रभु, हमें घर प्राप्त करने की इच्छा प्रदान करें।"

20. बड़े भिक्षु ने पत्तों की एक झोपड़ी बनाई और उसे चारों क्षेत्रों के भिक्षुओं को भेंट कर दिया। जैसे ही उसने अपनी भेंटें दीं... (14, 15 के समान)।

21. पुण्य का यह हस्तांतरण होते ही (दिव्य) घर (पेटों के लिए) निर्मित किए गए। ऊपरी मंजिलों वाली इमारतें और सुव्यवस्थित रूप से विभाजित घर थे।

पेटा :

22. "मनुष्यों में हमारे जैसे निवास स्थान नहीं हैं। देवताओं में भी जैसे निवास स्थान पाए जाते हैं, वैसे ही हमारे यहाँ हैं

23. "चारों लोक चारों ओर से तेज रोशनी से जगमगा रहे हैं; हे प्रभु, हमें पानी का एक घूंट प्राप्त करने की इच्छा प्रदान करें।"

24. तब ऋषि ने एक घड़ा पानी से भरकर चारों लोकों के भिक्षुओं को दे दिया। इस प्रकार उन्होंने अपना दान दिया... (जैसा कि 20 में है)

25. पुण्य का यह हस्तांतरण होते ही, पीने का पानी उपलब्ध हो गया; वहाँ चार गहरे, सुव्यवस्थित कमल-तालाब थे।

26. उनमें साफ पानी था, किनारे अच्छी तरह से घिरे हुए थे; ठंडा और कम सुगंधित: वे लाल और नीले कमल से ढके हुए थे और जल लिली के तंतुओं से भरे हुए थे।

27. फिर स्नान करने और पानी पीने के बाद, वे बड़े के पास फिर से प्रकट हुए और बोले: "आदरणीय महोदय, हमारे पास पानी तो भरपूर है, लेकिन हमारे पैर बुरी तरह से फट गए हैं।"

28. "हम इधर-उधर भटकते हुए कंकड़-पत्थर और कांटेदार झाड़ियों पर लंगड़ाते हैं। हे प्रभु, हमें वाहन प्राप्त करने की इच्छा शक्ति प्रदान करें।"

29. बड़े ने एक जूता लिया और उसे चारों क्षेत्रों के चर्च को भेंट किया। जैसे ही उसने इसे दिया ... (जैसा कि 24 में है)।

30. पुण्य का यह हस्तांतरण होते ही, पेटा रथ में सवार होकर आए और बोले: "महामहिम, दयावश हमें भोजन और वस्त्र प्रदान किए गए।"

31. "एक घर, पीने का पानी और एक वाहन उपहार स्वरूप दिए गए हैं। हे प्रभु, हम संसार के द्रष्टाओं में सबसे दयालु, आपको नमन करने आए हैं।"

बुजुर्ग व्यक्ति ने यह घटना भगवान बुद्ध को सुनाई, जिन्होंने अपने शिक्षण में इस कहानी को विषय बनाया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> रथकारा

पिछला <<<<----------------------- 3.3 -------------------------->>>> अगला

28. रथकारा की कहानी (3.3)
जब गुरु सावत्थी में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने एक पेटा नामक व्यक्ति के बारे में यह कहानी सुनाई।

बहुत समय पहले, पूज्य कस्सपा के समय में, एक स्त्री, जो धार्मिक कर्मों में निपुण थी और जिसने एक सुंदर निवास को भिक्षुओं के समूह को सौंप दिया था, की मृत्यु हो गई। एक अन्य दुष्ट कर्म के कारण, वह पर्वतों के राजा हिमवंत (हिमालय) में, रथकारा झील के निकट, एक महल-पेटी के रूप में पुनर्जन्म हुई। उसके अच्छे कर्म के फलस्वरूप, उसके लिए एक भव्य महल का निर्माण हुआ, जो पूरी तरह से रत्नों से बना था, चारों ओर से अत्यंत मनमोहक, आकर्षक और आनंददायक था, जिसमें स्वर्ग के नंदनवन के समान एक कमल-कुंड था, और वह स्वयं स्वर्ण रंग की, सुंदर, आकर्षक और सौम्य थी। वहाँ वह पुरुषों के बिना रहती थी, परन्तु उसके मन में पुरुषों की संगति की इच्छा उत्पन्न हुई। और उसने यह सोचकर कुछ आम नदी में फेंक दिए, "यह एक चाल है।" यह सब कन्नामुंडा (2.12) की कहानी के अनुसार समझा जाना चाहिए। इस मामले में, बनारस में रहने वाले एक युवक ने गंगा नदी के किनारे एक आम देखा और उसकी उत्पत्ति के बारे में जानने की इच्छा व्यक्त की। इसलिए, उचित समय पर वह अपने उद्देश्य की खोज में उस युवती के घर पहुंचा। युवती ने उसका अपने घर में स्वागत किया, और जब उसने घर की भव्यता देखी, तो उसने उससे प्रश्न पूछे:

1. "आप एक शानदार और तेजस्वी महल में विराजमान हैं, जिसमें बिल्ली की आंख जैसे रत्न जड़े स्तंभ हैं और जो अनेक रूपों से अलंकृत है। हे अत्यंत शक्तिशाली देवी, आप वहां पूर्णिमा के चंद्रमा की तरह विराजमान हैं।"

2. "तुम्हारा रंग सोने के समान है; तुम्हारा रूप-रंग अत्यंत सुंदर और अद्भुत है। तुम अद्वितीय पलंग पर अकेली बैठी हो, तुम्हारा कोई पति नहीं है।"

3. "तुम्हारे चारों ओर कमल के तालाब हैं जिनमें प्रचुर मात्रा में फूल और कई सफेद कलियाँ हैं, तल और किनारे सुनहरी रेत से ढके हुए हैं, जहाँ न तो कीचड़ है और न ही दलदल।"

4. "सुंदर हंस भी, जो मेरे हृदय को आनंदित करते हैं, पानी पर सदा घूमते रहते हैं। जब वे झुंड में होते हैं तो मधुर ध्वनियाँ निकालते हैं; उनकी आवाज़ ढोल की ध्वनि के समान मधुर होती है।"

5. "नाव में लेटी हुई, सौंदर्य में तेजस्वी और शानदार, आपकी घुमावदार पलकों में चमक, आपकी हंसी में, आपकी मधुर वाणी में और आपके प्रत्येक अंग की सुंदरता में आप दमकती हैं।"

6. "यह महल, धूल रहित, रमणीय उद्यानों से युक्त, और सुख-आनंद की वृद्धि का प्रतीक, समतल भूमि पर स्थित है। हे अद्वितीय श्रेष्ठता की देवी, मैं यहाँ आपके साथ आनंदपूर्वक रहना चाहता हूँ।"

उसने उत्तर में यह छंद कहा:

7. "ऐसा कर्म करो जिसका फल यहीं मिले, और अपना मन इसी स्थान पर केंद्रित रखो। ऐसे कर्म करके जिनके परिणाम यहीं महसूस हों, तुम मुझे, जो आनंद प्रेमी हूँ, प्राप्त करोगे।"

जब उस युवा रोन ने पेटी के वचन सुने, तो वह मनुष्यों की दुनिया में लौट आया। वहाँ उसने चिंतन किया और फलस्वरूप पुण्य कर्म किए। उचित समय पर उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म वहीं (उसके पास) हुआ।

पेटी के साथ अपने सहजीवन का वर्णन करते हुए, संपादकों ने अंतिम छंद लिखा:

8. "ऐसा ही हो!" कहते हुए उसने ऐसे कार्य किए जिनका फल वहाँ प्रकट होना था। उस स्थान पर फलदायी कार्य करने के बाद, युवक का उसके साथ पुनर्जन्म हुआ।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> भूसी की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 3.4 -------------------------->>>> अगला

29. भूसे की कहानी (3.4)
जब गुरु सावत्थी में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने चार पेटों से संबंधित यह कहानी सुनाई।

सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित एक गाँव में, एक कपटी व्यापारी चावल में मिलावट करके और गलत नाप-तोल करके अपना जीवन यापन करता था। श्लोकों के अनुसार, उसका पुत्र, पुत्र की पत्नी और उसकी अपनी पत्नी भी दुष्ट थे। विंध्य वन में पेटा के रूप में पुनर्जन्म लेकर उनके कष्टों का वर्णन यहाँ किया गया है।

अब, आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महामोग्गलाना एक दिन पर्वत की यात्रा करते हुए उस स्थान पर पहुँचे, उन्हें देखा और उनसे पूछा कि उन्होंने क्या अपराध किया है:

1. "एक व्यक्ति चावल का भूसा खाता है, और यह स्त्री अपने ही शरीर का खून खाती है, जबकि तुम गंदा, घिनौना गोबर खाते हो। इसका परिणाम क्या है?"

बुजुर्ग के प्रश्न के उत्तर में, धोखेबाज व्यापारी की पत्नी ने उन सभी द्वारा किए गए कृत्यों का इस प्रकार स्पष्टीकरण दिया:

2. "इस व्यक्ति ने अतीत में अपनी माँ को चोट पहुँचाई थी, लेकिन वह व्यक्ति बेईमान व्यापारी था। इस महिला ने मांस खाया और झूठे शब्दों से धोखा दिया।"

3. जब मैं मनुष्य रूप में मनुष्यों के बीच थी, तब मैं एक गृहिणी थी, पूरे परिवार की मुखिया थी। मैंने धर्मी पुरुषों से (अपनी) चीजें छिपाकर रखीं और कभी भी उनमें से कुछ भी नहीं दिया। मैंने झूठ बोलकर यह बात छुपाई, 'मेरे घर में यह कुछ भी नहीं है; अगर मैं इसे छुपाऊँगी, तो मुझे गोबर खाना पड़ेगा।'

4. इस कृत्य और मेरे झूठे वचन के फलस्वरूप, मेरे सुगंधित चावल का भोजन गोबर में बदल जाता है।

5. "कर्म निष्फल नहीं होते; क्योंकि कर्म कभी नष्ट नहीं होता। मैं कीड़े लगे सड़े हुए मल को खाता और पीता हूँ।"

जब बुजुर्ग ने इस भक्त का भाषण सुना, तो उसने यह खबर भगवान बुद्ध को सुनाई, जिन्होंने इस विषय को अपने अध्ययन का मुख्य विषय बना लिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> लड़के की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 3.5 -------------------------->>>> अगला

30. लड़के की कहानी (3.5)
श्रावस्ती में कई गृहस्थ अनुयायी धम्म सदस्य (बुद्ध के मार्ग-धम्म के अनुयायी) बनकर शहर में एक विशाल मंडप बनवाया और वहाँ गुरु (बुद्ध) और भिक्षुओं का स्वागत किया। एक व्यक्ति ने "मुंडे हुए" (मुँहे हुए सिर वाले भिक्षुओं) को दिए जाने वाले सभी दान का विरोध किया। उसकी माता ने

भगवान बुद्ध से क्षमा मांगी और एक सप्ताह तक चावल का दलिया दिया। उसके पुत्र की कुछ समय बाद मृत्यु हो गई और उसका पुनर्जन्म एक वेश्या के पुत्र के रूप में हुआ। जब उसे पता चला कि वह एक लड़का है, तो उसने उसे त्याग दिया और उसे एक कब्रिस्तान में छोड़ दिया। वहाँ वह, केवल अपने पुण्य के बल पर सुरक्षित और अक्षुण्ण, अपनी माँ की गोद में सुखपूर्वक सो रहा था। कहते हैं कि देव-प्राणियों ने उसकी देखभाल की। फिर जब भगवान बुद्ध, अत्यधिक दया से भरकर, भोर में उठे और अपनी (दिव्य) बुद्ध-दृष्टि से संसार का अवलोकन किया, तो उन्होंने उस लड़के को देखा और कब्रिस्तान गए। कई लोग एकत्रित होकर कहने लगे: गुरु यहाँ आए हैं; "यह किसी कारण से ही इस स्थान पर है।" और उन्होंने उनसे पूछा: "आदरणीय महोदय, इस बालक ने पिछले जन्म में कौन सा कर्म किया था?" बुद्ध ने उन्हें बताया।

तब एक अत्यंत धनी गृहस्थ ने उस बालक को गोद लेते हुए कहा, "भगवान बुद्ध की उपस्थिति में ही यह मेरा पुत्र है!" भगवान बुद्ध यह कहते हुए मठ गए, "इस बालक को एक धनी व्यक्ति ने अपने संरक्षण में ले लिया है और यह अनेक लोगों की सहायता करता है।"

उस व्यक्ति की मृत्यु के बाद, लड़के को उसकी संपत्ति विरासत में मिली और उसने धार्मिक दान और अन्य अच्छे कार्यों में आनंद लिया।

संपादकों ने इस विषय को निम्नलिखित छह छंदों में दर्शाया है:

1. बुद्ध का ज्ञान अद्‌भुत प्रकृति का है, जैसा कि हम देखते हैं कि गुरु ने एक व्यक्ति के बारे में भविष्यवाणी कैसे की; यद्यपि कुछ लोगों के पास व्यापक पुण्य है, दूसरों के पास वास्तव में सीमित पुण्य है।

2. कब्रिस्तान में छोड़े गए इस लड़के ने रात अंगूठा चूसते हुए बिताई; न तो आत्माओं और न ही सरीसृपों ने अतीत के इस पुण्य लड़के को नुकसान पहुँचाया: कुत्ते उसके पैर चाटते रहे: कौवे और सियार उसके चारों ओर चक्कर लगाते रहे।

3. पक्षियों के झुंड ने प्रसव की अशुद्धियों को दूर किया, परन्तु कौवों ने उसकी आँखों को शुद्ध किया। किसी ने भी उसकी देखभाल नहीं की, न ही उसे दवा दी और न ही सरसों का धुआँ।

4. उन्होंने चंद्रमा के चंद्र नक्षत्र के साथ संयोजन के बारे में भी नहीं जाना; और न ही (सौभाग्य लाने के लिए) उन्होंने उस व्यक्ति पर सारे अनाज बिखेरे जो घोर दुख में डूबा हुआ था, जिसे रात में लाया गया और श्मशान में डाल दिया गया।

5. जो देवता और मनुष्य दोनों पूजते हैं, उन्होंने उसे ताज़े मक्खन के टुकड़े की तरह कांपते हुए, दयनीय अवस्था में, कुछ जीवन शेष रहते हुए देखा। और जब महान ज्ञान वाले ने उसे देखा, तो उन्होंने कहा: "यह बालक धन के कारण इस नगर के एक प्रतिष्ठित परिवार का मुखिया बनेगा।"

धर्मनिष्ठ गृहस्थ:

6. उसकी प्रतिज्ञा क्या है? अब धार्मिक जीवन क्या है?

इस अच्छे कर्म का यह परिणाम क्यों होता है कि उस पर ऐसी विपत्ति आने के कारण उसे ऐसी शक्ति प्राप्त हो?

अब संपादकों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भगवान बुद्ध ने अपने उन शिष्यों द्वारा पूछे जाने पर किस प्रकार उत्तर दिया था:

7. लोगों ने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह का बहुत सम्मान किया। उस अवसर पर इस भिक्षु की राय भिन्न थी: उसने कठोर और असभ्य टिप्पणी की।

8. तब से उसने इस विचार को त्याग दिया और बाद में आनंद और मन की शांति प्राप्त की, एक सप्ताह तक उसने जेतवन में निवास कर रहे तथागत (बुद्ध) को चावल का दलिया खिलाकर उनकी सहायता की।

9. प्रतिज्ञा उनकी थी; इसके अलावा, यह धार्मिक जीवन भी उनका ही है।

उस अच्छे कर्म का यह परिणाम होता है कि जब उस पर ऐसी विपत्ति आती है, तो उसे ऐसी शक्ति प्राप्त होती है।

10. वह इस दुनिया में एक शताब्दी तक रहकर सभी सुखों से परिपूर्ण होकर, अपने शरीर के नष्ट होने पर, पुनर्जन्म लेकर वासव (सक्का/इंद्र, अर्थात् स्वर्ग में) के साथ संगति में जाता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> सेरीनी की कहानी

पिछला <<<<---------------------- 3.6 ------------------------->>>> अगला

31. सेरिनी की कहानी (3.6)
जब गुरु जेतवन मठ में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

कहा जाता है कि कुरु वंश के हत्थिनीपुरा (हस्तिनापुरा/वर्तमान मेरठ) में सेरिनी नाम की एक वेश्या रहती थी। जब नगरवासियों ने मिशन पर आए भिक्षुओं का स्वागत किया और उससे आग्रह किया, "आओ, उन्हें उपहार देकर धन्यवाद दो," तो उसने यह कहते हुए इनकार कर दिया, "मैं मुंडे हुए भिक्षुओं को यह उपहार क्यों दूं? मैं उस व्यक्ति के लिए कुछ क्यों त्यागूं जिसका कोई महत्व नहीं है?"

जब उसकी मृत्यु हुई तो उसका पुनर्जन्म एक सीमावर्ती किले की खाई के पीछे एक छोटी सी कुटिया के रूप में हुआ। फिर हत्थिनीपुरा का एक शिष्य व्यापार करने के लिए इस सीमावर्ती शहर में गया और भोर में अपना काम निपटाने के लिए खाई पार करते समय उसने उसे देखा और उससे एक श्लोक में पूछा:

1. "तुम नग्न और भयानक रूप वाले हो, दुबले-पतले और उभरी हुई नसों वाले, तुम पतले हो, तुम्हारी पसलियाँ उभरी हुई हैं, अब तुम कौन हो, तुम जो यहाँ हो?" (2.1 पैराग्राफ 1 के समान)।

उसने बदले में कहा:

2. "हे पूज्यवर, मैं एक पेटी हूँ, यमलोक का एक दुखी निवासी; क्योंकि मैंने एक बुरा कर्म किया था। मैं यहाँ से पेटों के लोक में चला गया।" (जैसा कि 2.1 पैराग्राफ 2 में है)।

फिर उन्होंने एक श्लोक में पूछा:

3. "अब तुमने अपने शरीर, वाणी या मन से कौन सा बुरा कर्म किया? किस कर्म के कारण तुम परलोक में गए हो?" (जैसा कि 2.1 अनुच्छेद 3 में है)

उसने छह छंदों में उत्तर दिया:

4. मैं आधे महीने तक सार्वजनिक स्नानागारों के आसपास घूमता रहा। हालाँकि दान देना एक कर्तव्य है, फिर भी मैंने अपने लिए कोई आश्रय नहीं बनाया।

5. "प्यास लगने पर मैं नदी के पास जाता हूँ; वह सूखी होती है। गर्मी के दिनों में मैं छाया में जाता हूँ; वहाँ भी गर्मी हो जाती है।"

6. और एक भयंकर, प्रचंड हवा मुझ पर बह रही है। हे पूज्यवर, मैं इससे भी अधिक कष्ट सहने का पात्र हूँ।

7. "हत्थिनीपुरा जाओ और मेरी माँ को बताओ: 'मैंने तुम्हारी बेटी को देखा, जो यमलोक की एक अभागी निवासी है। उसने एक बुरा कर्म किया था, इसलिए वह यहाँ से पेटालोक चली गई।'

8. "अब मेरे पास चार लाख की संपत्ति है, जिसे मैंने बिना किसी को बताए अपने सोफे के नीचे छिपा दिया है।"

9. "तो वह मेरे नाम से दान दे, और उसकी आयु दीर्घायु हो; और जब मेरी माता मेरे लिए दान दे, तो वह दान का पुण्य मुझे ही अर्पित करे, तब मैं प्रसन्न होऊंगा, और मेरी सभी मनोकामनाएं पूरी होंगी।"

जब याचिकाकर्ता यह कहानी सुना रही थी, तब उसने उसकी बातों पर ध्यान दिया, और अपना काम समाप्त करने के बाद, जाकर उसने यह बात उसकी माँ को बताई। संपादकों ने इसे इन छंदों में दर्ज किया है:

10. उसने "ऐसा ही हो" कहकर सहमति दी और हत्थिनीपुरा जाकर बोला: "मैंने तुम्हारी पुत्री को देखा है, जो यमलोक की एक दुष्ट निवासी है। उसने एक पाप किया था, इसलिए वह यहाँ से पतरसलोक चली गई।"

11. "उस अवसर पर उसने मुझे सलाह दी- 'कृपापूर्वक मेरी माँ को बताएँ: मैंने आपकी पुत्री को यमलोक की एक अभागी निवासी के रूप में देखा है। उसने एक बुरा कर्म किया, इसलिए वह यहाँ से पेटों के लोक में चली गई।'"

12. "अब मेरे पास संपत्ति है ... (जैसा कि 8 में है)।

13. "तो उसे देने दो..." (जैसा कि 9)

14. तदनुसार उसने उपहार प्रस्तुत किया और उसे दान का श्रेय दिया; और पेटी प्रसन्न और सुंदर शारीरिक रूप से प्रकट हुई।

जब उसकी माँ ने यह सुना, तो उसने इच्छानुसार भिक्षुओं के समूह को उपहार दिया और उसे अपनी ओर से दिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> हिरण शिकारी

पिछला <<<<----------------------- 3.7 -------------------------->>>> अगला

32. हिरण शिकारी की कहानी (3.7)
भगवान बुद्ध जब बांस के जंगल वाले मठ में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई थी।

राजगाह नगर में एक शिकारी दिन-रात हिरणों का शिकार करके अपना जीवन यापन करता था। उसका एक गृहस्थ शिष्य मित्र था, जिसकी सलाह वह आंशिक रूप से मानता था, और इसी कारण उसका पुनर्जन्म मृदुवंश के रूप में हुआ। आदरणीय वृद्ध भिक्षु नारद ने उसे देखा और उससे इस श्लोक में पूछा:

1. "तुम एक युवक हो जिसकी सेवा पुरुष और महिलाएं करते हैं; रात में तुम कामुक सुखों में मग्न हो जाते हो; दिन में किसी कारणवश कष्ट भोगते हो। तुमने पिछले जन्म में क्या किया था?"

पेटा ने बताया कि उसने क्या किया था:

2. "पिछले जन्म में, सुंदर राजगृह नगर में, रमणीय गिरिब्बाजा में, मैं एक हिरण शिकारी था, खूनी हाथों वाला एक निर्दयी व्यक्ति था।"

3. "मैं दुष्ट मन से निर्दोष प्राणियों के बीच घूमता था, अत्यंत निर्दयी, हमेशा दूसरों को बेरहमी से मारने में आनंद पाता था।"

4. "यद्यपि मेरा स्वभाव ऐसा था, फिर भी मेरा एक मित्रवत साथी था, जो धर्मनिष्ठ गृहस्थ था; और उसने मुझ पर दया करते हुए मुझे बार-बार रोकते हुए कहा:

5. "बुरा कर्म मत करो, अन्यथा, मेरे मित्र, तुम्हारा बुरा हाल होगा। यदि तुम मृत्यु के बाद सुख चाहते हो, तो अंधाधुंध जीवन लेने में आनंद मत लो।"

6. "यद्यपि मैंने उस व्यक्ति की सलाह सुनी जो सुख चाहता था और मुझ पर दया करता था, फिर भी मैंने उसकी शिक्षा का पूरी तरह पालन नहीं किया, क्योंकि लंबे समय से मुझे दुष्टता में आनंद मिलता रहा था और मुझमें कोई अंतर्दृष्टि नहीं थी।"

7. "फिर इस बुद्धिमान व्यक्ति ने करुणावश मुझे आत्मसंयम की भावना से प्रेरित करते हुए कहा: 'यदि तुम दिन में पशुओं का वध करते हो, तो रात में अपने भीतर संयम उत्पन्न करो।'"

8. "इसलिए मैं दिन में जानवरों को मारता था और रात में संयम बरतता था। अब मैं रात में घूमता हूँ; लेकिन दिन में मैं दुख में डूबा रहता हूँ।"

9. "उस अच्छे कार्य के लिए मुझे एक निर्जन रात्रि का आनंद मिलता है, लेकिन दिन के समय, जिन कुत्तों को अभी-अभी भगाया गया था, वे मुझे खाने के लिए चारों ओर से दौड़ पड़ते हैं।"

10. "जो लोग तथागत (बुद्ध) की शिक्षाओं के प्रति सदा समर्पित और उनसे जुड़े रहते हैं, वे, मेरा मानना है, पूर्ण अमरता, परम अवस्था को भी प्राप्त कर लेंगे।"
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> एक व्याध-II

पिछला <<<<------------------------ 3.8 -------------------------->>>> अगला

33. एक शिकारी की दूसरी कहानी (3.8)
जब भगवान बुद्ध वेलुवन में रह रहे थे, तब उन्होंने यह दूसरी कहानी भी सुनाई थी।

राजगाह में, ऐसा कहा जाता है कि एक धनी युवक ने धन-दौलत के सुखों का त्याग कर दिन-रात हिरणों का शिकार किया। एक बुजुर्ग भिक्षु की सलाह पर और एक गृहस्थ मित्र के आग्रह पर उसने रात्रि शिकार भी छोड़ दिया, जिसका परिणाम उसे परलोक में भी वैसा ही मिला।

निम्नलिखित श्लोकों में नारद नामक बड़े गुरु ने उनसे पूछा:

1. एक सीढ़ीदार इमारत में, एक हवेली में, ऊनी चादर से ढके हुए सोफे पर, पाँच प्रकार के संगीत वाद्ययंत्रों के साथ, आप उस चीज़ में आनंद पाते हैं जो अच्छा संगीत देती है।

2. "फिर भोर होते ही, सूर्योदय के समय, तुम्हें कब्रिस्तान में निर्वासित कर दिया जाता है और तुम्हें बहुत कष्ट सहना पड़ता है।"

3. "अब तुमने शरीर, वाणी या मन से कौन सा बुरा कर्म किया है? किस कर्म के कारण तुम यह कष्ट भोग रहे हो?" तब पेता ने उसे निम्नलिखित कहानी सुनाई:

4. "सुंदर राजगाह नगर में, रमणीय गिरिब्बा में, मैं पहले एक शिकारी था; मैं एक खिलाड़ी था, एक अनियंत्रित।"

5. "मैंने इस प्रकार सोचा, मेरा एक मित्रवत साथी था, जो धर्मनिष्ठ गृहस्थ था: उसके परिवार में अक्सर एक भिक्षु आता-जाता था, जो गौतम (बुद्ध) का शिष्य था। और उसने मुझ पर दया करके मुझे बार-बार रोकते हुए कहा:

6. "बुरा कर्म मत करो... (श्लोक 5-10 जैसा कि पिछली कहानी 3.7 में है)।"
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> कपटपूर्ण निर्णय

पिछला <<<<------------------------ 3.9 -------------------------->>>> अगला

34. धोखाधड़ीपूर्ण निर्णयों की कहानी (3.9)
जब शिक्षक वेलुवाना मठ में रह रहे थे, तब उन्होंने धोखाधड़ी वाले निर्णयों की यह पेटा कहानी सुनाई।

उस समय राजा बिम्बिसार महीने के छह दिन पर्व मनाते थे। बहुत से लोगों ने उनका अनुकरण किया और पर्व में भाग लिया। राजा समय-समय पर अपने समक्ष आने वाले लोगों से पूछते थे, "तो अब, क्या तुम लोग पर्व मनाते हो या नहीं?" तब एक व्यक्ति, जिसे मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया था, जो निंदक और बेईमान था, रिश्वत लेता था और क्रूर था, लेकिन जो यह कहने से डरता था कि "मैं पर्व नहीं मनाता," ने कहा, "महाराज, मैं पर्व मनाता हूँ।" तब राजा के समक्ष से जाने के बाद उसके एक साथी ने उससे पूछा, "मित्र, आज तुमने क्या मनाया?" उसने उत्तर दिया, "मित्र, राजा के सामने डर के मारे मैंने यही कहा था कि मैं पर्व मनाता हूँ।" तब उसके साथी ने उससे कहा, "यदि यह केवल आधा पर्व है, तो आज ऐसा ही मान लो; पर्व की प्रतिज्ञा ले लो।" वह मान गया, घर गया, अपना चेहरा धोया और आधे पर्व में भाग लिया। रात के समय जब वह अपने घर पहुंचा, तो तेज हवा के कारण उसके गरीब से घर से एक खूंटा गिर जाने से उसकी जिंदगी अचानक समाप्त हो गई।

फिर मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म एक पर्वत की खोखली घाटी में एक देव-पति के रूप में हुआ, क्योंकि उन्होंने केवल एक रात के लिए आधा भोज किया और अपना प्रतिफल प्राप्त कर लिया, उन्हें दस हजार कन्याओं का समूह प्राप्त हुआ और उन्होंने देव प्राप्ति का आनंद लिया; लेकिन कपटपूर्ण निर्णयों और अपने झूठ के परिणामस्वरूप, उन्होंने स्वयं अपने हाथों से अपनी पीठ का मांस काटकर खा लिया।

आदरणीय नारद ने गिद्ध शिखर से उतरते समय उन्हें देखा और इन चार श्लोकों में उनसे बात की:

1. "तुम माला, मुकुट और चूड़ियाँ धारण करती हो, और तुम्हारे अंगों पर चंदन का लेप लगा हुआ है। तुम्हारा चेहरा शांत है, और तुम सूर्य के समान तेजस्वी और चमकीली हो।"

2. "यह अमानवीय दल मुझे आपके परिचारकों के रूप में दिखाई देता है; ये दस हजार युवतियाँ आपकी सेविकाएँ हैं।"

3. "वे सीपियों के कंगन पहनते हैं और सोने की पट्टियों से सजे होते हैं; आप शक्तिशाली हैं, और आपका रूप रोमांचकारी है।"

4. "तुमने अपने ही हाथों से अपनी पीठ का मांस काटकर खाया। अब तुमने शरीर, वाणी या मन से कौन सा दुष्ट कार्य किया? तुम अपनी पीठ का मांस क्यों खा रहे हो?"

पेटा ने अपनी कहानी इन चार छंदों में सुनाई:

5. "जीवितों की दुनिया में मैंने निंदा और झूठ, धोखाधड़ी और छल से अपने ही नुकसान के लिए कार्य किया।"

6. "मैं वहां सभा में गया और जब सत्य बोलने का समय आया, तो मैंने अच्छाई और सही बात का विरोध किया और अधर्म के कामों की ओर मुड़ गया।"

7. "इसी प्रकार चुगली करने वाला स्वयं को ही खा जाता है, जैसे मैं आज अपनी ही पीठ से निकले मांस को खा रहा हूँ।"

8. "नारद, आपने स्वयं यह तथ्य देखा है: दयालु वे हैं जो उचित शब्द बोलते हैं। निंदा न करो, झूठ न बोलो, अन्यथा तुम वास्तव में चुगलखोर कहलाओगे।"
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> अवशेषों की अवमानना

पिछला <<<<----------------------- 3.10 -------------------------->>>> अगला

35. अवशेषों के प्रति अवमानना की कहानी (3.10)
जब भगवान बुद्ध कुसिनारा में उपवत्तना वन में, मल्ल वंश के साल के जंगल में, दो साल के पेड़ों के बीच परास्त हुए, और अवशेषों का वितरण हो जाने के बाद, राजा अजातसत्तु ने अपना हिस्सा ग्रहण किया और सात वर्ष, सात महीने और सात दिन तक उनकी पूजा की। परन्तु छियासी हजार लोग, जो लंबे समय से नास्तिकता और विधर्म के कारण भटक गए थे और जिनके विचार भ्रष्ट हो गए थे, यहाँ तक कि अच्छे वातावरण में भी, पेटों में पुनर्जन्म लेकर मर गए। इसी राजगृह नगर में, एक धनी गृहस्थ की पत्नी, पुत्री और बहू ने श्रद्धापूर्वक अपने हृदय में सुगंध, फूल और अन्य भेंट लेकर अवशेषों के स्थान पर जाना शुरू किया और कहा, "हम अवशेषों की पूजा करेंगे।" परिवार के मुखिया ने निंदा भरे शब्दों से इस पूजा को हतोत्साहित किया और कहा, "हड्डियों की पूजा करने का क्या अर्थ है?" परन्तु उन्होंने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया और चली गईं। उनकी मृत्यु के बाद उनका जन्म देवलोक में हुआ, लेकिन उनका पुनर्जन्म पेटों के बीच हुआ।

फिर एक दिन आदरणीय वरिष्ठ भिक्षु महाकस्सपा करुणावश मंदिर के प्रांगण में खड़े हुए और तीन श्लोकों में उस व्यक्ति से प्रश्न किया जिसने अवशेषों का अपमान किया था:

1. "जब तुम हवा में खड़े होते हो, तो तुम एक दुर्गंधयुक्त, सड़ी हुई गंध छोड़ते हो, और कीड़े तुम्हारे सड़े हुए चेहरे को कुतर रहे हैं।"

2. "तुमने अतीत में ऐसा कौन सा कर्म किया है जिसके लिए वे तलवार लेकर तुम्हें बार-बार काटते हैं? क्या वे इसी कारण तुम पर कास्टिक तेल छिड़ककर तुम्हें बार-बार काटते हैं?"

3. "अब शरीर, वाणी या मन से कौन सा बुरा कर्म किया गया? किस कर्म के कारण तुम यह कष्ट भोग रहे हो?" (जैसा कि III. 8, 3 में है)।

पेटा ने उसे इस प्रकार उत्तर दिया:

4. "सुंदर राजगाह नगर में, रमणीय गिरिब्बा में, महोदय, मैं अत्यंत धन और अनाज का स्वामी था।"

5. "मेरी पत्नी, पुत्री और बहू तमाला वृक्ष और नीले कमल के फूल और नया इत्र लेकर मंदिर जा रही थीं; मैंने उन्हें रोक दिया। वह दुष्ट कर्म मैंने किया था।"

6. "हम छियासी हजार हैं; हममें से प्रत्येक को अपना-अपना दुख भोगना पड़ता है। क्योंकि मैंने मंदिर में पूजा को तुच्छ समझा, इसलिए मैं नरक में भीषण पीड़ा भोग रहा हूँ।"

7. "निश्चित रूप से जो लोग बुद्ध के पर्व के दौरान पूजा-अर्चना करते समय दुष्टता प्रकट करते हैं, आपने उन्हें ऐसा करने से हतोत्साहित किया।"

8. "और देखो, ये स्त्रियाँ सजी-धजी और मालाएँ पहने आ रही हैं। वे अपने पुष्प अर्पण का फल भोग रही हैं। वे भाग्यशाली और सुंदर हैं।"

9. "जब बुद्धिमान लोग इस अद्भुत और रोमांचकारी चमत्कार को देखेंगे, तो वे आपकी पूजा और आराधना करेंगे, हे महान ऋषि।"

10. "अब जब मैं, जो इस दुख में हूँ, इस अवस्था से निकलकर फिर से मनुष्य बन गया हूँ, तो मैं बार-बार लगन से मंदिर की पूजा करूँगा।"

महाकस्सपा ने इस घटना को अपना आधार बनाया और वहां उपस्थित लोगों को उपदेश दिया।

पुस्तक III का अंत
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> अंबासक्खरा

पिछला <<<<----------------------- 4.1 ------------------------->>>> अगला

पुस्तक IV: महावग्गो

36. अंबसक्खरा की कहानी (4.1)
जब भगवान बुद्ध जेतवन मठ में रह रहे थे, तब वैशाली में अंबसक्खरा नाम का एक लिच्छवी राजा, जो विधर्मी और अविश्वासी था, शासन कर रहा था। वहाँ एक ईमानदार व्यापारी भी रहता था जिसने चंदन के तख्तों से एक दलदल पर पुल बनाया था। दूसरी ओर, उसके भतीजे को अपने चाचा के बाज़ार में चोरी का सामान लाने के लिए लकड़ी के खंभों पर लटकाकर दंडित किया गया था। इन श्लोकों में इसी की कहानी बताई गई है। पहला श्लोक संपादकों द्वारा जोड़ा गया है

1. वज्जियों का एक नगर था जिसका नाम वैशाली था; वहाँ लिच्छवी राजा अंबसक्खरा रहते थे। जब उन्होंने नगर के बाहर एक पेटा देखा तो वे जानना चाहते थे कि ऐसा क्यों है, और उन्होंने तुरंत उससे पूछा:

2. "इस आदमी के पास न बिस्तर है, न पलंग, न आगे-पीछे चलता है; न भोजन है, न पेय, न वस्त्र; न ही उसकी कोई महिला परिचारिका है।"

3. "अतीत में उसके जिन रिश्तेदारों और मित्रों ने उस पर दया दिखाई थी, वे अब उसे देख नहीं पा रहे हैं। इसलिए वे उसे त्याग चुके हैं।"

4. जो नीचे है उसके कोई मित्र नहीं होते; मित्र दुख देखकर साथ छोड़ देते हैं, जबकि समृद्धि देखकर हमारा साथ देते हैं। जो ऊपर है उसके बहुत मित्र होते हैं।

5. "अपनी सारी संपत्ति का आनंद लेने से उसकी संपत्ति नष्ट हो जाएगी। उसका शरीर रक्त से लथपथ और पूरी तरह से टूटा हुआ, ओस की बूंद की तरह, उसके जीवन का अंत हो जाएगा।"

6. "उससे, जो अंत तक कष्ट सहता रहा, और प्रभामंडल की लकड़ी के खंभे से भयभीत था (राजा ने कहा: 'हे यक्ष, तुम किस प्रकार जीना चाहते हो! क्या जीवित रहना बेहतर है?'"

पेटा :

7. "यह आदमी (सूली पर) मेरा रिश्तेदार था; मुझे उसका पिछला जीवन याद है। उसे देखकर मुझे उस पर दया आई, नहीं तो उसकी दुष्टता के कारण वह नरक में गिर जाता

8. "हे लिच्छवी, यहाँ से जाने पर यह पापी व्यक्ति भीड़भाड़ वाले, भयानक, अत्यधिक गर्म, कठोर और डरावने नरक में पुनर्जन्म लेगा।"

9. "यहाँ तक कि वह सूली, अपने विभिन्न भागों सहित, उस नरक से बेहतर है। ईश्वर करे वह उस कठोर और भयानक, अत्यंत दुखद और पूर्णतः पीड़ादायक नरक में न गिरे।"

10. "यदि यह व्यक्ति मेरी बातें सुन ले, तो वह दुःख से व्याकुल होकर अपनी प्राण त्याग देगा। अतः मैं उसके सामने ये बातें नहीं कहता, कहीं ऐसा न हो कि मेरे कारण ही उसका प्राण समाप्त हो जाए।"

राजा:

11. "मैंने इस आदमी के मामले के बारे में सुना है, लेकिन मैं आपसे कुछ और पूछना चाहता हूँ। यदि आप हमें अनुमति देते हैं तो हम आपसे पूछेंगे; लेकिन हमारे प्रति कोई क्रोध न हो

पेटा:

12. "इस बात का मैं आपको वचन देता हूँ। अविश्वासी को यह कहानी नहीं सुनाई जाएगी। भले ही मैं अनिच्छुक रहूँ, आप मेरी बातों पर विश्वास कर सकते हैं। आप जो चाहें पूछें, मैं अपनी क्षमता के अनुसार उत्तर दूंगा।"

राजा:

13. "जो कुछ मैं अपनी आँखों से देखूंगा, उस सब में मुझे पूरा विश्वास हो। यदि देखने के बाद भी मुझे विश्वास न हो, तो हे यक्ष, तुम इसे मेरा ही कर्म बना देना।"

पेटा:

14. "मुझे अपना निष्ठापूर्ण वादा दीजिए। जब आप धर्म सुन लें, तो आप विश्वास प्राप्त करें, जबकि आप निर्मल मन से उच्च ज्ञान की खोज करें। आपने जो भी धर्म सुना हो या न सुना हो, मैं उन सभी को ज्ञात बताऊँगा।"

राजा:

15. "तुम एक सजे-धजे सफेद घोड़े पर सवार होकर यहाँ उस व्यक्ति के पास आए हो जिसे सूली पर चढ़ाया गया है। यह जाने का एक अद्भुत और देखने योग्य तरीका है। यह किस कर्म का परिणाम है?"

पेटा:

16. "वैसाली शहर के बीचोंबीच दलदल से होकर जाने वाले रास्ते में एक भयानक जगह थी। एक दिन धार्मिक भाव में मैंने सफेद चंदन लिया और उसे उस जगह पर रख दिया

17. "उस पर पैर रखकर हम और अन्य लोग पार चले गए। यह एक अद्भुत और देखने योग्य वाहन है। यह उसी कार्य का परिणाम है।"

राजा:

18 "आपका चेहरा सभी क्षेत्रों को प्रकाशित करता है, और आपकी सुगंध सभी दिशाओं में फैलती है। आप यक्ष के समान शक्ति और सामर्थ्य रखते हैं, लेकिन आप नग्न हैं। इसका क्या परिणाम है?"

पेटा :

19. क्रोध से मुक्त और सदा विश्वासपूर्ण मन से, मैं कोमल शब्दों के साथ लोगों के पास पहुँचा। उसी कर्म का यह परिणाम है; मेरा देव-स्वरूप सदा उज्ज्वल है

20. "जब मैंने धर्म में दृढ़ रहने वालों की प्रसिद्धि और ख्याति देखी, तो मैंने हृदय में श्रद्धापूर्वक उसका प्रचार किया। उसी कर्म का यह फल है; मेरी देव सुगंध निरंतर फैलती रहती है।"

21. "जब मेरे साथी नदी पार करते समय स्नान कर रहे थे, तो मैंने उनके वस्त्र लेकर किनारे पर छिपा दिए। मेरा इरादा मज़ाक करने का था और मेरे मन में कोई बुरी भावना नहीं थी। इसलिए मैं नंगा हूँ और मेरा जीवन दयनीय है।"

राजा:

22. "यदि कोई खेल-खेल में बुराई करता है, तो वे कहते हैं कि यही उसके कर्मों का फल है; परन्तु यदि वह खेल-खेल में ऐसा नहीं करता, तो वे उसके कर्मों का क्या परिणाम बताते हैं?"

पेटा :

23. “जिन मनुष्यों के मन में दुष्ट इरादे हों और जिनके वचन और कर्म भ्रष्ट हों, निःसंदेह शरीर के विखंडन के समय वे नरक में प्रवेश करेंगे।”

24. "परन्तु दूसरे, जो उज्ज्वल संसार की लालसा रखते हैं, दान में आनंद पाते हैं और स्वयं को संयम में रखते हैं; ये लोग जब शरीर का विघटन करते हैं तो निःसंदेह उज्ज्वल संसार में प्रवेश करते हैं।"

जब राजा ने कर्मों के फल का संक्षिप्त विश्लेषण कर लिया, तो अविश्वासी राजा ने यह आयत कही:

25. "मैं पूछता हूँ, मुझे वास्तव में यह क्यों मानना चाहिए कि यह सद्गुण और पाप का परिणाम है? या मैंने ऐसा क्या देखा है जिस पर मुझे ईमानदारी से विश्वास करना चाहिए? या कौन मुझे इस पर विश्वास दिला सकता है?"

पेटा:

26. "जब तुम देख और सुन लो, तो विश्वास करो: 'यह पुण्य और पाप का परिणाम है।' यदि पुण्य और पाप दोनों का अस्तित्व ही न हो, तो क्या मनुष्य धन्य होंगे या दुखी?"

27. "और यदि मनुष्य इस संसार में पुण्य और पाप कर्म न करते, तो क्या ऊँच-नीच के लोग इस संसार में सुखी या दुखी नहीं होते?"

28. "परन्तु मनुष्य संसार में पुण्य और पाप दोनों प्रकार के कर्म करते हैं, इसी कारण ऊँच-नीच के लोग संसार में सुखी या दुखी होते हैं।"

29. "कहते हैं कि कर्मों का फल दो प्रकार का होता है; एक वह जो धन्य है और दूसरा वह जो संकट में है। देवता आनंदित होते हैं, परन्तु मूर्ख इस दोहरे परिणाम को देखकर पीड़ा भोगते हैं।"

उनसे यह प्रश्न पूछा गया: "परन्तु जो कर्म के फल में विश्वास रखते हो, फिर तुम इतना कष्ट क्यों सहते हो?"

30. "दूसरों द्वारा किए गए कोई भी कार्य मेरे लिए नहीं हैं: कोई भी ऐसा नहीं है जो उपहार देते समय उन्हें मेरे नाम से दे: भोजन और पेय के अलावा वस्त्र और पलंग भी नहीं। इसलिए मैं नंगा हूँ, और मेरा जीवन दयनीय है।"

जब राजा ने सुना कि वह वस्त्र और अन्य वस्तुएँ प्राप्त करना चाहता है, तो उसने कहा:

31. "हे यक्ष, निश्चय ही कोई न कोई साधन अवश्य होगा जिससे तुम वस्त्र प्राप्त कर सको। मुझे किसी स्रोत का उल्लेख करो; हम इस विषय पर विश्वसनीय जानकारी सुनेंगे।"

पेटा :

32. "यहाँ कप्पिटक नाम का एक भिक्षु है: वह विचारशील और नैतिक, योग्य और मुक्त, इंद्रिय-नियंत्रित, नियम से संयमित जीवन जीने वाला, शांत है, और उसने उच्चतम दृष्टिकोण प्राप्त कर लिए हैं

33. "वह वाणी में दयालु, सौम्य, नम्र और प्रसन्नतापूर्ण है, और उसका अभिवादन सच्चे भाव से व्यक्त होता है। वह शांतिपूर्वक सद्गुणों के क्षेत्र में निवास करता है और देवताओं और मनुष्यों से उपहारों का पात्र है।"

34. "वह शांत है और उसने बुरे विचारों के धुंध को दूर कर दिया है; वह मुक्त है, कामवासना से मुक्त है, निस्वार्थ है, ईमानदार है; उसका कोई जीवन-आधार नहीं है और न ही उसे इसकी या उसकी कोई इच्छा है। उसने तीन प्रकार के ज्ञान को उत्कृष्ट रूप से प्राप्त कर लिया है।"

35. "यद्यपि उन्होंने उसे देखा है, फिर भी वह कम ही जाना जाता है, उसके बहुत कम परिचित हैं; वज्जियों में वे उसे ऋषि कहते हैं। यक्ष उसे पूर्वाग्रहों से मुक्त, धर्मपरायण व्यक्ति के रूप में जानते हैं, जो संसार में विचरण करता है।"

36. "यदि तुम उसे एक-दो सूट दो और वह उन्हें स्वीकार कर ले, तो तुम मुझे भी वस्त्रों से सुसज्जित देखोगे।"

राजा:

37. "वह संन्यासी किस स्थान पर रहता है कि हम जाकर उसे अभी देख सकें? वही है जो आज मुझमें संदेह और अनिश्चितता, विधर्म के कठपुतली तमाशे को दूर कर सकता है।"

पेटा :

38. वे कप्पिनच्चना में बैठे हैं, कई देवों (देवदूतों) से घिरे हुए हैं। वे अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप, क्रोध से खुले तौर पर परहेज करते हुए, एक पवित्र प्रवचन दे रहे हैं

राजा:

39. "अब मैं जाकर ऐसा करूँगा। मैं संन्यासी को वस्त्र पहनाऊँगा। यदि यह स्वीकार कर लिया जाए, तो तुम्हें भी वस्त्र उपलब्ध करा दिए जाएँगे।"

वे दोनों वहां गए और पेटा ने कहा:

40. "मैं संसार-त्यागी के पास असमय नहीं जाता। हे लिच्छविन, तुम्हारे लिए यह उचित समय नहीं है। समय रहते उससे मिलो, तब तुम उसे वहाँ अकेले बैठे देखोगे।"

निम्नलिखित छंद संपादकों द्वारा बोले गए थे:

41. जब उसने ऐसा कहा, तो लिच्छवी अपने सेवकों के साथ उस नगर में, अपने घर, अपने निवास स्थान पर चला गया।

42. उस समय से वह अपने गृहस्थ कर्तव्यों का पालन करने लगा: उसने स्नान किया और एक टोकरी में से आठ वस्त्र चुनकर अपने नौकरों के साथ उन्हें देने चला गया।

43. जब वह उस स्थान पर पहुँचा, तो उसने एक एकांतप्रिय व्यक्ति को देखा जो अपने भोजन से लौटकर एक वृक्ष की जड़ में शांत बैठा था।

44. जब वह उसके पास आया, तो उसने उससे उसके स्वास्थ्य और कुशलक्षेम के बारे में पूछते हुए कहा, "मैं वैशाली का एक लिच्छवी हूँ, और मुझे लिच्छवी अंबसक्खरा के नाम से जाना जाता है।"

45. "हे आदरणीय महोदय, कृपया मुझसे ये आठ उत्तम वस्त्र स्वीकार कीजिए; मैं इन्हें आपको भेंट करता हूँ। मैं यहाँ केवल इसी उद्देश्य से आया हूँ ताकि मैं प्रसन्न हो सकूँ।"

संन्यासी (भिक्षु):

46. "दूर से भी संन्यासी (भिक्षु) और ब्राह्मण आपके निवास से बचते हैं। आपके घर में कटोरे टूट जाते हैं और भिक्षुओं के लबादे भी फट जाते हैं

47· "अब दूसरे लोग कुल्हाड़ी जैसी लातों से संन्यासियों को सिर के बल गिरा देते हैं; संसार त्यागने वालों और संन्यासियों को ऐसी चोटें पहुंचाई जाती हैं।"

48. "तुमने उन्हें घास के साथ तिल का तेल भी नहीं दिया, और न ही तुम भटके हुए व्यक्ति को रास्ता बताते हो। अंधे से तुम स्वयं लाठी छीन लेते हो। तुम तो बड़े ही कंजूस और बेलगाम हो।"

49. "अब आप हमें दान किस कारण से और किस रूप में वितरित करेंगे?"

राजा:

"आदरणीय महोदय, मैं आपकी बात की सच्चाई स्वीकार करता हूँ। मैंने संन्यासियों और ब्राह्मणों को चोट पहुँचाई है।"

50. "मैंने मजाक करने की इच्छा रखी थी और मेरा कोई बुरा इरादा नहीं था; वास्तव में, महाराज, मेरा वह अपराध वास्तव में पाप था। उसने मजाक में ही दुष्टता की। उसका सुख अपूर्ण है, और वह पीड़ा का अनुभव करता है।"

51. "वह जवान और युवा है, लेकिन उसका नश्वर भाग्य नंगापन है। अब उसके लिए इससे भी बुरी बात क्या हो सकती है?"

52, "हे पूज्यवर, मैंने उसे बेचैनी और पाप में देखा; इसलिए मैं एक भेंट देता हूँ। हे प्रभु, आठों निवेदनों को स्वीकार करें और इन भेंटों को यक्ष को सौंप दें।"

संन्यासी (भिक्षु):

53. "निश्चित रूप से यह उपहार अनेक प्रकार से स्वीकार्य है, और यह दाता के लिए अनंत पुण्य प्रदान करे। मैं आपसे आठ वस्त्र स्वीकार करता/करती हूँ; ये उपहार यक्ष को सौंपे जाएँ।"

54. तब लिच्छवी ने शुद्धिकरण के लिए (अपनी हथेली से) जल पिया और बड़े को आठ वस्त्र दिए। "मैं यक्ष को वस्त्र पहने हुए देखता हूँ, ये वस्त्र मुझे स्वीकार्य हों।"

55. फिर उसने चंदन के तेल से अभिषेक किए हुए, सुकुल और सुंदर मुख वाले, उत्तम नस्ल के घोड़े पर सवार, उत्तम वस्त्रों से सजे हुए व्यक्ति को देखा। वह (सेवकों से) घिरा हुआ था और यक्ष के समान शक्ति प्राप्त कर चुका था।

56. राजा ने उसे हर्ष और प्रसन्नता से, सुखद विचारों और चमकते चेहरे के साथ देखा; क्योंकि उसने उसका कर्म और उसका महान परिणाम देखा था; उसने इसे अपनी आँखों से देखा था।

57. वह उसके पास गया और बोला, "मैं संन्यासियों और ब्राह्मणों को दान दूंगा; वास्तव में मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे दान न दिया जा सके। हे यक्ष, आप मेरे लिए एक महान सहायक रहे हैं।"

पेटा:

58. "और हे लिच्छवी, तुमने मुझे ऐसे उपहार दिए हैं जो व्यर्थ नहीं गए। मैं भी तुमसे मित्रता प्राप्त करता हूँ, मैं जो अमानव हूँ, तुमसे जो मानव हूँ।"

राजा:

59. "रास्ता, सगे-संबंधी, शरण, मित्र, तुम मेरे लिए रहे हो, हाँ, देव भी। मैं तुम्हें अंजलि प्रणाम करता हूँ, यक्ष। मैं तुम्हें फिर से देखना चाहता हूँ।"

पेटा :

60. "यदि तुम अविश्वासी, कंजूस हो जाओ, या गलत राय रखो, और उसी अवस्था में यदि तुम मुझे देखने की कोशिश करो, तो भले ही मैं तुम्हें देखूँ, फिर भी मैं तुमसे बात नहीं करूँगा

61. "यदि आप धम्म का आदर करते हैं, दान देने में आनंद पाते हैं, अपने आप को (इंद्रियों में) संयमित रखते हैं, और संन्यासियों और ब्राह्मणों के लिए आपूर्ति का स्रोत हैं, और यदि आपको इस प्रकार मुझे देखने का अवसर मिलता है और मैं आपको देखता हूँ, तो मैं आपका सहृदयतापूर्वक अभिवादन करूँगा।"

62. "जल्दी से इस आदमी को सूली से उतार दो, क्योंकि इस घटना के माध्यम से हमारे बीच घनिष्ठ संबंध बन गए हैं, मैं उसकी पीड़ा के बारे में सोच रहा हूँ, अब जबकि हमने यहाँ आपसी मित्रता स्थापित कर ली है।"

63. "और यदि इस व्यक्ति को शीघ्र ही सूली से उतार दिया जाए, तो वह उत्साहपूर्वक पुण्य कर्म करेगा और इस वास्तविक नरक से मुक्त हो जाएगा। अन्यथा, कर्म का फल भोगना ही होगा।"

64. "कप्पिटक के पास जाओ और उचित समय पर उसके साथ धन का बंटवारा करो। उसके सामने बैठकर उससे अपने विचार पूछो। वह तुम्हें इस मामले का उत्तर देगा।"

65. "इसी भिक्षु के पास जाओ और उससे पूछो - तुम पुण्य चाहते हो और तुम्हारा मन दूषित नहीं है - वह अपने ज्ञान के अनुसार तुम्हें वह सब समझाएगा जो लोगों ने नहीं सुना है, हाँ, वह समस्त धम्म का प्रचार करेगा। (और उसने विचारपूर्वक स्वर्ग में सुखद पुनर्जन्मों के धम्म [मार्ग] की घोषणा की।)

66. जब उसने वहाँ गुप्त रूप से बातचीत की और उस अमानवीय प्राणी से मित्रता स्थापित कर ली, तो वह लिच्छवियों के पास चला गया; फिर उसने सभा को संबोधित किया जो उस समय सत्र में थी:

राजा:

67. "महोदय, मेरी बात सुनिए; बेहतर मार्ग चुनकर मैं अपनी खोज पूरी करूँगा। क्रूर कर्मों वाला व्यक्ति, जिसे सूली पर चढ़ाया गया है, उसे अच्छी तरह से दंडित किया गया है, वह असफल रहा है,

68. बीस रातों से, जब से उसे बांधकर रखा गया है, वह न तो जीवित है और न ही मृत। अब मैं उसे मुक्त करूँगा। सभा इसकी अनुमति दे!

सभा:

69. "इसे और दूसरे को जल्दी से छोड़ दें। कौन कह सकता है, आप ऐसा कर रहे हैं? आप जो जानते हैं, उसके अनुसार करें। कंपनी आपके इरादों की अनुमति देती है।"

70. वह उस स्थान पर गया और जल्दी से खंभे से बंधे हुए व्यक्ति को खोल दिया। फिर उससे कहा: "मित्र, डरो मत!" और उसे चिकित्सकों के हवाले कर दिया।

71. लिच्छवी कप्पितक के समक्ष गया और उचित समय पर उसके साथ धन का आदान-प्रदान किया। उसके समक्ष बैठकर, कारण पूछते हुए उसने उससे इस प्रकार पूछा:

राजा:

72. "क्रूर कर्मों के दोषी व्यक्ति को सूली पर लटकाकर उचित दंड दिया गया है, वह असफल रहा है। बीस रातों से, जब से उसे बांधा गया है, वह न तो जीवित है और न ही मृत है।"

73. "अब मैंने इस यक्ष के कहने पर उसे रिहा कर दिया, आदरणीय महोदय। अब मुझे बताइए, क्या कोई ऐसा उपाय हो सकता है जिससे वह नरक से बच सके?"

74. "आदरणीय महोदय, कृपया बताएं कि क्या कोई उपाय है; हम विश्वासपूर्वक आपकी बात सुनेंगे। क्या उन कृत्यों को मिटाना संभव नहीं है, भले ही हम उन्हें यहां न समझ पाएं?"

संन्यासी (भिक्षु):

75, यदि वह दिन-रात, पूरी लगन और उत्साह से अच्छे कर्म करे, तो वह उस नरक से मुक्त हो जाएगा; कर्म का अनुभव कहीं और करना होगा

राजा:

76. "यह मामला उस आदमी के लिए विद्वतापूर्ण है। अब, आदरणीय महोदय, मुझ पर भी दया कीजिए। मुझे सिखाइए, मुझे सलाह दीजिए, हे बुद्धिमान, ताकि मैं नरक में न जाऊँ।"

संन्यासी:

77. "आज भी पवित्र मन से बुद्ध, धम्म (मार्ग) और संघ (भिक्षुओं का संघ) की शरण लो, और इसी प्रकार पाँच नैतिक उपदेशों को पूर्ण और अक्षुण्ण रूप से ग्रहण करो

78. "अब से किसी की जान लेने से परहेज करो; इस संसार में जो तुम्हें नहीं दिया गया है, उसे त्याग दो; शराब का सेवन न करो, झूठ न बोलो; और अपनी पत्नी से संतुष्ट रहो;

79. "और पूरी निष्ठा से इस उत्तम अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करो जो सुखद परिणामों की ओर ले जाता है।"

80. "शांत मन से धर्मी व्यक्ति को आवश्यक वस्तुएँ, वस्त्र, भिक्षापात्र में दान, विश्राम स्थान, भोजन और पेय, ठोस भोजन, वस्त्र और सोने का स्थान प्रदान करो।"

81. "नैतिक रूप से श्रेष्ठ, वासना से मुक्त और विद्वान भिक्षु भोजन और पेय से तरोताजा होते हैं। पुण्य हमेशा बढ़ता रहता है।"

82. "इस प्रकार दिन-रात पूरी लगन और परिश्रम से धार्मिक कार्यों का अभ्यास करके आप उस नरक से भी मुक्त हो सकते हैं। कर्म का फल कहीं और भुगतना ही पड़ता है।"

राजा:

83. "आज भी मैं पवित्र मन से बुद्ध, धम्म (मार्ग) और संघ (भिक्षुओं का संघ) की शरण लेता हूँ; इसी प्रकार मैं पाँच नैतिक उपदेशों को पूर्ण और अक्षुण्ण रूप से ग्रहण करता हूँ।"

84. "मैं अब से किसी की जान लेने से परहेज करूंगा; मैं इस दुनिया में जो कुछ मुझे नहीं दिया गया है उसे अस्वीकार करूंगा; मैं शराब का सेवन नहीं करूंगा और न ही झूठ बोलूंगा; और मैं अपनी पत्नी से संतुष्ट रहूंगा।"

85. "और मैं पूरी गंभीरता से इस उत्तम अष्टांगिक भलाई का संकल्प लेता हूँ, जो सुखद परिणामों की ओर ले जाती है।"

86. "नैतिक रूप से श्रेष्ठ, वासना से मुक्त और विद्वान भिक्षुओं को मैं आवश्यक वस्तुएँ, वस्त्र, भिक्षापात्र में दान, विश्राम स्थल, भोजन और पेय, ठोस भोजन, वस्त्र और विश्राम कक्ष प्रदान करूँगा। बुद्धों के उपदेशों में आनंद पाते हुए, मैं अविचलित रहूँगा।"

87. ऐसा ही एक व्यक्ति अम्बासक्खरा, लिच्छवी, वैशाली का गृहस्थ बन गया; वह विनम्र और विश्वासी था, सेवाएँ करते हुए उसने भिक्षुओं और उनके संघ का उत्साहपूर्वक समर्थन किया।

88. जब खूंटे से बांधे गए व्यक्ति का स्वास्थ्य ठीक हो गया, तो उसने स्वेच्छा से खुशी-खुशी संसार का त्याग कर भिक्षु कप्पितकुट्टमा के पास आया। तब उन दोनों ने संन्यास के फल प्राप्त किए।

89. योग्य पुरुषों की सेवा करना ऐसा ही होता है। अच्छे और बुद्धिमान लोगों के लिए यह भरपूर प्रतिफल देता है। सूली पर लटकाए गए व्यक्ति को सर्वोच्च प्रतिफल प्राप्त हुआ, जबकि अर्नबसक्खरा को कम फल मिला।

आदरणीय महाकप्पिटक, जो गुरु (बुद्ध) को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए सावत्थी गए थे, ने उन्हें वह बात बताई जो पेटा ने राजा को बताई थी। गुरु (बुद्ध) ने इस विषय पर उपस्थित अनेक लोगों के सामने प्रवचन दिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> सेर्लसका की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.2 -------------------------->>>> अगला

37. सेरलिसाका की कहानी (4.2)
(यह विमानवत्थु में VII-10 के समान है।)
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> नंदक की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.3 -------------------------->>>> अगला

38. नंदका की कहानी (4.3)
गुरु (बुद्ध) के निधन के दो सौ वर्ष बाद, सूरत्थ (संभवतः सौराष्ट्र, गुजरात) में राजा पिंगला शासन कर रहे थे। उनके सेनापति नंदक थे, जिनके विचार विधर्मी (गलत) थे। संपादकों ने उनके बारे में यह कहानी बताई है।

1. ऐसा कहा जाता है कि राजा पिंगलाका सूरत नगर के जनसमुदाय के स्वामी थे। वे मौर्यों (मगध/बिहार के मौर्यों) की सेवा करने गए थे और सूरत लौट रहे थे।

2. दोपहर की भीषण गर्मी में राजा एक दलदल में पहुँचा; उसने एक रमणीय मार्ग देखा, जो पेटा पक्षियों का निवास स्थान था।

3. राजा ने अपने सारथी से कहा: "यह एक रमणीय मार्ग है; शांत, सुरक्षित, भाग्यशाली, सारथी, इसी मार्ग पर चलो।"

4. इस बिंदु से सूरत का राजा अपनी चार प्रकार की सेना (हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक) के साथ सूरत से आए सैनिकों का नेतृत्व करते हुए आगे बढ़ा।

5. घबराए हुए चेहरे के साथ एक व्यक्ति ने सूरत के शासक से इस प्रकार कहा: "हम गलत रास्ते पर जा रहे हैं; यह भयानक, रोंगटे खड़े कर देने वाला है।"

6. "आगे तो रास्ता दिख रहा है, लेकिन पीछे कुछ नहीं दिख रहा। हम यमराज के आदमियों के पास गलत रास्ते पर चल रहे हैं।"

7. "एक अमानवीय गंध बह रही है; एक भयानक शोर सुनाई दे रहा है।" सूरत के राजा ने घबराकर सारथी से ऐसा कहा।

8. "हम गलत रास्ते पर जा रहे हैं; यह भयानक और रोंगटे खड़े कर देने वाला है। आगे तो रास्ता दिख रहा है, लेकिन पीछे कुछ नहीं दिख रहा।"

9. "हम यमराजों के पास गलत रास्ते पर चल रहे हैं। एक अमानवीय गंध आ रही है; एक भयानक शोर सुनाई दे रहा है।"

10. वह हाथी की पीठ पर सवार हुआ; और चारों दिशाओं में देखते हुए, उसने घनी छाया वाला एक बरगद का पेड़ देखा।

11. वह वृक्ष गहरे नीले रंग के गरजते बादल जैसा दिखता था, और उसका ऊपरी भाग धुंध जैसा था। राजा ने अपने सारथी से पूछा: "वह बड़ी वस्तु क्या है जो हमें दिखाई दे रही है, जो गहरे नीले रंग के गरजते बादल जैसी है और जिसका ऊपरी भाग धुंध जैसा है?"

सारथी :

12. "महाराज, वह एक बरगद है जिसमें भरपूर छाया है; यह एक ऐसा वृक्ष है जो रंग में गहरे नीले गरजते बादल जैसा दिखता है, और इसके शीर्ष का रंग धुंध जैसा है।"

13. सूरत का राजा उस दिशा में चल पड़ा जहाँ वह विशाल वृक्ष दिखाई दे रहा था, जिसका रंग गहरे नीले रंग के गरजते बादल जैसा था और जिसका ऊपरी भाग धुंध के रंग का था।

14. हाथी की पीठ से उतरकर राजा वृक्ष के पास पहुँचा और अपने मंत्रियों और सेवकों के साथ बरगद की जड़ों में बैठ गया।

15. उसने पानी से भरा एक घड़ा और केक देखे। फिर एक पुरुष, जो देव के समान दिखता था और सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित था, आया और उसने राजा को इस प्रकार संबोधित किया:

16. "स्वागत है महाराज; आप ज्यादा दूर नहीं आए हैं, पानी पीजिए, केक खाइए, हे विजेता!"

17. राजा ने अपने मंत्रियों और सेवकों के साथ पानी पिया और केक खाए, फिर राजा ने इस प्रकार कहा:

18. "अब मैं पूछूं, हे पुरिन्ददा, क्या आप देव (देवदूत), गंधर्व (देव के सेवक), या सक्का (स्वर्ग के राजा इंद्र) हैं? हम आपको नहीं जानते, इसलिए हम आपको कैसे जान सकते हैं?"

पेटा:

19. "मैं न तो देव हूँ, न ही गंधर्व, और न ही सक्का पुरिंददा, मैं एक पेटा हूँ, हे प्रभु, जो सूरत से यहाँ आया हूँ

राजा:

20. "आप कैसे गुणी थे, आपने अतीत में सूरत में कैसा व्यवहार किया? आपके किस पवित्र जीवन के माध्यम से आपने यह वैभव प्राप्त किया है?"

पेटा:

21. "हे महाराज, राज्य के विजेता और विस्तारक, इसे सुनो, और तुम भी, राजा के मंत्रियों और सेवकों, और ब्राह्मण पुरोहित भी सुनो,

22. "हे प्रभु, मैं सूरत का रहने वाला हूँ; मैं बुरे इरादों वाला और झूठे सिद्धांतों का पालन करने वाला व्यक्ति था। मेरा चरित्र खराब था; मैं कंजूस और गाली-गलौज करने वाला था।"

23. मैंने बहुत से दानशील और अच्छे काम करने वालों को रोका, और दान देने के इच्छुक अन्य लोगों का मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

24. (कहते हुए) 'दान देने से कोई प्रतिफल नहीं मिलता। संयम का फल कहाँ से आता है? कोई शिक्षक ही नहीं है। जो दान नहीं देता, उसे कौन दंडित करेगा?'

25. "जीव-जंतुओं में एक का भार दूसरे के भार के बराबर होता है। वे सबसे बड़े (वृद्ध) का सम्मान क्यों करते हैं? न तो बल है और न ही ऊर्जा। मनुष्य के परिश्रम (कर्मों में) की बात क्यों करें?"

26. "दान देने से कोई लाभ नहीं होता; यह शत्रु को दूर नहीं करता। मनुष्य वही प्राप्त करता है जो उसे प्राप्त करना होता है और वही ग्रहण करता है जो उसे मिलना तय होता है।"

27. "न तो माता है, न पिता, न भाई: वर्तमान से परे कोई संसार नहीं है। न कोई उपहार है; न कोई बलिदान है: कुछ भी सुस्थापित अस्तित्व में नहीं है।"

28. जो कोई किसी मनुष्य को चोट पहुँचाता है या किसी दूसरे का सिर काट देता है, वह जीवित प्राणियों के प्रति कोई अन्याय नहीं करता।

29. "एक जीव अविनाशी और अविभाज्य है; वह (या तो) अष्टकोणीय है या गेंद के समान गोलाकार; वह पाँच सौ योजन ऊँचा है। उसे कौन नष्ट कर सकता है?"

30. जिस प्रकार फेंकी गई डोरी का गोला खोलने वाले से दूर लुढ़क जाता है, ठीक उसी प्रकार जीवित मनुष्य उसे खोलने वालों से दूर लुढ़क जाता है।

31. "जैसे कोई एक गाँव छोड़कर दूसरे गाँव पहुँच जाता है, वैसे ही सजीव प्राणी दूसरे शरीर में प्रवेश करता है।"

32. "जैसे कोई व्यक्ति एक घर से निकलकर दूसरे घर में जाता है, वैसे ही जीवित प्राणी दूसरे पात्र में प्रवेश करता है।"

33. "चौरासी लाख महाकल्पों के पुनर्जन्म के चक्र से गुजरने के बाद, मूर्ख और बुद्धिमान दोनों ही अपने बुरे कर्मों का अंत कर देते हैं। सुख और दुख दोनों को टोकरी-टोकरी में मापा जाता है। जो विजयी होता है, वही सब कुछ समझता है। बाकी सब मूर्ख हैं! मैं ऐसे ही विचार रखता था।"

34. "यदि मैं भटक रहा था, अज्ञान से भरा हुआ था, तो मैं विधर्मी था, गुणी नहीं। मैं कंजूस और दुर्व्यवहार करने वाला था। छह महीने से भी कम समय में मेरी मृत्यु हो जाएगी (अब से, पेटा की अवस्था से)।"

35. मैं उस अत्यंत कठोर और भयानक नरक में गिरूँगा। वह चार कोनों वाला और चार द्वारों वाला नरक है।

36. "इसे भागों में विभाजित किया गया है, यह लोहे की बाड़ से घिरा हुआ है और ऊपर से लोहे से ढका हुआ है।"

37. इसका लोहे का फर्श गर्मी से दमक रहा है। सौ योजन तक चारों ओर चमकता हुआ, यह अनंत काल तक विद्यमान है। एक लाख इकाइयाँ गुजरती हैं और तुरंत एक ध्वनि सुनाई देती है। एक लाख (10 लाख वर्ष) बीत चुके हैं, महाराज, जिसका सौवां भाग एक करोड़ (10 लाख करोड़ वर्ष) होता है; जो लोग विधर्मी और बुरे चरित्र के थे और धर्मियों का अपमान करते थे, वे एक लाख करोड़ वर्षों तक नरक में यातना भोगेंगे। उस स्थान पर मैं दीर्घ पीड़ा सहूँगा।

38. "अतः मैं बुरे कर्मों के फल पर अत्यंत शोक व्यक्त करता/करती हूँ। हे महाराज, राज्य के विजेता और विस्तारक, मेरी बात सुनिए: आपको शुभकामनाएँ। मेरी एक पुत्री है, उत्तरा!"

39. वह अच्छे काम करती है और नैतिक उपदेशों और पर्वों (भोजन दान) में आनंद पाती है। वह संयमी, उदार, बुद्धिमान और निस्वार्थ है।

40. "वह अपने निर्देश (शिक्षा) के प्रति पूर्णतः आज्ञाकारी है और दूसरों के परिवार में बहू है; वह महिमावान बुद्ध, शाक्य ऋषि की गृहस्थ शिष्या है।"

41. "नैतिकता में प्रख्यात एक रनोंक भीख मांगने के लिए गाँव में आया। उसकी आँखें झुकी हुई थीं: वह सचेत (सतर्क), सतर्क (संवेदी), और संयमित था। नियमित रूप से घर-घर भीख मांगते हुए वह उसके घर आया।"

42. "उत्तरा ने उसे देखकर कहा, 'तुम्हें शुभकामनाएँ!' उसने उसे एक पानी का घड़ा और कई तरह की रोटियाँ दीं। यह कहते हुए:

43. "मेरे पिता का निधन हो गया है, आदरणीय महोदय: क्या इससे उन्हें सहायता मिलेगी?" ऐसा करते ही परिणाम सामने आ गया।

44. "मैं राजा वेसवना की तरह भोजन कर रहा हूँ और सुखों का आनंद ले रहा हूँ। हे महाराज, राज्य के विजेता और विस्तारक, यह सुनिए:

45. "बुद्ध को संसार में और देवों (देवदूतों) में सर्वोच्च कहा जाता है। हे विजेता, अपनी पत्नी और बच्चे के साथ बुद्ध की शरण में जाओ।"

46. "आठ गुना मार्ग से वे अमर धाम पहुँचते हैं। हे विजेता, अपनी पत्नी और बच्चे के साथ धम्म (बुद्ध के मार्ग) की शरण में जाओ।"

47. "चारों मार्गों पर चलते हुए, चारों फलों में खड़े होकर, यह (बुद्ध के भिक्षुओं का) संघ सीधा और ज्ञान और नैतिकता के प्रति समर्पित है।"

48. "हे विजेता, अपनी पत्नी और बच्चों के साथ बुद्ध के भिक्षुओं के आश्रम में शरण लो। हत्या से शीघ्र दूर रहो; संसार में जो कुछ तुम्हें नहीं दिया गया है, उसका त्याग करो; शराब का अधिक सेवन न करो; झूठ न बोलो; और अपनी पत्नी से संतुष्ट रहो।"

राजा:

49. "हे यक्ष, आप मेरे कल्याण के बारे में सोचते हैं; हे देव, आप मेरी भलाई के बारे में सोचते हैं! मैं आपका वचन मानूंगा; आप मेरे गुरु हैं।"

50. मैं बुद्ध और सर्वोच्च धम्म (उनके मार्ग और नियम) की शरण लेता हूँ, और मैं मनुष्यों और देवताओं के (भिक्षुओं के) संघ की शरण लेता हूँ।

51. मैं शीघ्र ही जीवन से परहेज करता हूँ; मैं संसार में जो कुछ मुझे नहीं दिया गया है, उसे अस्वीकार करता हूँ; मैं शराब का सेवन नहीं करता; मैं झूठ नहीं बोलता; और मैं अपनी पत्नी से संतुष्ट हूँ।

52. "मैंने अपनी बड़बड़ाहट को नदी की धारा में शीघ्रता से बहा दिया। मैंने बुद्ध की शिक्षाओं में आनंद लेते हुए दुष्ट सिद्धांतों को त्याग दिया।"

53. इस प्रकार सूरत के राजा ने अपने पापमय दृष्टिकोण का त्याग करते हुए कहा, भगवान बुद्ध को प्रणाम करने के बाद, वह पूर्व दिशा की ओर मुख करके अपने रथ पर सवार हो गए!
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> रेवती की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.4 -------------------------->>>> अगला

39. रेवती की कहानी (4.4)
(यह विमानवत्थु के श्लोक 2 के समान है)

लिंक: Vimanavatthu5.2
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> गन्ने की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.5 -------------------------->>>> अगला

40. गन्ने की कहानी (4.5)
जब भगवान बुद्ध बांस के जंगल वाले मठ में थे, तब गन्ने का एक डंठल ले जा रहा एक व्यक्ति उसे चबाता हुआ चला गया। श्लोकों में इसका वर्णन है।

एक दिन पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महा-मोग्गलाना राजगृह नगर में भिक्षा मांगने जा रहे थे, तभी उनकी मुलाकात एक भिक्षु से हुई, जिसने उनसे कहा:

1. "यहाँ मुझे गन्ने का एक विशाल, चौड़ा और भरपूर फसल वाला बाग दिखाई देता है। फिर भी यह मुझे खाने के लिए कुछ नहीं देता। हे पूज्यवर, कृपया मुझे बताइए कि इसका क्या परिणाम है?"

2. "मैं पीड़ित (बीमार) हूँ और भूख से मर रहा हूँ; मैं संघर्ष कर रहा हूँ, कुछ खाने की कोशिश कर रहा हूँ, मैं लगभग मर चुका हूँ; मैं विलाप कर रहा हूँ। यह किस कर्म का परिणाम है?"

3. "मैं व्याकुल हूँ, और धरती पर गिर रहा हूँ। मैं गर्मी में मछली की तरह लोट रहा हूँ, और रोते-रोते मेरे शरीर से आँसू टपक रहे हैं। हे पूज्यवर, मुझे बताइए, यह किस बात का परिणाम है?"

4. "मैं भूखा, प्यासा और थका हुआ हूँ, मैं भयभीत हूँ और मुझे कोई सुख या आनंद नहीं मिलता। आपको शुभकामनाएँ! इस मामले के बारे में पूछने के लिए। अब मुझे भोजन के रूप में कुछ गन्ना कैसे मिल सकता है?"

महामोग्गलाना:

5. "पिछले समय में, जब आप पिछले जन्म में मनुष्य थे, तो आपने स्वयं से एक कर्म किया था। अब मैं आपको इस विषय के बारे में बताता हूँ, और जब आप सुनें, तो इसे इसी रूप में जान लें

6. "आप चलते-चलते गन्ने खा रहे थे, और एक आदमी आपके पीछे आ रहा था। उसने आपसे कहा कि उसे भी कुछ चाहिए, और आपने उसे एक शब्द भी नहीं कहा।"

7. "यद्यपि आपने बोलने से इनकार कर दिया, फिर भी उसने आपसे विनती की और कहा, 'महोदय, मुझे गन्ना दीजिए।' तब आपने उसे पीछे से (बिना देखे/अनादर करते हुए) कुछ गन्ना दे दिया। उस कृत्य का यह दुष्परिणाम आपके सामने आया।"

8. "यहाँ देखो! तुम अपने पीछे से कुछ गन्ने (बिना देखे) उठा सकते हो; उसे उठाओ और जी भर कर खाओ। इस कार्य से ही तुम प्रसन्न, आनंदित और खुश हो जाओगे।"

9. "वह पीछे से (बिना देखे) गया और उसे ले आया। जब वह उसके हाथों में आ गया, तो उसने जी भर कर खाया। इसी से वह प्रसन्न, आनंदित और खुश हुआ।"

पेटा ने गन्ने का एक गट्ठा इकट्ठा किया और उसे एक बड़े भिक्षु को दे दिया, जो उसे वेलुवन मठ में बुद्ध के पास ले गया। भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं के साथ मिलकर उसे खाया और धन्यवाद दिया। उस समय से पेटा आराम से गन्ना खा सकता था। समय बीतने के साथ, उसका पुनर्जन्म त्रिविध देवदूतों (स्वर्ग में देवदूतों के बीच) में हुआ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> राजा के पुत्रों की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.6 -------------------------->>>> अगला

41. राजा के पुत्रों की कहानी (4.6)
जब गुरु (बुद्ध) जेतवन में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

कहा जाता है कि श्रावस्ती में रहने वाले कोसल के राजा के दो प्यारे बेटे थे, जो उस समय युवावस्था में थे। अपनी अनियंत्रित युवावस्था के आवेश में उन्होंने व्यभिचार किया; और मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म पेटों के रूप में हुआ, जिन्हें एक खाई में कुचला जा रहा था। रात में वे भयानक शोर मचाते थे; जब लोगों ने इसे सुना, तो वे भयभीत हो गए। यह देखकर, लोगों ने बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समूह को बड़ी राशि दान की और कहा, "यह अपशगुन रुकना चाहिए।" फिर उन्होंने भगवान बुद्ध को सब कुछ बताया। उन्होंने कहा: "शिष्यों, तुम इस शोर को सुनते-सुनते थकोगे नहीं।" उन्होंने उन्हें इसका कारण बताया और निम्नलिखित श्लोक कहे:

1. "हिमालय की ढलान पर सावत्थी नाम का एक शहर है। मैंने सुना है कि उस स्थान पर एक राजा के दो पुत्र राजकुमार रहते थे।"

2. वे वासनाओं में लिप्त होकर इच्छाओं के भोग में आनंद पाते थे। वे वर्तमान सुखों के लालची थे; उन्होंने भविष्य के बारे में नहीं सोचा।

3. "उन्होंने अपनी मानवीय अवस्था त्याग दी और इस लोक से अगले लोक में चले गए। यद्यपि वे अदृश्य हैं, फिर भी वे अपने अतीत में किए गए दुष्ट कर्मों का पुरजोर अभिनंदन करते हैं;

4. "कहते हुए: 'बहुत से लोगों को उपहारों से नवाजा जाता है, हम अपने लिए ऐसा आशीर्वाद प्रदान करने में सक्षम नहीं हो पाए हैं जो स्थायी सुख लाता है।'"

5. "तो फिर वह कौन सा दुष्ट कर्म रहा होगा जिसके कारण हमें अपने राजपरिवार से अलग होना पड़ा और भूख-प्यास से पीड़ित होकर पेटों के राज्य में पुनर्जन्म लेना पड़ा?"

6. "जो लोग यहाँ स्वामी रहे हैं, वे वहाँ स्वामी नहीं रहेंगे; ऊँचे और नीचे, दोनों प्रकार के लोग भूख और प्यास से पीड़ित होकर भटकेंगे।"

7. "यह जानकर कि इस कष्ट का मूल शासकों की मनमानी में निहित है, मनुष्य प्रभुत्व के अहंकार का त्याग कर स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। शरीर के नष्ट होने के बाद ज्ञानी व्यक्ति का पुनर्जन्म प्रकाशमय संसार में होता है।"

इस प्रकार गुरु ने इन पेटों के भाग्य का वर्णन किया और अपनी इच्छा के अनुसार धम्म का उपदेश देने वाले इन लोगों द्वारा दी गई भेंट उन्हें सौंप दी।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> राजा के पुत्र की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.7 -------------------------->>>> अगला

42. राजा के पुत्र की कहानी (4.7)
जब गुरु जेतवन में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

इसमें, एक बार कितावा नामक राजा के पुत्र ने एक अकेले बुद्ध (पेचेकबुद्ध) को चोट पहुँचाई थी। उन्होंने हजारों वर्षों तक नरक में कष्ट भोगा, और इसी अपराध के कारण उनका पुनर्जन्म पादों के बीच हुआ। उनकी कहानी का विस्तृत वर्णन सानुवसिन के पाद वृत्तांतों में पहले ही किया जा चुका है।

लिंक :

अब गुरु ने एक वृद्ध भिक्षु को पेटा के मृत रिश्तेदारों के भाग्य के बारे में बताते हुए कहा: "न केवल आपके रिश्तेदार, बल्कि आप भी, पेटा बनने पर, इस दुनिया को छोड़ने के बाद अपने अगले जन्म में, बहुत कष्ट भोगेंगे।" वृद्ध के अनुरोध पर उन्होंने यह कहानी सुनाई

1. अतीत में किए गए कर्मों के परिणाम दृष्टि, ध्वनि, स्वाद, गंध और सुखद स्पर्श के संबंध में मन को विचलित कर सकते हैं।

2. उन्होंने नृत्य, गायन, प्रेम और खेल का भरपूर आनंद लिया था, और शाही उद्यान में घूमने के बाद वे गिरिब्बाजा में प्रवेश कर गए।

3. वहाँ उन्होंने ऋषि सुनेट्टा को देखा जो संयमी और शांत थे; उनकी आवश्यकताएँ कम थीं, वे विनम्र थे और अपने भिक्षापात्र में आने वाले थोड़े से भोजन से ही संतुष्ट रहते थे।

4. राजा अपने हाथी की पीठ से उतरे और उनके पास आकर बोले, "आदरणीय महोदय।" तब राजकुमार ने अपना कटोरा पकड़कर उसे ऊपर उठाया।

5. उसने भिक्षापात्र को जमीन पर तोड़ दिया और हंसते हुए यह कहते हुए चला गया: "मैं राजा कितावा का पुत्र हूँ। हे भिक्षु, तुम मेरा क्या करोगे?"

6. इस निर्मम कृत्य का दंड बहुत कठोर था, क्योंकि कहा जाता है कि राजकुमार को नरक में भेज दिया गया था।

7. और उसने अपने पाप के कारण छह गुना चौरासी हजार वर्षों तक नरक में भीषण पीड़ा सही।

8. उसे इस प्रकार दंडित किया गया कि वह पेट के बल लेटा हुआ था, कभी मुंह नीचे की ओर, कभी बाईं ओर तो कभी दाईं ओर करवट लेकर। कभी उसके पैर ऊपर उठाकर, कभी खड़े होकर, उस मूर्ख को लंबे समय तक यातना दी गई।

9. उसने अपने किए गए पाप के कारण हजारों-लाखों वर्षों तक नरक में भीषण पीड़ा सही।

10. निःसंदेह, जो लोग पाप रहित किसी धर्मनिष्ठ ऋषि पर हाथ रखकर बुराई करते हैं, उन्हें ऐसा कठोर दंड भुगतना पड़ता है।

11. उस स्थान पर कई वर्षों तक भीषण कष्ट सहने के बाद वह भूख और प्यास से मर गया, और वहाँ से मरकर वह बाद में एक पेटा बन गया।

12. इस प्रकार, किसी शासक की मनमानी से उत्पन्न कष्ट को देखकर, व्यक्ति को स्वयं मनमानी करने वाला शासक नहीं होना चाहिए, बल्कि विनम्रता की ओर मुड़ना चाहिए।

13. वर्तमान जीवन में भी, जो प्रबुद्धों का आदर करता है, वह प्रशंसा का पात्र है; वह ज्ञान से संपन्न होता है, और शरीर के नष्ट होने के बाद वह प्रकाशमय लोक (स्वर्ग) में जन्म लेता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> गोबर खाने वालों की कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.8 -------------------------->>>> अगला

43. गोबर खाने वालों की कहानी (4.8)
जब गुरु जेतवन मठ में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

कहते हैं कि सावत्थी से कुछ ही दूरी पर स्थित एक नगर में एक गृहस्थ ने अपने एक मित्र भिक्षु के लिए एक मठ बनवाया। फिर विभिन्न स्थानों से भिक्षु वहाँ आकर बस गए। उन्हें देखकर लोगों ने उनकी ज़रूरत की चीज़ें उन्हें भेंट कीं। अब अपने संरक्षक के विश्वासपात्र भिक्षु को यह बात सहन नहीं हुई और वह ईर्ष्या से भर गया (जैसा कि श्लोकों में वर्णित है): तब महा-मोग्गल्लाना ने उसे देखा और पूछा:

1. "तुम कौन हो, बेचारे, जो गटर से आकर वहाँ खड़े हो? मैं तुमसे पूछता हूँ, तुमने ऐसा कौन सा बुरा काम किया है कि तुम शोर मचा रहे हो?"

पेटा:

2. "मैं, आदरणीय महोदय, एक पेटा हूँ, यमलोक का एक दयनीय निवासी। जब से मैंने एक बेंत का काम किया है, मैं इस दुनिया से पेटों की दुनिया में चला गया हूँ।"

बड़े:

3. "अब शरीर, वाणी या मन द्वारा कौन सा बुरा कर्म किया गया? किस कर्म के फलस्वरूप आप इस कष्ट को भोग रहे हैं?"

पेटा :

4. "मेरे यहाँ एक निवासी भिक्षु था जो घर के प्रति ईर्ष्यालु और द्वेषी था। मेरे घर में वह इच्छाओं से जुड़ा हुआ था, वह कंजूस और गाली देने वाला था

5. "मैंने उसकी बात मान ली और दूसरे भिक्षुओं को दोषी ठहराया। उस कर्म के कारण मैं यहाँ से पेटाओं के क्षेत्र में चला गया हूँ।"

बड़े:

6. "तुम्हारा जिगरी दोस्त, मित्र के वेश में शत्रु था। अब मैं तुमसे पूछता हूँ, मूर्ख मनुष्य, तुम्हारे शरीर के विखंडन और परलोक में जाने के बाद तुम्हारा क्या भाग्य लिखा था?"

पेटा :

7. "मैं शीर्ष पर खड़ा हूँ, हाँ, इसी अपराधी के सिर पर: वह पेटा क्षेत्र में पहुँच गया है और केवल मेरी ही सेवा करता है।"

8. "जो दूसरे लोग त्यागते हैं, वही मेरा भोजन बनता है, और बदले में वह मेरे द्वारा त्यागे गए पदार्थ से अपना जीवन यापन करता है।"

आदरणीय महामोग्गलाना ने यह घटना भगवान बुद्ध को सुनाई, जिन्होंने इसका अर्थ समझाया और दोष ढूंढने के खतरे की ओर इशारा किया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> गोबर खाने वालों की दूसरी कहानी

पिछला <<<<----------------------- 4.9 -------------------------->>>> अगला

44. गोबर खाने वालों की दूसरी कहानी (4.9)
जब गुरु जेतवन मठ में ठहरे थे, तब उन्होंने पिछली कहानी के समान यह कहानी सुनाई। यहाँ एक गृहस्थ महिला ने एक मठ का निर्माण किया और पुनर्जन्म लेकर पेटा बनी। श्लोक पिछले (#43) के समान हैं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> पेटास का सेट

पिछला <<<<------------------------ 4.10 --------------------------->>>> अगला

45. पेटा सेट की कहानी (4.10)

जब गुरु जेतवन मठ में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कथा सुनाई। कहा जाता है कि सावत्थी में कुछ अधार्मिक लोग रहते थे, जिनका कोई विश्वास नहीं था और वे लोभ के पाप से ग्रस्त थे। वे अपने जीवन में विचारों और अन्य बातों के प्रति उदासीन थे। काफी समय तक जीवित रहने के बाद उनकी मृत्यु हो गई और वे शहर के पास पेटाओं के रूप में पुनर्जन्म लेकर आए। फिर एक दिन जब पूज्य महामोगल्लन भोजन के लिए सावत्थी जा रहे थे, तो उन्होंने रास्ते में पेटाओं को देखा और उनसे पूछा:

1. "आप नग्न और बदसूरत हैं; आप दुबले-पतले हैं और आपकी नसें उभरी हुई हैं, आपकी पसलियां उभरी हुई हैं और आप पतले हैं। मैं आपसे पूछता हूँ, आप कौन हैं, महोदय?"

पेटस:

2. "हम, आदरणीय महोदय, पेटस हैं, यमलोक के दुखी निवासी। क्योंकि हम बुरे कर्मों के दोषी थे, इसलिए हम यहाँ से पेटस के क्षेत्र में चले गए।"

महामोगल्लाना:

3. "अब शरीर, वाणी या मन से कौन सा पाप किया गया? किस कर्म के फलस्वरूप तुम यहाँ से पादों के लोक में गए हो?"

पेटास :

4. "हम एक पखवाड़े से सार्वजनिक घाटों पर भटक रहे हैं; हमने अच्छे उपहारों (दानों) के माध्यम से अपने लिए कोई शरणस्थल नहीं बनाया है

5. "हम भय से नदी के पास जाते हैं; वह निर्जलित हो जाती है। हम गर्मी के दिनों में छाया के पास जाते हैं; वह गर्मी में परिवर्तित हो जाती है।"

6. "हम पर एक प्रचंड और झुलसा देने वाली हवा चल रही है। आदरणीय महोदय, हम इस पीड़ा के और इससे भी अधिक के पात्र हैं।"

7. "भूखे और भोजन की लालसा में हम योजनों की यात्रा करते हैं। अक्सर हम बिना कुछ लिए ही लौट आते हैं; अफसोस! हमारा पुण्य नगण्य है।"

8. "हे पूज्यवर, हम भूख से व्याकुल और बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े हैं। हम फैले हुए हैं और बेसुध पड़े हैं; हम सिर के बल गिर पड़े हैं।"

9. "और इसलिए हम दर्द से कराहते हुए धरती पर गिर पड़ते हैं, हम अपनी छाती और सिर पीटते हैं। हाय! हममें कोई गुण नहीं है।"

10. "आदरणीय महोदय, हम इस पीड़ा और इससे भी अधिक कष्ट के पात्र हैं। हमने अच्छे दान (दान) के माध्यम से अपने परजीवियों के लिए कोई आश्रय नहीं बनाया है।"

11. "निस्संदेह जब हम यहाँ से चले जाएँगे और मनुष्य रूप में पुनर्जन्म लेंगे, तो हम उदार होंगे; हम सद्‌गुणों के प्रति समर्पित होंगे और बहुत से अच्छे कार्य करेंगे।"

उस बुजुर्ग ने यह घटना भगवान बुद्ध को बताई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> पाटलिपुत्त की कहानी

पिछला <<<<------------------------ 4.11 --------------------------->>>> अगला

46. पाटलिपुत्त की कहानी (पटना) (4.11)

जब गुरु जेतवन मठ में ठहरे हुए थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

कहा जाता है कि सावत्थ और पाटलिपुत्र के कई व्यापारी सुवर्णभूमि (थाईलैंड) के लिए रवाना हुए। वहाँ उनके एक साथी, एक बीमार गृहस्थ शिष्य, जो एक स्त्री से प्रेम करता था, की मृत्यु हो गई। यद्यपि उसने अच्छे कर्म किए थे, फिर भी वह देवलोक में जन्म नहीं ले सका, बल्कि अपनी प्रेमिका के प्रति प्रेम के कारण समुद्र के बीचोंबीच एक रण-पेटा के रूप में पुनर्जन्म लिया। वहाँ भी उसका प्रेम स्त्री के प्रति बना रहा; स्त्री ने भी एक नौका ली और सुवर्णभूमि की यात्रा पर निकल पड़ी। अब यह पेटा, स्त्री को पाने की इच्छा से, नौका का मार्ग रोक दिया। तब व्यापारियों के मन में विचार आया, "अरे, ये क्या हो रहा है? यह नौका तो हिल ही नहीं रही है।" इसलिए उन्होंने पर्ची निकाली। अलौकिक शक्ति से पर्ची तीन बार उसी स्त्री पर पड़ी, जिसके लिए पेटा तड़प रहा था। यह देखकर व्यापारियों ने समुद्र में एक बाँस का बेड़ा उतारा और उस पर स्त्री को रख दिया। जैसे ही उसे जहाज से उतारा गया, जहाज तेजी से सुवन्नाभूमि की ओर चल पड़ा। फिर उस अमानव ने उस स्त्री को अपने महल में ले जाकर उसके साथ सुख का अनुभव किया।

एक वर्ष बीत जाने के बाद वह असंतुष्ट हो गई और पेटा से विनती करते हुए बोली, "जब तक मैं यहाँ रहती हूँ, मैं अन्य लोकों की खोज नहीं कर सकती। कृपया, हे प्रभु, मुझे पाटलिपुत्त ले चलें।"

इस अनुरोध के जवाब में उन्होंने कहा;

1. "तुमने नरक, पशुलोक, पितरों और असुरों का लोक देखा है, मनुष्य और देवों का भी। तुमने स्वयं अपने कर्मों का फल देखा है। मैं तुम्हें सुरक्षित रूप से पाटलिपुत्त ले जाऊंगा। वहां पहुंचकर अच्छे कर्म करना।"

वह प्रसन्न हुई और उसने उत्तर दिया:

2. "हे यात्खा, आप मेरे शुभचिंतक हैं; हे देव, आप मेरा भला चाहते हैं। मैं आपका वचन मानूंगा; आप मेरे गुरु हैं। मैंने नरक, पशुलोक, पेट और असुरों, मनुष्यों और देवताओं को देखा है। आपने स्वयं कर्मों के फल देखे हैं। मैं अनेक पुण्य कर्म करूंगा।"

पेटा थिएल उस स्त्री को लेकर वायु में यात्रा करने लगा; उसने उसे पाटलिपुत्त के केंद्र में स्थापित किया और अपने मार्ग चला गया। उसके बाद जब उसके रिश्तेदारों, मित्रों और अन्य लोगों ने उसे देखा, तो वे प्रसन्न हुए और बोले, "हमने सुना था कि कुछ समय पहले तुम्हें समुद्र में फेंक दिया गया था और तुम मर गई थीं। देखो, तुम सब सुरक्षित लौट आई हो!" तो उन्होंने उससे उसके साहसिक कारनामों के बारे में पूछा, उसने सबको सब कुछ बता दिया।

सावत्थी लौटकर उन व्यापारियों ने गुरु (बुद्ध) को यह बात बताई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> आम की कहानी

पिछला <<<<------------------------ 4.12 -------------------------->>>> अगला

47. आमों की कहानी (4.12)
जब शिक्षक सावत्थी में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

सावत्थी में एक गृहस्थ रहता था जिसकी सारी संपत्ति विलीन हो गई थी। उसकी पत्नी का निधन हो गया और उसने अपनी इकलौती बेटी को एक मित्र के पास छोड़कर कुछ पैसे उधार लिए, सौ कहपना (पीतल के सिक्के) का सामान खरीदा और व्यापार करने के लिए एक कारवां लेकर निकल पड़ा। थोड़े ही समय में उसने अपनी पूंजी वापस पा ली और साथ ही पाँच सौ कहपना का लाभ भी अर्जित कर लिया। इसके बाद वह घर लौट रहा था, तभी रास्ते में लुटेरों ने उसे घेर लिया। व्यापारी इधर-उधर भागने लगे; परन्तु इस गृहस्थ ने अपने सिक्के एक झाड़ी में फेंककर खुद को छिपा लिया। लुटेरों ने उसे ढूंढ लिया और मार डाला। धन के लालच के कारण उसका पुनर्जन्म उसी स्थान पर एक पेटा के रूप में हुआ।

पुत्री ने उनकी स्मृति में पीतल की थाली में चावल का दलिया और आम भगवान बुद्ध को अर्पित किए और प्रार्थना की कि वे इसे उनके पिता की ओर से स्वीकार करें। उस दान के पुण्य से, पेटा को एक सुंदर हवेली प्राप्त हुई।

बाद में व्यापारियों ने उसी यात्रा को दोहराया और उसी स्थान पर रात बिताने के लिए रुके, तब उन्हें पेटा दिखाई दिया और उन्होंने उससे पूछताछ की।

1. "यहाँ आपके सामने एक बेहद खूबसूरत कमल का तालाब है, जिसके किनारे एक आकर्षक घाट है। इसके किनारे समतल हैं और इसमें भरपूर पानी है: यह फूलों से भरा हुआ है, जिन पर मधुमक्खियों का झुंड मंडरा रहा है। आपको यह मनमोहक तालाब कैसे मिला?"

2. "यहाँ आपके सामने आमों का एक बहुत ही सुंदर बाग है जो हर मौसम में फल देता है: यह फूलों से भरा हुआ है जिन पर मधुमक्खियों का झुंड मंडराता रहता है। आपने यह हवेली कैसे प्राप्त की?"

पेटा :

3. "मेरी बेटी ने पके आम, पानी और चावल का दलिया उपहार में दिया: इसी कारण मुझे यहाँ सुखद ठंडी छाया में रहने की अनुमति है।"

तब व्यापारी ने उन्हें पाँच सौ कहपना दिए और कहा: "यहाँ से आधा ले लो और मेरे लाभ के इस हिस्से का हिसाब-किताब करने के बाद, इसे मेरी बेटी को यह कहते हुए सौंप दो, 'आराम से जीवन व्यतीत करो'।" व्यापारी कुछ समय बाद सावत्थी पहुँचे, बेटी को इस बात की जानकारी दी और उसके हाथों में वह पूरी राशि रख दी जो उसके पिता ने उसे दी थी। उसने वह राशि अपने पालक पिता को सौंप दी। लेकिन उसने यह कहते हुए राशि उसे लौटा दी: "यह राशि तुम्हारे सिवा किसी और की नहीं होगी," और उसने उसे अपने सबसे बड़े बेटे की पत्नी बना लिया। कुछ समय बाद, उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसे उसने इस श्लोक से प्रेरित किया:

4. "देखो, इस जीवन में ही, आत्मसंयम और संयम के वरदान का प्रतिफल मिलता है। मैं प्रतिष्ठित परिवारों में सेविका थी: अब मैं बहू और घर की मालकिन हूँ।"

फिर एक दिन गुरु (बुद्ध), जिन्होंने उनकी परिपक्व समझ को देखा, ने अपना एक प्रकाशमान (दिव्य) स्वरूप प्रकट किया और मानो उनके सामने खड़े होकर स्वयं को प्रकट किया। इस अवसर पर उन्होंने यह श्लोक कहा:

5. "धर्मी व्यक्ति अप्रिय को सुखद से, अवांछित को प्रिय से, और दुष्ट को सुखद से जीत लेता है।"
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेटवत्थु >> धुरी और वृक्ष

पिछला <<<<----------------------- 4.13 -------------------------->>>> अगला

48. धुरी और पेड़ की कहानी (4.13)

जब भगवान बुद्ध श्रावस्ती में निवास कर रहे थे, तब वहाँ के एक गृहस्थ शिष्य ने कुछ बैलगाड़ियाँ माल से भरकर व्यापार करने के लिए विदेह चले गए। वहाँ उन्होंने अपना माल बेचकर वापसी का सामान अपनी गाड़ियों में लादा और श्रावस्ती के लिए निकल पड़े। जंगल में यात्रा करते समय उनकी एक गाड़ी का धुरा टूट गया। तभी एक व्यक्ति पेड़ लेने की इच्छा से अपने गाँव से निकला और कुल्हाड़ी लेकर जंगल में घूमने लगा। जंगल में घूमते हुए वह इस स्थान पर पहुँचा और उसने देखा कि धुरा टूटने के कारण वह गृहस्थ शिष्य उदास बैठा है। उसे उस पर दया आई और उसने एक पेड़ काटकर एक मजबूत धुरा बनाया और बिना कोई शुल्क लिए उसे गाड़ी में लगा दिया।

लेकिन बाद में उनकी मृत्यु हो गई और जंगल में इसी स्थान पर उनका पुनर्जन्म पृथ्वीदेव के रूप में हुआ। अपने कर्मों पर विचार करते हुए, वे रात में उस गृहस्थ शिष्य के घर गए और द्वार पर खड़े होकर यह श्लोक बोला:

"जो वह देता है, वह केवल वही नहीं रह जाता। बस दान दो। दान देने से वह दोनों (लोकों) को पार कर जाता है; इसके द्वारा वह दोनों तक पहुँचता है। आलसी मत बनो।"

जब व्यापारी सावत्थी वापस लौटा तो उसने यह बात गुरु (बुद्ध) को बताई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> पेतवत्थु >> गलत तरीके से धन संग्रह करना

पिछला <<<<----------------------- 4.14 -------------------------->>>> अगला

49. धन के अवैध संग्रह की कहानी (4.14)

जब भगवान बुद्ध राजगृह के बाँस के जंगल में ठहरे हुए थे, तब चार स्त्रियाँ गलत तरीकों से घी, शहद, तिल का तेल, अनाज और अन्य खाद्य पदार्थों का व्यापार करती थीं। अपने जीवनकाल में उन्होंने नासमझी से धन-संग्रह कर लिया; इसलिए मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म शहर के बाहर एक खाई में पेटियों के रूप में हुआ। रात में वे दुःख से व्याकुल हो गईं और भयानक शोर मचाते हुए विलाप करती हुई इधर-उधर भटकने लगीं।

"हमने न्यायसंगत और अन्यायपूर्ण तरीके से धन अर्जित किया; दूसरे इसका आनंद लेते हैं; दुख हमारा हिस्सा है।"

जब लोगों ने यह सुना, तो वे बहुत भयभीत हो गए और सुबह एक बड़ा उपहार लेकर भगवान बुद्ध के पास बैठ गए और उन्हें चीख-पुकार के बारे में बताया। उन्होंने पेटिस का श्लोक दोहराया और बताया कि वे लोग कैसे रहते थे।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> पेटवत्थु >> गिल्ड लीडर के बेटे

पिछला <<<<------------------------ 4.15 --------------------------->>>> अगला

50. गिल्ड-लीडर के बेटों की कहानी (4.15)

भगवान बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन मठ में निवास कर रहे थे।

उस समय कोसल के राजा पसेनादि भव्य वस्त्रों में अपने हाथी पर सवार होकर शहर में शक्ति और वैभव के साथ भ्रमण कर रहे थे, तभी उन्होंने एक भवन की ऊपरी मंजिल से एक अप्सरा को नीचे देखते हुए देखा। उनका हृदय मोहित हो गया क्योंकि उनका मन स्वभाव से चंचल और कठोर था। इसलिए उन्होंने अपने बगल में बैठे एक व्यक्ति को संकेत दिया। (लोहकुंभी जातक 314 का लिंक भी देखें)

लिंक: लोहाकुंभी-जातक

लेकिन इस अंतर के साथ।

वह व्यक्ति वास्तव में सूर्यास्त से पहले ही यहाँ पहुँच गया था, लेकिन नगर द्वार बंद था। इसलिए उसने नगर द्वार के खंभे पर लाल मिट्टी और नीले कमल बाँध दिए जो वह लाया था और जेतवन चला गया। अब जब राजा विश्राम कर रहे थे, तो उन्होंने मध्य पहरे में ये चार अक्षर सुने: "सा, ना, दु और सो" ज़ोर से और पीड़ादायक ढंग से उच्चारित

राजा अत्यंत भयभीत हो गया और भोर होते ही उसने अपने पुरोहित को सारी घटना बताई। पुरोहित लाभ की आशा में बोला, “महाराज, हाय! एक बड़ी विपत्ति आ पड़ी है; चार प्रकार के पशुओं/पक्षियों का पूर्ण यज्ञ कीजिए।” राजा ने ऐसा ही करने का आदेश दिया।

जब रानी मल्लिका ने यह सुना, तो उसने राजा से कहा, “हे महाराज, एक ब्राह्मण की बात सुनकर आप इतने प्राणियों को पीड़ा पहुँचाने और उनका वध करने का ऐसा कार्य क्यों करना चाहते हैं? अब आपको ज्ञान और आचरण में अतुलनीय भगवान बुद्ध से परामर्श लेना चाहिए; और जैसा वे समझाएँगे, वैसा ही आपको करना चाहिए।” तब राजा गुरु (बुद्ध) के पास गया और उन्हें सारी बात बताई। भगवान बुद्ध ने कहा, “हे महाराज, आपको इस कारण कोई खतरा नहीं है,” और उन्होंने शुरू से ही सारी बात लोहकुंभी नरक में पुनर्जन्म लेने वाले मनुष्यों की पुकार के रूप में सुनाई। फिर उन्होंने उन्हें वे श्लोक पूरे-पूरे सुनाए जो उन्होंने बोलना शुरू किए थे।

1. साठ हजार वर्षों तक नरक में यातना भोगने वालों का अंत कब होगा?

2. ना (नत्थी - कोई अंत नहीं है) "कोई अंत नहीं है। अंत कब आएगा? कोई अंत दिखाई नहीं देता। इसलिए, महोदय, आपने और मैंने वास्तव में गलती की है।"

3. दुजीवितम (दुजीवन-दुखद जीवन) "हमने एक दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत किया, क्योंकि हमने अपने पास मौजूद वस्तुओं का दान नहीं किया। हमारे पास जो कुछ देने को था, हमने उसका दान तो किया, लेकिन अपने लिए कोई आश्रय नहीं बनाया।"

4. सोहम (मैं वास्तव में) "निस्संदेह, जब मैं यहाँ से चला जाऊँगा और एक मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लूँगा, तो मैं उदार, नैतिक रूप से श्रेष्ठ और बहुत अच्छे काम करने वाला होऊँगा।"

पिछला <<<<------------------------ 4.16(समाप्त)

51. साठ हजार हथौड़ों की कहानी (4.16)

जब गुरु वेलुवाना मठ में रह रहे थे, तब उन्होंने यह कहानी सुनाई।

एक समय की बात है, बनारस नगर में एक लंगड़ा रहता था जो पत्थर फेंकने में माहिर था। (यह कहानी जातक 107: सालित्थिका-जातक में वर्णित है। इसका सार श्लोकों में दिया गया है।) एक दिन जब पूज्य वरिष्ठ भिक्षु महामोग्गलाना गिद्ध शिखर से नीचे आ रहे थे, तो उन्होंने उस लंगड़े को देखा और उससे पूछा:

1. "अब मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम पागलों की तरह इधर-उधर क्यों भाग रहे हो, जैसे कोई भटका हुआ हिरण? निःसंदेह यह एक बुरा काम था। तुम इसके बारे में क्या सोचते हो?"

पेटा ने जवाब दिया:

2. "हे पूज्यवर, मैं एक पेटा हूँ, यमलोक का एक नीच निवासी। मैंने पाप किया, इसलिए मैं यहाँ से पेटों के लोक में चला गया।"

3. "साठ हजार हथौड़े हर तरह से परिपूर्ण होकर मेरे सिर पर प्रहार करें और मेरी खोपड़ी को चीर दें।"

बुजुर्ग ने आगे कहा:

4. "अब शरीर, वचन या मन से क्या अन्याय हुआ? किस कर्म के फलस्वरूप तुम यहाँ से पादों के लोक में चले गए?"

5. "ताकि साठ हजार हथौड़े हर तरह से परिपूर्ण होकर तुम्हारे सिर पर प्रहार करें और तुम्हारी खोपड़ी को चीर दें।"

पेटा :

6. "अब मैंने सुनेत्ता को देखा, एक बुद्ध, जो सभी शक्तियों में परिपूर्ण थे, वे एक पेड़ की जड़ में बैठे थे, आत्ममग्न और किसी चीज से नहीं डरते थे

7. "मैंने उसे गुलेल से मारा और उसका सिर फोड़ दिया। उस कृत्य के कारण मुझे यह कष्ट भोगना पड़ेगा।"

8. "साठ हजार हथौड़े हर तरह से परिपूर्ण होकर मेरे सिर पर प्रहार करें और मेरी खोपड़ी को चीर दें।"

यह सुनकर बुजुर्ग ने समझाते हुए कहा:

9. "दुष्ट मनुष्य, धम्म के कारण ही साठ हजार हथौड़े तेरे सिर पर प्रहार करते हैं और तेरा सिर फोड़ देते हैं।"
धम्मपद श्लोक 71 - अहिपेटा वत्थु
विषय-सूची

1

1.1
डॉ म्या टिन संस्करणधम्मपद श्लोक 71 - अहिपेता वथु
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण

1.2.1उदाहरण
ना ही पापम कटम कम्ममसज्जु खीरमवा मुच्चति
धम्मपद श्लोक 71 - अहिपेटा वत्थु

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
दहन्तम बलर्नन्वेति
भस्मच्छन्नोव पावको।
श्लोक 71 : एक बुरा कर्म तुरंत फल नहीं देता, जैसे नया निकाला हुआ दूध तुरंत नहीं फटता; बल्कि यह मूर्ख का पीछा करता है, उसे राख से ढके हुए जलते हुए कोयले की तरह जलाता है
अहिपेटा (मानव सिर वाला सर्प जैसा भूत) की कहानी (1)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (71) का उच्चारण किया, जिसमें पेटा-भूत का उल्लेख है।

एक बार प्रधान शिष्य महा मोग्गलाना, थेरा लक्खाना के साथ राजगृह में भिक्षा मांगने गए थे। वहाँ उन्होंने कुछ देखा और मुस्कुराए, पर कुछ नहीं बोले। जब वे मठ लौट आए, तो थेरा महा मोग्गलाना ने थेरा लक्खाना को बताया कि वे इसलिए मुस्कुराए क्योंकि उन्होंने एक पेटा-भूत देखा था जिसका सिर मनुष्य का और शरीर साँप का था। बुद्ध ने तब कहा कि उन्होंने स्वयं उसी पेटा-भूत को बुद्धत्व प्राप्ति के दिन देखा था। बुद्ध ने यह भी बताया कि बहुत समय पहले एक पच्चेकबुद्ध थे, जिनका बहुत सम्मान होता था। उनके मठ जाने वाले लोगों को एक खेत से होकर गुजरना पड़ता था। खेत के मालिक को डर था कि मठ आने-जाने वाले लोगों की अधिकता से उसका खेत क्षतिग्रस्त हो जाएगा, इसलिए उसने खेत में आग लगा दी। परिणामस्वरूप, पच्चेकबुद्ध को कहीं और जाना पड़ा। पच्चेकबुद्ध के शिष्य, ज़मींदार से बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने पच्चेकबुद्ध को पीट-पीटकर मार डाला। अपनी मृत्यु के बाद उनका पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ। वर्तमान जीवन में वे कर्मों के शेष फल (पेत-भूत) भोग रहे थे।
अंत में, बुद्ध ने कहा, "बुरा कर्म तुरंत फल नहीं देता, लेकिन वह हमेशा बुरे कर्म करने वाले का पीछा करता है। बुरे कर्म के परिणामों से कोई बच नहीं सकता।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:
1. अहिपेटा = अहि + पेटा; अहि = सर्प + पेटा = पेटा-भूत, एक सदा भूखा रहने वाला प्रेत। इस उदाहरण में, एक ऐसा भूत जिसका सिर मनुष्य का और शरीर सर्प का है (संस्कृत/हिंदी में पेटा = प्रेत)।
नाग-भूत की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (71) का उच्चारण किया, जिसमें पेटा-भूत का उल्लेख है।

जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सर्प-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

उदाहरण
नाग-भूत की कहानी
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने नाग-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
नाग-भूत की कहानी
जेतवन मठ में निवास कराटे समय, बुद्ध ने नाग-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।एक दिन, जटाधारी हज़ार तपस्वियों के बीच, पूज्य लक्खना और पूज्य मोग्गलाना राजगृह में भिक्षा मांगने के इरादे से गिद्ध शिखर से उतरे। पूज्य मोग्गलाना ने एक नाग-भूत को देखकर मुस्कुराया। तब पूज्य लक्खना ने उनसे उनकी मुस्कान का कारण पूछते हुए कहा, “भाई, अभी यह प्रश्न पूछने का उचित समय नहीं है। बुद्ध के समक्ष उपस्थित होने पर ही मुझसे पूछिएगा।” राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद जब वे बुद्ध के समक्ष उपस्थित होकर बैठ गए, तब पूज्य लक्खाना ने पूज्य मोग्गलाना से पूछा, “भाई मोग्गलाना, जब आप गिद्ध शिखर से उतर रहे थे, तब आप मुस्कुराए थे; और जब मैंने आपसे आपकी मुस्कान का कारण पूछा, तो आपने कहा, 'बुद्ध के समक्ष आने तक प्रतीक्षा करें, फिर मुझसे पूछें।' अब मुझे इसका कारण बताइए।”
भिक्षु ने कहा, “भाई, मैं मुस्कुराया क्योंकि मैंने एक नाग-भूत देखा। वह कुछ इस तरह दिखता था: उसका सिर मनुष्य के सिर जैसा था और बाकी शरीर नाग जैसा। वह नाग-भूत कहलाता था। उसकी लंबाई पच्चीस मील थी। उसके सिर से ज्वालाएँ निकलकर उसकी पूंछ तक जाती थीं; उसकी पूंछ से भी ज्वालाएँ निकलकर उसके सिर तक जाती थीं। उसके सिर से निकलती आग की लपटें उसके शरीर के दोनों ओर फैलती थीं; उसके किनारों से निकलती आग की लपटें उसके शरीर पर उतरती थीं। कहते हैं कि दो भूत होते हैं जिनकी लंबाई पच्चीस मील होती है, बाकी की लंबाई तीन-चौथाई मील होती है। लेकिन इस नाग-भूत और इस कौवे-भूत की लंबाई पच्चीस मील थी।”

मोग्गलाना ने एक कौवे के भूत को देखा और उससे उसके पूर्व कर्मों के बारे में पूछा। भूत ने कहा, "अपने पिछले जन्म में मैंने पूजनीय लोगों के लिए रखे भोजन के तीन निवाले खा लिए थे। उस कुकर्म के फलस्वरूप, जब मेरी मृत्यु हुई, तो मुझे अविची नरक में कष्ट भोगना पड़ा और उसके बाद, क्योंकि मेरे बुरे कर्मों का फल अभी समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए मेरा पुनर्जन्म गिद्ध शिखर पर कौवे के भूत के रूप में हुआ। अब, अपने कर्मों के कारण, मैं यह कष्ट भोग रहा हूँ।"

नाग-भूत की कहानी भी सुनाई जाती थी। बनारस का एक निवासी सड़क के किनारे खेत जोत रहा था। जो लोग एकाकी बुद्ध के दर्शन करने उसके खेत से गुजरते थे, वे उसके खेत को रौंद देते थे। किसान ने उन्हें रोकने की कोशिश की, लेकिन वह उन्हें रोक नहीं पाया। अंत में, जब एकाकी बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए नगर में प्रवेश कर गए, तो किसान ने अपने खाने-पीने के सारे बर्तन तोड़ दिए और घास-फूस से बने अपने आश्रय में आग लगा दी। तब लोगों ने चिल्लाकर कहा, "इसे पकड़ो!" उन्होंने उसे मार डाला। उसका जन्म अविची नरक में हुआ और बाद में, गिद्ध शिखर पर नाग-भूत के रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ।

इस पर भिक्षु ने कहा, "मैं मुस्कुराया क्योंकि मैंने एक नाग-भूत देखा।" तुरंत बुद्ध उठे और मोग्गलाना के कथन की सत्यता की गवाही देते हुए कहा, "भिक्षुओं, मोग्गलाना जो कहते हैं वह सत्य है। मैंने स्वयं इस भूत को उस दिन देखा था जिस दिन मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ था। परन्तु दूसरों पर दया करते हुए मैंने यह नहीं कहा, 'जो मेरी बात पर विश्वास नहीं करेंगे, उनका यही हश्र होगा।'"

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 71)

खिरं इव कटं पापं कम्मं सज्जु न हि मुक्कति
भस्माच्चन्नो पावको इव दहं तं बलं अन्वेति

khīraṃ iva : दूध की तरह; kataṃ pāpaṃ kammaṃ [kamma]: किए गए बुरे कर्म; sajju : निकालते ही तुरंत; na hi muccati : निश्चित रूप से नहीं फटता; bhasmacchanno pāvako iva : राख से ढकी आग की चिंगारियों की तरह; ḍahaṃ [ḍaha]: जलता हुआ; taṃ bālaṃ [bāla]: वह बुरा करने वाला; anveti : पीछा करता है

जब कोई अज्ञानी व्यक्ति पाप करता है, तो उसका बुरा परिणाम तुरंत नहीं निकलता। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे गाय के थन से निकाला गया ताजा दूध तुरंत नहीं फटता। किया गया पाप राख से ढकी चिंगारियों की तरह छिपा रहता है और पापी का पीछा करता रहता है और उसे जलाता रहता है।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 71)

दूध निकालते ही तुरंत नहीं फटता । फटने से पहले उसे कुछ प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। पाप कर्म के साथ भी ऐसा ही होता है। इसके बुरे परिणाम बाद में ही दिखाई देने लगते हैं। क्योंकि यह प्रक्रिया लंबी होती है, इसलिए पापी को अपने कर्म का बुरा प्रभाव तुरंत दिखाई नहीं देता। इसी कारण वह भविष्य में होने वाले हानिकारक परिणामों को देखे बिना ही पाप करता है।

धम्मपद श्लोक 72 - सत्तिकुटपेटा वत्थु

1

डॉ म्या टिन संस्करणधम्मपद श्लोक 72 - सत्तिकुटपेटा वत्थु

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

1.2.1चित्रण

यवदेव अनत्थयानट्टम बलास्सा जायति

धम्मपद श्लोक 72 - सत्तिकुटपेटा वत्थु

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

हंति बलास्सा सुक्कमसम(1)
मुद्धमस्सा(2) विपतायम।

श्लोक 72 : मूर्ख का कौशल केवल उसे हानि पहुँचा सकता है; यह उसके पुण्य और उसकी बुद्धि को नष्ट कर देता है (शाब्दिक रूप से, यह उसका सिर काट देता है)।

1. सुक्कमसा: सुक्क + अंश: सुक्क का अर्थ है सफेद, उज्ज्वल, शुद्ध या अच्छा; अंश का अर्थ है अंश। टीका के अनुसार, सुक्कमसा का अर्थ है गुण।

---

2. मुद्धः सिर, शीर्ष, शिखर। टीका के अनुसार, इसका अर्थ ज्ञान है।

सत्तिकुतापेटा की कहानी (विशाल सिर वाले भूत पर गर्म हथौड़ों से प्रहार)

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने सत्तिकुतापेटा नामक एक पेटा-भूत के संदर्भ में इस पुस्तक के श्लोक (72) का उच्चारण किया।

मुख्य शिष्य महा मोग्गलाना ने थेरा लक्खाना के साथ भिक्षा मांगने के दौरान इस विशाल पेटा-भूत को देखा। इस संदर्भ में बुद्ध ने समझाया कि सत्तिकुतापेट अपने पिछले जन्मों में से एक में वस्तुओं पर पत्थर फेंकने में बहुत कुशल था। एक दिन उसने अपने गुरु से अपनी इस कुशलता को

आजमाने की अनुमति मांगी। उसके गुरु ने उसे गाय या मनुष्य पर पत्थर न फेंकने के लिए कहा, क्योंकि ऐसा करने पर उसे मालिक या रिश्तेदार को हर्जाना देना पड़ेगा, बल्कि किसी ऐसे व्यक्ति को निशाना बनाने के लिए कहा जिसका कोई मालिक या संरक्षक न हो।

पच्चेकबुद्ध को देखकर, बुद्धिहीन मूर्खों ने सोचा कि पच्चेकबुद्ध का कोई रिश्तेदार या संरक्षक न होने के कारण वे एक आदर्श निशाना होंगे। इसलिए उन्होंने भिक्षा मांगने निकले पच्चेकबुद्ध पर पत्थर फेंका। पत्थर एक कान से अंदर गया और दूसरे से निकल गया। पच्चेकबुद्ध मठ पहुँचते ही दम तोड़ गए। पत्थर फेंकने वाले को पच्चेकबुद्ध के शिष्यों ने मार डाला और उसका पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ। बाद में, उसका पुनर्जन्म एक पाद-भूत के रूप में हुआ और तब से वह अपने बुरे कर्मों के बुरे परिणामों (कर्म) की शेष अवधि भोग रहा है। पाद-भूत के रूप में उसके विशाल सिर पर लगातार गर्म हथौड़ों की चोट हो रही है।

अंत में, बुद्ध ने कहा, "मूर्ख के लिए उसका कौशल या ज्ञान किसी काम का नहीं है; यह केवल उसे नुकसान ही पहुंचा सकता है।"

तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

सठिकूत-पेटा की कहानी

Then the Buddha spoke in verse as follows:

---

2. मुद्ध: सिर, शीर्ष, शिखर। टीका के अनुसार, इसका अर्थ ज्ञान है।

चित्रण

The Story of Saṭṭhikūṭa-Peta

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सठिकूत नामक एक सर्प-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।

एक समय की बात है, बनारस में एक अपाहिज रहता था जो पत्थर फेंकने में माहिर था। वह शहर के द्वार पर एक बरगद के पेड़ के नीचे बैठकर पत्थर फेंकता और पेड़ के पत्ते तोड़ता था। शहर के लड़के उससे कहते, “हमारे लिए हाथी बना दो, हमारे लिए घोड़ा बना दो;” और वह उनके कहने पर हर जानवर बना देता। बदले में उन्हें उसे कठोर और नरम दोनों तरह का भोजन मिलता था। एक दिन, जब राजा मनोरंजन उद्यान जा रहे थे, तो वे इस स्थान पर आए। लड़के अपाहिज को बरगद की शाखाओं के बीच छोड़कर भाग गए। दोपहर हो चुकी थी जब राजा रुके और पेड़ की जड़ों के बीच चले गए, और उनका शरीर बरगद की छाया में लिपट गया।

“इसका क्या मतलब है?” उसने ऊपर देखते हुए कहा। हाथियों और घोड़ों की आकृतियों में तराशे हुए पत्तों को देखकर उसने पूछा, “यह किसका काम है?” जब उसे पता चला कि यह लंगड़े का काम है, तो उसने उसे बुलवाया। लंगड़े की सेवा से प्रसन्न होकर राजा ने उसे आठ गुना उपहार और शहर के उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में स्थित चार बड़े और सुंदर गाँव भेंट किए।

अब एक व्यक्ति ने उस अपंग व्यक्ति की सांसारिक समृद्धि को देखकर मन ही मन सोचा, “जन्मजात अपंग इस व्यक्ति ने इस कला के माध्यम से अपार समृद्धि प्राप्त कर ली है। मुझे भी यह कला सीखनी चाहिए।” और उसने सीख ली।

उस समय सुनेत्ता नामक एक एकांत बुद्ध नगर के निकट पत्तों और घास से बने एक आश्रम में निवास करते थे। जब उस व्यक्ति ने उन्हें भिक्षा मांगने के उद्देश्य से नगर के द्वार से प्रवेश करते देखा, तो उसने मन ही मन सोचा, “इस व्यक्ति का न तो माता है और न ही पिता। यदि मैं इसे मारूँ, तो मुझे कोई दंड नहीं भुगतना पड़ेगा; मैं अपनी कुशलता का परीक्षण करने के लिए इसे ही मारूँगा।” अतः उसने एकांत बुद्ध के दाहिने कान पर पत्थर का निशाना साधा और उसे फेंक दिया। पत्थर एकांत बुद्ध के दाहिने कान में प्रवेश कर बाएँ कान से निकल गया। एकांत बुद्ध को तीव्र पीड़ा हुई, वे भिक्षा मांगने में असमर्थ रहे और वायु में उड़ते हुए अपने पत्तों के आश्रम में लौटकर निर्वाण प्राप्त कर लिया।

लोगों ने कहा, “यह दुष्ट व्यक्ति कहता है कि उसने निजी बुद्ध को मारा है। इसे पकड़ो!” और तुरंत ही उन्होंने उसे पीट-पीटकर वहीं मार डाला। उसका पुनर्जन्म अविची नरक में हुआ। जब तक यह विशाल पृथ्वी एक मील ऊपर नहीं उठी, तब तक वह यातना भोगता रहा। इसके बाद, क्योंकि उसके बुरे कर्मों का फल अभी समाप्त नहीं हुआ था, उसका पुनर्जन्म गिद्ध शिखर पर एक हथौड़े के भूत के रूप में हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 72)

बलास्सा नात्तं अनत्थया यव एव जयति ,
बलास्सा मुद्धं विपातयं अस्सा सुक्कंसं हन्ति

बलास्सा : अज्ञानी द्वारा; नत्तं [नत्त]: क्या सीखा जाता है; अनत्थय याव एव : केवल उसकी हानि के लिए; जयति : (है) अनुकूल; बलास्सा : अज्ञानी व्यक्ति का; मुद्धं [मुद्धा]: सिर; विपतयं [विपतय]: कट जाता है; अस्सा सुक्कनसं [सुक्कांसा]: उसमें जो भी अच्छा है; हन्ति : नष्ट कर देता है

अज्ञानी व्यक्ति जो कुछ भी सीखता है, वह हानिदायक होता है। यह उसके स्वयं के पतन का कारण बनता है। गलत ज्ञान से सीखने वाले की क्षमता नष्ट हो जाती है और वह वास्तविक ज्ञान के मामले में निष्कलंक हो जाता है।

टीका और व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 72)

ñattaṃ : ज्ञान। यह श्लोक इस बात पर ज़ोर देता है कि मूर्ख व्यक्ति का ज्ञान भी उसके विनाश का कारण बनता है। ज्ञान के लिए अन्य गुणों की आवश्यकता होती है, जैसे कि उसका उपयोग करने की क्षमता ताकि स्वयं को और दूसरों को कोई हानि न हो। मूर्ख लोग भले ही कुछ कौशल प्राप्त कर लें, लेकिन उनमें उसका सही उपयोग करने की बुद्धि नहीं होती।

धम्मपद श्लोक 136 - अजगारपेटा वत्थु

1.1

डॉ म्या टिन संस्करणधम्मपद श्लोक 136 - अजगारपेटा वत्थु
1.2वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
1.2.1चित्रण
अथा पापनी कम्मनीकरम बलो ना बुझती
धम्मपद श्लोक 136 - अजगारपेटा वत्थु

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण
सेही कम्मेही दुम्मेधो
अग्गिदड्ढोव तपपति।
श्लोक 136 : मूर्ख बुरे कर्म करते समय उन्हें बुरा नहीं जानता; परन्तु वह मूर्ख अपने बुरे कर्मों के फल से उसी प्रकार भोगता है जैसे आग से जलने वाला
पायथन पेटा की कहानी (लंबे समय तक जलते शरीर वाला पायथन जैसा भूत)

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (136) का उच्चारण अजगर पेटा (1) के संदर्भ में किया।

एक बार, जब थेरा महा मोग्गलाना, थेरा लखना के साथ गिज्जकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, तो उन्होंने एक अजगर पेटा देखा और मुस्कुराए, लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा। जब वे जेतवन मठ लौट आए, तो थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध की उपस्थिति में लखना को उस अजगर पेटा के बारे में बताया, जिसका लंबा शरीर आग की लपटों में जल रहा था। बुद्ध ने यह भी कहा कि उन्होंने स्वयं भी बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उस अजगर पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करके वे बुद्ध के साथ घोर अन्याय करेंगे। अतः इन प्राणियों के प्रति करुणावश बुद्ध मौन रहे। फिर उन्होंने आगे कहा, "अब जब मोग्गलाना गवाह हैं, तो मैं आपको इस अजगर पेटा के बारे में बताता हूँ। यह पेटा कश्यप बुद्ध (पूर्व युग के बुद्ध) के समय का चोर था। एक चोर और क्रूर हृदय वाले व्यक्ति के रूप में, उसने एक धनी व्यक्ति के घर में सात बार आग लगाई थी। और इतने से संतुष्ट न होकर, उसने उसी धनी व्यक्ति द्वारा कश्यप बुद्ध को दान किए गए सुगंधित हॉल में भी आग लगा दी, जब कश्यप बुद्ध भिक्षा मांगने गए हुए थे। इन बुरे कर्मों के फलस्वरूप उसने निरय (नरक) में लंबे समय तक कष्ट भोगा। अब, पेटा के रूप में अपने कष्टों को भोगते हुए, उसके शरीर पर ऊपर-नीचे उठती हुई लपटों की चिंगारियों से उसे जलाया जा रहा है। भिक्षुओं, मूर्ख लोग बुरे कर्म करते समय यह नहीं जानते कि वे बुरे हैं; परन्तु वे बुरे परिणामों से बच नहीं सकते।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:
(1) पेटा: हमेशा भूखी रहने वाली आत्मा या भूत (संस्कृत/हिन्दी में प्रीटा)।
बोआ कंस्ट्रिक्टर पेटा-घोस्ट की कहानी

जेतवन मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (136) का उच्चारण अजगर पेटा (1) के संदर्भ में किया।

---

(1) peta: an always hungry spirit or ghost(Preta in Sanskrit/Hindi).

चित्रण
The Story of the Boa Constrictor Peta-Ghost
जेतवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने बोआ कंस्ट्रिक्टर पेटा-भूत के संदर्भ में यह श्लोक कहा था।
एक समय की बात है, पूज्य मोग्गलाना, पूज्य लक्खना के साथ गिद्ध शिखर से नीचे उतर रहे थे, तभी उन्हें अलौकिक दृष्टि से एक पच्चीस मील लंबा, नाग के रूप में एक प्रेत दिखाई दिया। उसके सिर से अग्नि की लपटें निकलकर उसके अंगों पर गिर रही थीं; उसके दोनों ओर से अग्नि की लपटें निकलकर उसके मध्य भाग पर गिर रही थीं। पूज्य मोग्गलाना ने उस प्रेत को देखकर मुस्कुरा दिया। जब पूज्य लक्खना ने उनसे पूछा कि वे क्यों मुस्कुरा रहे हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया, "भाई, अभी इस प्रश्न का उत्तर देने का उचित समय नहीं है; जब हम बुद्ध के समक्ष उपस्थित हों, तब मुझसे पूछिएगा।"
इसलिए, जब पूज्य मोग्गलाना राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद बुद्ध के समक्ष आए, तो पूज्य लखन ने अपना प्रश्न दोहराया। पूज्य मोग्गलाना ने उत्तर दिया, "भाई, मैंने उस स्थान पर एक भूत देखा, जिसका रूप ऐसा था। उसे देखकर मैंने मन ही मन सोचा, 'ऐसा भूत मैंने पहले कभी नहीं देखा।' इसीलिए मैं मुस्कुराया।" तब बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, मेरे शिष्यों के पास आंखें हैं और वे उनका उपयोग करते हैं।" उन्होंने पूज्य मोग्गलाना के कथन की पुष्टि करते हुए आगे कहा, "मैंने उस भूत को ज्ञान के सिंहासन पर बैठे हुए देखा था। लेकिन मेरे मन में यह विचार आया कि 'यदि कोई मेरी बात पर विश्वास न करे, तो यह उनके लिए हानिकारक हो सकता है।' इसलिए मैंने इस बारे में कुछ नहीं कहा। लेकिन अब जब मोग्गलाना साक्षी हैं, तो मैं

यह बात कहता हूँ।” जब उन्होंने भिक्षुओं के अनुरोध के जवाब में इस प्रकार बात की, तो उन्होंने बताया कि भूत ने अपने पिछले जन्म में क्या किया था।

कथा के अनुसार, बुद्ध कश्यप के युग में, सुमंगला नामक एक कोषाध्यक्ष ने बीस उसभा (फ़दम) की दूरी तक सोने की ईंटें बिछाईं, उतनी ही राशि का खजाना एक मठ के निर्माण में खर्च किया और उतनी ही राशि का खजाना मठ के उद्घाटन के उपलक्ष्य में एक उत्सव के आयोजन में लगाया। एक दिन, सुबह-सुबह, जब वह बुद्ध को प्रणाम करने जा रहा था, तो उसने नगर के द्वार पर स्थित एक विश्रामगृह में एक चोर को छिपा हुआ देखा, जिसके पैर कीचड़ से सने थे और उसने अपना वस्त्र सिर पर ओढ़ा हुआ था। कोषाध्यक्ष ने मन ही मन सोचा, "कीचड़ से सने पैरों वाला यह आदमी अवश्य ही कोई रात में छुपकर घूमने वाला चोर होगा।" चोर ने सोचा, "कोई बात नहीं, मुझे तुमसे बदला लेने का तरीका पता है।" कोषाध्यक्ष से द्वेष रखते हुए, उसने उसके खेत को सात बार जलाया, उसके गौशाला में सात बार पशुओं के पैर काटे और उसके घर को सात बार जलाया।

लेकिन इन सब के बावजूद, वह कोषाध्यक्ष के प्रति अपनी दुश्मनी शांत नहीं कर सका। इसलिए उसने कोषाध्यक्ष के सेवक से मित्रता की और उससे पूछा, “तुम्हारे स्वामी, कोषाध्यक्ष को सबसे अधिक क्या प्रिय है?” सेवक ने उत्तर दिया, “उन्हें सुगंधित कक्ष से अधिक कुछ भी प्रिय नहीं है।” चोर ने सोचा, “ठीक है, मैं सुगंधित कक्ष को जला दूंगा और इस प्रकार अपनी दुश्मनी शांत कर लूंगा।” तदनुसार, जब बुद्ध भिक्षा मांगने के लिए नगर में आए, तो उसने खाने-पीने के सभी बर्तन तोड़ दिए और सुगंधित कक्ष में आग लगा दी। जब कोषाध्यक्ष ने “सुगंधित कक्ष में आग लग गई है!” की आवाज सुनी, तो वह तुरंत वहां पहुंचा, लेकिन उसके पहुंचने से पहले ही वह कक्ष जलकर राख हो चुका था। कोषाध्यक्ष ने मठ का पुनर्निर्माण किया और चोर को उसके अपराधों के लिए क्षमा कर दिया। चोर का पुनर्जन्म पेटा-भूत के रूप में हुआ।

व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 136)

अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुझति
दुम्मेधो सेहि कम्मेहि अग्गिदोदो इव तप्पति

अथा : इसके अलावा; पापानि कम्मानि : बुरे कर्म; करं [करा]: करना; बालो : अज्ञानी व्यक्ति; नो बुझति : अनभिज्ञ; दुम्मेधो [दुम्मेधा]: नासमझ व्यक्ति; सेहि कम्मेहि : अपने बुरे कर्मों के कारण; अग्गिदद्दो इव : मानो आग से जल गया हो; तपपति : जलता है (पीड़ित होता है)

मूर्ख, जो बुराई के प्रतिफल से अनभिज्ञ होते हैं, बुरे कर्मों से स्वयं को ही हानि पहुँचाते हैं। जैसे मक्खियाँ आग में कूदकर जल जाती हैं, वैसे ही वे स्वयं अपने जल्लाद बन जाते हैं।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 136)

दुम्मेधो : वह व्यक्ति जिसमें बुद्धि का अभाव हो। यहाँ बुद्धि से तात्पर्य सही और गलत का विवेक करने की क्षमता से है।

धम्मपद श्लोक 281 - सुकरपेटा वत्थु

1.1

डॉ म्या टिन संस्करणधम्मपद श्लोक 281 - सुकरपेटा वथु

1.2वेन. वेरागोडा सारदा महाथेरो संस्करण

1.2.1उदाहरण

Vacanurakkhi manasa susamvutokayena ca nakusalam kayira

धम्मपद श्लोक 281 - सुकरपेटा वत्थु

वेन. वेरागोडा सारदा महा थेरो संस्करण

इस तेओन कम्मपथे विसाधये में
आराधाये मग्गा' मिसिप्पवेदितम्।

श्लोक 281 : वाणी में सावधान रहना चाहिए, मन में संयमित रहना चाहिए, और शारीरिक रूप से भी कोई बुराई नहीं करनी चाहिए। इन तीनों कर्मों को शुद्ध करना चाहिए और बुद्धों द्वारा बताए गए अष्टांगिक पथ का अभ्यास करना चाहिए

एक सूअर-पेटा (मानव शरीर वाला सूअर का सिर वाला भूत) की कहानी

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (281) का उच्चारण किया, जिसमें सूअर-पेटा का उल्लेख था।

एक बार थेरा महा मोग्गलाना, थेरा लखना के साथ गिज्जकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, तभी उन्होंने एक दयनीय, सदा भूखे पेटा को देखा, जिसका सिर सूअर का और शरीर मनुष्य का था। पेटा को देखकर थेरा महा मोग्गलाना मुस्कुराए, पर कुछ नहीं बोले। मठ में लौटकर, थेरा महा मोग्गलाना ने बुद्ध के समक्ष उस सूअर-पेटा के बारे में बताया, जिसके मुंह में कीड़े भरे हुए थे। बुद्ध ने भी कहा कि उन्होंने स्वयं बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उस पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करना उनके साथ अन्याय होगा। फिर बुद्ध ने उस सूअर-पेटा की कहानी सुनाई।

वेलुवन मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने इस ग्रंथ के श्लोक (281) का उच्चारण किया, जिसमें एक सूअर-पेटा का उल्लेख है।
एक बार थेरा महा मोगलाना, थेरा लाखन के साथ गिज्जुकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, उसी समय उन्होंने एक बार कहा, सदा साबला पेटा को देखा, जिसका सिर सूअर का और शरीर मनुष्य का था। पेटा को देखकर थेरा महा मोगलाना मुस्कुराए, लेकिन कुछ नहीं बोला। मठ में वापस ज्ञान, थेरा महा मोगलाना ने बुद्ध की उपस्थिति में, उस सुअर-पेटा के बारे में बताया, जिसके मुंह में कीड़े लगे हुए थे। बुद्ध ने यह भी कहा कि उन्होंने स्वयं बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करना उनके साथ अन्याय होगा। फिर बुद्ध ने सूअर-पेटा की कहानी सुनी।
वेलुवन गणित में निवास कराटे समय, बुद्ध ने इस ग्रंथ के श्लोक (281) का उच्चारन किया, जिसमें एक सूरज-पीटा का उल्लेख है।
एक बार तेरा महा मोगलाना, तेरा लाखन के साथ गिज्जाकुटा पर्वत से नीचे आ रहे थे, तभी उन्हें एक दयानी, सदा भूखे पेटा को देखा, जिसका सिर सूरज का और शरीर इंसान का था। पेटा को देखकर तेरा महा मोगलाना मुस्कुराए, लेकिन कुछ नहीं बोले। गणित में वापस आकर, तेरा महा मोगलाना ने बुद्ध की उपस्थति में, हमें सूरज-पेटा के बारे में बताया, जिसके मुंह में कीड़े भरे हुए थे। बुद्ध ने यह भी कहा कि उन्होंने स्वयं बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद हमें पेटा को देखा था, लेकिन उन्हें इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करना उनके साथ अन्य होगा। फिर बुद्ध ने सूरज-पीटा की कहानियाँ सुनीं।

कश्यप बुद्ध के समय में, यह विशेष पेटा एक भिक्षु था जो अक्सर धम्म का उपदेश देता था। एक बार वह एक मठ में आया जहाँ दो भिक्षु साथ रह रहे थे। कुछ समय उनके साथ रहने के बाद, उसने पाया कि उसका काम अच्छा चल रहा है क्योंकि लोगों को उसके उपदेश पसंद आ रहे थे। तब उसके मन में विचार आया कि यदि वह अन्य दो भिक्षुओं को मठ छोड़कर चला जाए और पूरा मठ अपने लिए खाली कर ले तो और भी अच्छा होगा। इस प्रकार, उसने एक भिक्षु को दूसरे के विरुद्ध भड़काने का प्रयास किया। दोनों भिक्षुओं में झगड़ा हुआ और वे अलग-अलग दिशाओं में मठ छोड़कर चले गए। इस बुरे कर्म के कारण, उस भिक्षु का पुनर्जन्म अविचि निरय (नरक) में हुआ और वह अपने व्यथा के शेष भाग को एक सूअर-पेटा के रूप में भुगत रहा था जिसके मुँह में कीड़े भरे हुए थे। तब बुद्ध ने उपदेश दिया, "भिक्षु को विचार, वचन और कर्म में शांत और संयमित रहना चाहिए।"
तब बुद्ध ने पद्य में इस प्रकार कहा:

वेलुवाना मठ में निवास करते हुए, बुद्ध ने इस पुस्तक के श्लोक (281) का उच्चारण किया, जिसमें सूअर-पेटा का उल्लेख था।

उदाहरण
एक सूअर की आत्मा की कहानी
वेलुवाना मठ में निवास करते समय, बुद्ध ने सूअर की आत्मा के संदर्भ में इस श्लोक का उच्चारण किया था।
एक बार पूज्य महा मोग्गलाना, पूज्य लखन के साथ गिज्झकूट पर्वत से नीचे आ रहे थे, तभी उन्होंने एक दयनीय, सदा भूखे रहने वाले जीव (पेटा) को देखा, जिसका सिर सूअर का और शरीर मनुष्य का था। पेटा को देखकर पूज्य महा मोग्गलाना मुस्कुराए, लेकिन कुछ नहीं बोले। मठ में लौटकर, पूज्य महा मोग्गलाना ने बुद्ध के समक्ष उस पेटा के बारे में बताया , जिसके मुंह में कीड़े भरे हुए थे। बुद्ध ने भी कहा कि उन्होंने स्वयं बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद उस पेटा को देखा था, लेकिन उन्होंने इसके बारे में कुछ नहीं कहा क्योंकि लोग उन पर विश्वास नहीं करेंगे और ऐसा करना उनके साथ अन्याय होगा। फिर बुद्ध ने उस पेटा की कहानी सुनाई ।
कश्यप बुद्ध के समय में, यह विशेष पेटा एक भिक्षु था जो अक्सर धम्म का उपदेश देता था। एक बार वह एक मठ में आया जहाँ दो भिक्षु साथ रह रहे थे। कुछ समय उनके साथ रहने के बाद, उसने पाया कि उसका काम बहुत अच्छा चल रहा था क्योंकि लोगों को उसके उपदेश पसंद आ रहे थे। तब उसके मन में विचार आया कि यदि वह अन्य दो भिक्षुओं को वहाँ से भगा दे और मठ पर उसका पूरा अधिकार हो जाए तो और भी अच्छा होगा। इस प्रकार, उसने एक को दूसरे के विरुद्ध भड़काने का प्रयास किया। दोनों भिक्षुओं में झगड़ा हुआ और वे अलग-अलग दिशाओं में मठ छोड़कर चले गए। इस बुरे कर्म के कारण, उस भिक्षु का पुनर्जन्म अविची निरय में हुआ और वह अपने व्यथा के शेष भाग को सूअर-पेटा के रूप में भुगत रहा था, जिसके मुँह में कीड़े भरे हुए थे। तब बुद्ध ने उपदेश दिया, "भिक्षु को मन, वचन और कर्म में शांत और संयमित रहना चाहिए।"
व्याख्यात्मक अनुवाद (श्लोक 281)
वचनुरक्खी मनसा सुसानवुतो , कायेना च
अकुसलं न कयिरा एते तयो कम्मपथे
विशोधये इशिप्पवेदितं मग्गं अराध्ये

वाचनुरक्खी : वाणी में सजग; मनसा : मन में; सुसंवुतो [सुसंवुत]: संयमित; कायेन च : शरीर से भी; अकुसल [अकुसल]: बुरे कर्म; न कायिरा : नहीं किए जाते; एते तयो कम्मपथे : कर्म के इन तीन द्वारों का पालन करता है; विसोधये : शुद्ध; इसिप्पवेदित [इसिप्पवेदित]: ऋषियों द्वारा प्राप्त; मग्गा [मग्ग]: श्रेष्ठ अष्टमार्ग; आराधये : (वह) प्राप्त करेगा

यदि कोई व्यक्ति वाणी में सजग रहे, मन में संयम रखे और शारीरिक रूप से पाप करने से परहेज करे, तो वह निश्चित रूप से ऋषियों द्वारा प्राप्त किए गए श्रेष्ठ अष्टमार्ग को प्राप्त कर लेगा।

टीका एवं व्याख्यात्मक सामग्री (श्लोक 281)

तायो कम्मपथे : कर्म के तीन द्वार — वाणी, मन और शरीर। कर्म के संबंध में विचार अक्सर विवादास्पद होते हैं। यद्यपि हम अपने कर्म के पूर्णतः स्वामी या दास नहीं हैं, फिर भी यह स्पष्ट है कि कर्म के फल पर बाहरी परिस्थितियों, परिवेश, व्यक्तित्व, व्यक्तिगत प्रयास आदि का कुछ हद तक प्रभाव पड़ता है। कर्म का यही सिद्धांत बौद्ध को सांत्वना, आशा, भरोसा और नैतिक साहस प्रदान करता है। जब अप्रत्याशित घटनाएँ घटित होती हैं, कठिनाइयाँ, असफलताएँ और दुर्भाग्य उसके सामने आते हैं, तो बौद्ध को यह अहसास होता है कि वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है और अतीत के ऋण को चुका रहा है। कर्म पर सब कुछ छोड़ देने के बजाय, वह खरपतवारों को उखाड़ने और उनके स्थान पर उपयोगी बीज बोने का भरसक प्रयास करता है, क्योंकि भविष्य उसके हाथों में है। कर्म में विश्वास रखने वाला व्यक्ति सबसे भ्रष्ट व्यक्ति की भी निंदा नहीं करता, क्योंकि उनके पास किसी भी क्षण स्वयं को सुधारने का अवसर होता है। दुखदायी अवस्थाओं में कष्ट भोगने के लिए बाध्य होते हुए भी, उन्हें शाश्वत शांति की आशा रहती है। अपने कर्मों से वे स्वयं अपना नरक बनाते हैं, और अपने कर्मों से ही अपना स्वर्ग भी बना सकते हैं। कर्म के नियम में पूर्णतः विश्वास रखने वाला बौद्ध मुक्ति के लिए किसी दूसरे से प्रार्थना नहीं करता, बल्कि अपने आप पर ही विश्वास रखता है। किसी भी प्रकार का आत्मसमर्पण करने या किसी अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करने के बजाय, वह अपनी इच्छाशक्ति पर भरोसा करता है और सभी के कल्याण और सुख के लिए निरंतर कार्य करता है।

कर्म में विश्वास, "उसके प्रयासों को सार्थकता प्रदान करता है और उसके उत्साह को बढ़ाता है" क्योंकि यह व्यक्तिगत जिम्मेदारी सिखाता है। एक साधारण बौद्ध के लिए कर्म एक निवारक का काम करता है, जबकि एक बुद्धिजीवी के लिए यह अच्छे कर्म करने के लिए एक प्रेरणा का काम करता है। कर्म का यह नियम दुख की समस्या, कुछ धर्मों में वर्णित भाग्य और नियति के रहस्य और सबसे बढ़कर मानव जाति की असमानता की व्याख्या करता है। हम अपने भाग्य के निर्माता स्वयं हैं। हम अपने सृजनकर्ता स्वयं हैं। हम अपने विनाशक स्वयं हैं। हम अपने स्वर्ग स्वयं बनाते हैं। हम अपने नरक स्वयं बनाते हैं। हम जो सोचते हैं, बोलते हैं और करते हैं, वह हमारा अपना हो जाता है। ये विचार, शब्द और कर्म ही कर्म का नाम धारण करते हैं और जन्म-जन्मांतर तक हमारे संसार के भ्रमण में हमारा उत्थान और पतन करते रहते हैं ।

बुद्ध ने कहा:

मनुष्य के गुण और उसके द्वारा यहाँ किए गए पाप:
यही वह चीज़ है जिसे वह स्वीकार करता है, जो उसे यहाँ से ले जाती है
वह परछाई की तरह उसका पीछा करता है।
इसलिए उसे भविष्य में जीवनयापन के लिए अच्छी बचत कर लेनी चाहिए।
किसी अन्य भविष्य की दुनिया में अवश्य ही एक मंच होगा।
अच्छे प्राणियों को उनके सद्गुणों का फल अवश्य मिलेगा।

SN2-संस्करण 2

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> संयुक्त निकाय >> एसएन2-निदानवग्गा-वेर2

SN2-The Book of Causation

(यह संयुत्त निकाय [संबद्ध प्रवचन] का दूसरा खंड है। यह भिक्खु बोधि का संशोधित संस्करण, द्वितीय संस्करण है।)

इस खंड में भगवान बुद्ध जन्म से मृत्यु और फिर पुनर्जन्म के जीवन चक्र के कारण-कार्य का वर्णन करते हैं। वे यहाँ पहले दो सूत्रों में कारण-कार्य को प्रतीत्यसमुत्पाद (आश्रित उत्पत्ति) के रूप में वर्णित करते हैं और फिर शेष सूत्रों में इसका विस्तृत वर्णन करते हैं। आश्रित उत्पत्ति का विचार यह है कि कैसे एक चीज दूसरी चीज को जन्म देती है, जिससे पुनर्जन्म का अंतहीन चक्र चलता रहता है। लेकिन ध्यान विधि का उपयोग करके कोई भी व्यक्ति समाधि/ध्यान/ध्यान/ज़ेन की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर सकता है और फिर आश्रित उत्पत्ति का अंत अनुभव कर सकता है, जो मोक्ष/मुक्ति/निर्वाण/मोक्ष का मार्ग है।

महत्वपूर्ण सूत्र:

37: कुछ भी तुम्हारा नहीं है, शरीर भी नहीं; यह केवल पुराना कर्म है।

41: नरक और पुनर्जन्म के अन्य बुरे गंतव्यों से कैसे बचें और ज्ञानोदय की ओर सहज मार्ग कैसे सुनिश्चित करें।

63, 64: खाद्य पदार्थ, स्पर्श, चेतना और विज्ञान जैसे सांसारिक खतरे, अपने पुत्र का मांस खाने, खुले घाव, कोयले की खान और भाले से दंडित डाकू के समान हैं।

65: बुद्ध का मार्ग प्राचीन मुक्ति का मार्ग है। 66: बुद्ध
का मार्ग आंतरिक अन्वेषण का मार्ग है। 67:
मन, शरीर और चेतना एक दूसरे के सहारे टिके रहते हैं, जैसे सरकंडों के दो ढेर एक दूसरे के सहारे खड़े हों।

95: बुद्ध द्वारा समाधि/ध्यान अवस्थाओं के संदर्भ में सात दिव्य तत्वों की व्याख्या की गई है।

100: सफलता के लिए ऊर्जा को जागृत रखें।

124-127: ब्रह्मांड का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है और यह युगों-युगों तक फैलता और सिकुड़ता रहता है।
128-131: एक युग अत्यंत लंबा होता है (विस्तार और फिर सिकुड़न का चक्र) और ऐसे अनेक युग घटित हो चुके हैं।
133: एक युग में किसी व्यक्ति के इतने पुनर्जन्म होते हैं कि उसकी हड्डियों से पर्वत बन सकता है।
137-142: पुनर्जन्म सत्य है; किसी व्यक्ति के इतने पुनर्जन्म हुए हैं कि सभी प्राणी एक दूसरे के माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री रहे हैं।
152: महत्वपूर्ण - 9 समाधि/ध्यान/सम्मोहन अवस्थाओं और 6 दिव्य शक्तियों के ज्ञान (अभिन) का वर्णन।
157-187: खतरे लाभ, सम्मान और प्रशंसा हैं
188-201: पुत्र राहुल को प्रवचन
202-222: अध्याय 8 से उन लोगों का वर्णन है जो अपने पिछले बुरे कर्मों के कारण व्यथा भोगते हुए प्रेतों या भूतों (संस्कृत प्रेत) के रूप में पुनर्जन्म लेते हैं।

नोट: पाली शब्दों में 'c' का उच्चारण 'ch' की तरह होता है, जैसे 'China' शब्द में।

<<<< Previous(SN1) Next(SN3) >>>>

विषय-सूची

1.1.3.1030. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.1.4(iv) कलारा खटिया धारा (सं. कलारा-क्षत्रिय)
1.1.4.131. जो कुछ हुआ है (भूत)
1.1.4.232. कालरा
1.1.4.333. ज्ञान के मामले (1) (नानवत्थु संस्कृत ज्ञान-वस्तु)
1.1.4.434. ज्ञान के मामले (2) (नानवत्थु2)
1.1.4.535. अज्ञान को कारण मानकर (1) (अविज्जपच्चय 1 सं. अविद्या-प्रत्यय)
1.1.4.636. कारण के रूप में अज्ञान के साथ (2) (अविज्जापच्चया2 सं. अविद्या-प्रत्यय)
1.1.4.737. तुम्हारा नहीं (नटुम्ह)
1.1.4.838. जागरूकता के साथ (1) (चेतना1)
1.1.4.939. जागरूकता के साथ (2) (चेतना2)
1.1.4.1040. जागरूकता के साथ (3) (चेतना3)
1.1.5(v) गृहस्थ वर्ग (गृहपति वर्ग)
1.1.5.141. पाँच भयानक शत्रुताएँ (1) (पंचवरभय1)
1.1.5.242. पाँच भयानक शत्रुताएँ (2) (पंचावेरभय2)
1.1.5.343. दुःख
1.1.5.444. लोक
1.1.5.545. नाटिका में
1.1.5.646. A Certain Brahmin (Annatarabrahmana)
1.1.5.747. जानूसोनी
1.1.5.848. एक लोक-अस्तित्ववादी (लोकायटिका)
1.1.5.949. महान शिष्य (1) (आर्यसवक संस्कृत आर्य-श्रवक)
1.1.5.1050 महान शिष्य (2)
1.1.6(vi) धारा 133 (दुक्खावग्गो संस्कृत दुःख-वर्ग) के तहत पीड़ित होना
1.1.6.151. गहन जांच (परिविमांसा)
1.1.6.252. आसक्ति (उपादान)
1.1.6.353. बंधन (1) (संयोजन1)
1.1.6.454. बेड़ियाँ (2) (संयोजन2)
1.1.6.555. महान वृक्ष (1) (महारुक्खा1 संस्कृत महावृक्ष)
1.1.6.656. महान वृक्ष (2) (महारुक्खा2 संस्कृत महा-वृक्ष)
1.1.6.757. वृक्ष का पौधा (तरुणरुक्खा सं. तरूण-वृक्ष)
1.1.6.858. मन-और-शरीर रूप (नामरूप)
1.1.6.959. चेतना (विन्नान सं. विज्ञान)
1.1.6.1060. कारण (निदान)
1.1.7(vii) महावर्ग उप-अध्याय (महावर्ग)
1.1.7.161. अशिक्षित (1) (अश्रुताव्य संस्कृत)
1.1.7.262. अशिक्षित (2) (असुतव2 सं. अश्रुतव्य)
1.1.7.363. पुत्र का मांस रूपक (पुत्तममसुपमा सं. पुत्र-मान्स-उपमा)
1.1.7.464. यदि कामवासना विद्यमान हो (अथिराग संस्कृत अस्थि-राग)
1.1.7.565. नगर (नागरा)
1.1.7.666. अन्वेषण (सम्मसा)
1.1.7.767. नरकट के गट्ठे (नालाकलापी)
1.1.7.868. कोसंबी
1.1.7.969. द सर्ज (उपायंती)
1.1.7.1070. सुसीमा
1.1.8(viii) तपस्वी और ब्राह्मण (समनब्रह्मण)
1.1.8.171. वृद्धावस्था और मृत्यु (जरमरणा)
1.1.8.272. जन्म, आदि (जाति आदि)
1.1.9(ix) अंतर्निर्मित पुनरावृत्ति श्रृंखला (अंतरापेय्यलम) के साथ
1.1.9.173. एक शिक्षक (सत्थु)
1.2अध्याय 2: सफलता पर संबंधित प्रवचन (अभिसामयसाम्युत्त) {साम्युत्त-13}
1.2.174. नाखून (नखसिखा)

1.3.4.9122. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
1.3.4.10123. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
1.4अध्याय 4: बिना खोजे जा सकने वाले आरंभ के (अनामत्तग्गसम्युत) {सम्युत-15}
1.4.1(i) पहला उप-अध्याय (घास और लकड़ी)
1.4.1.1124. घास और लकड़ी (तिनकत्थ संस्कृत: तृण-कष्ठ)
1.4.1.2125. पृथ्वी (पथवी संस्कृत: पृथ्वी)
1.4.1.3126. आँसू (आशु संस्कृत: अश्रु)
1.4.1.4127. माँ का दूध (खीरा संस क्षीरा)
1.4.1.5128. पर्वत (पब्बत संस पर्वत)
1.4.1.6129. सरसों का बीज (सासपा)
1.4.1.7130. शिष्य (सावक संस्कृत श्रावक)
1.4.1.8131. गंगा नदी
1.4.1.9132. डंडा
1.4.1.10133. व्यक्ति (पुग्गला)
1.4.2(ii) दूसरा उप-अध्याय (दुर्भाग्यशाली)
1.4.2.1134. दुर्भाग्यशाली (दुग्गता संस्कृत: दुर्गति)
1.4.2.2135. सुखी (सुखी संस्कृत: सुखी)
1.4.2.3136. तीस भिक्षु (तिम्समत्ता)
1.4.2.4137-142. माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री (मातु, पितु, भतु, भगिनी, पुत्त, धितु)
1.4.2.5143. वेपुल्ला पर्वत (वेपुल्लापब्बत संस्कृत: वेपुल्ला-पर्वत)
1.5अध्याय 5: कस्सप (कस्सापससंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-16}
1.5.1144. संतोष (संतुष्ट संस्कृत: संतुष्ट)
1.5.2145. गलत काम से बेखौफ (अनोत्ताप्पी)
1.5.3146. चंद्रमा के समान (चंडुपमा, संस्कृत: चंद्र-उपमा)
1.5.4147. परिवारों का एक आगंतुक (कुलुपका)
1.5.5148. पुराना (जिन्ना सं. जीर्ण)
1.5.6149. निर्देश (1) (ओवादा1)
1.5.7150. निर्देश (2) (ओवाडा2)
1.5.8151. निर्देश (3) (ओवाडा3)
1.5.9152. ध्यान (स्वयं-अवशोषक समाधि) और दिव्य-शक्तियों का ज्ञान (ध्यान-अभि-ज्ञान)
1.5.10153. भिक्षुणियों का निवास (उपासया)
1.5.11154. वस्त्र (सीवारा)
1.5.12155. मृत्यु के बाद (परमरण)
1.5.13156. सच्चे धम्म का प्रतिरूप (सद्धम्मप्पतिरूपक संस्कृत: सत्-धर्मप्य-अतिरूप)
1.6अध्याय 6: लाभ और सम्मान पर संबंधित प्रवचन (लाभसक्करासाम्यत्त संस्कृत: लाभ-सत्कार-साम्यत्त) {साम्यत्त-17}
1.6.1(i) पहला उप-अध्याय (डरावना)
1.6.1.1157. भयानक (दारुना)
1.6.1.2158. हुक (बालिसा)
1.6.1.3159. कछुआ (कुम्मा)
1.6.1.4160. लंबे बालों वाली बकरी (दिघालोमिका)
1.6.1.5161. गोबर भृंग (मिल्हाका)
1.6.1.6162. वज्र (असानी)
1.6.1.7163. विषैला बाण (दिद्धा)
1.6.1.8164. सियार (सिंगला)
1.6.1.9165. आंधी (वेरम्भा)
1.6.1.10166. श्लोकों सहित सूत्र (सगतसुत्तम)
1.6.2(ii) दूसरा उप-अध्याय (कटोरा)
1.6.2.1167. स्वर्ण कटोरा (सुवन्नापति)
1.6.2.2168. चांदी का कटोरा (रुपियापति)
1.6.2.3169 (10) सुवन्नानिक्खा, आदि।
1.6.3(iii) तीसरा उप-अध्याय (एक महिला)

संयुत्त निकाय: द्वितीय. निदानावग्ग (कारण-कार्य का ग्रंथ)

नमो तस्य भगवतो, अराहतो, सम्मा-सम-बुद्धस्य

उस भगवतो (भगवान), दुष्ट को पराजित करने वाले (अराहतो),
सही (सम्मा) और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध (जागृत) को श्रद्धांजलि

अध्याय 1: कारण-कार्य पर संबंधित प्रवचन (निदानसंयुत्त) {संयुत्त-12}

(i) बुद्ध

1. आश्रित उत्पत्ति (पतीच्चसमुत्पाद संस्कृत: प्रतीत्य-समुत्पाद)
(पतीच्चसमुत्पाद का संक्षिप्त रूप)

मैंने (भगवान बुद्ध से) ऐसा सुना है, आनंद कहते हैं। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा,
"भिक्षुओं, मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद का उपदेश दूंगा। इसे ध्यान से सुनो और सचेत रहो (मानसिकरो), मैं आगे बोलता हूँ।" - "जी, आदरणीय महोदय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
आश्रित उत्पत्ति
"और हे भिक्षुओं, आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुत्पाद) क्या है? अज्ञान (अविज्ज संस्कृत: अविद्या)
के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) होता है;

स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना उत्पन्न होती है;
वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है;
तृष्णा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है;
आसक्ति के कारण अस्तित्व उत्पन्न होता है;
अस्तित्व के कारण पुनर्जन्म होता है;
पुनर्जन्म के कारण दुःख, वृद्धावस्था, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।
यही इस समस्त दुःख का मूल है। हे भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं।
स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना उत्पन्न होती है;
वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है;
तृष्णा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है;
आसक्ति के कारण अस्तित्व उत्पन्न होता है;
अस्तित्व के कारण पुनर्जन्म होता है;
पुनर्जन्म के कारण दुःख, वृद्धावस्था, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।
यही समस्त दुःख का मूल है। वह भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं।
निरोध
"परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और उसके समाप्त होने के साथ ही संस्कार (व्यवहार-आदत) का भी अंत हो जाता है;
संस्कार (व्यवहार-आदत) के समाप्त होने से चेतना का अंत हो जाता है;
चेतना के समाप्त होने से मन-शरीर का (नामरूप) अंत हो जाता है;
मन-शरीर के (नामरूप) समाप्त होने से छह इंद्रियों का अंत हो जाता है;
छह इंद्रियों के समाप्त होने से स्पर्श (संपर्क) का अंत हो जाता है;
स्पर्श (संपर्क) के समाप्त होने से वेदना का (संवेदना) अंत हो जाती है;
वेदना के समाप्त होने से तृष्णा (तन्हा संस्कृत) का अंत हो जाता है;
तृष्णा (तन्हा संस्कृत) के समाप्त होने से आसक्ति (उपादान संस्कृत) का अंत हो जाता है;
के समाप्त होने से आसक्ति का अंत (भावो);
भावो के अंत के साथ पुनर्जन्म का अंत;
पुनर्जन्म के अंत के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत। इस प्रकार इस संपूर्ण दुःख का अंत होता है।
निरोध
"परंतु अज्ञान के पूर्ण लुप्त होने और उसके समाप्त होने के साथ ही संस्कार (व्यवहार-आदत) का भी अंत हो जाता है;
संस्कार (व्यवहार-आदत) के साथ चेतना का अंत हो जाता है;
चेतना के समापत होने से मन-शरीर का (नामरूप) अंत हो जाता है;
आदमी-शरीर के (नामरूप) समापत होने से छह इंद्रियों का अंत हो जाता है;
छह इंद्रियों के संपर्क होने से स्पर्श (संपर्क) का अंत हो जाता है;
स्पर्श (संपर्क) के संपर्क होने से वेदना का (संवेदना) अंत हो जाता है;
वेदना के समापत होने से तृष्णा (तन्हा संस्कृत) का अंत हो जाता है;
तृष्णा (तन्हा संस्कृत) के समापत होने से (उपादान संस्कृत) का अंत हो जाता है;
के समापत होने से आसक्ति का अंत (भावो);

भावो के अंत के साथ पुनर्जन्म का अंत;
पुनर्जन्म के अंत के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु, दुख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत। इस प्रकार संपूर्ण दुख का अंत होता है।
भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। भिक्षु भगवान (बुद्ध) के इस कथन से प्रसन्न हुए।

नोट: (क) संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आधार, संस्कृत में संस्कार या कर्म संस्कार) की अवधारणा को समझने के लिए, इसे कंप्यूटिंग के क्षेत्र में कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क आधारित कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणाली में भारों के निर्धारण के रूप में समझा जा सकता है। साथ ही, प्रत्येक भार अनुभव/स्वैच्छिक क्रिया/निर्णय/प्रतिक्रिया द्वारा समर्थित होता है, जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता तंत्रिका नेटवर्क के प्रशिक्षण के लिए डेटा के समान है। बुद्ध ने अगले सूत्र 2 में इसका और अधिक विस्तार से वर्णन किया है।
(ख) यहाँ अज्ञान (संस्कृत में अविद्या) को दिव्य अवस्था/समाधि अवस्था/ध्यान अवस्था/ज़ेन के अज्ञान के रूप में समझा जा सकता है। गहन ध्यान के बाद जब समाधि प्राप्त होती है (ज्ञान के 9 स्तरों में से किसी में भी), तो अनुभव आधारित स्पष्ट समझ और दिव्य आनंद के कारण संबंधित अज्ञान दूर हो जाता है, जो भीतर सच्चा सुख (सुख) है।

(ग) विश्राम एक ऐसी घटना है जो समाधि/ध्यान/ज़ेन की दिव्य या अति-अवस्था के दौरान घटित होती है, जिसे अति-अवस्था के अनुभव के दौरान 'सामान्य' गतिविधियों के निलंबन के रूप में समझा जा सकता है।
(घ) इस सूत्र को इस विचार के प्रकाश में समझा जा सकता है कि ध्यान (समाधि/ध्यान) के दौरान व्यक्ति 'सामान्य' अवस्था से विश्राम की एक नई उन्नत अति-अवस्था में रूपांतरित हो सकता है और अति-अवस्था में होने पर व्यक्ति इस प्रवचन में वर्णित 'सामान्य' अवस्था को समझ सकता है।

(e) भौतिक जगत में अति-अवस्था की उपमा के रूप में, इसकी तुलना (i) बोस-आइंस्टीन संघनन से की जा सकती है, जब कुछ पदार्थों को अत्यधिक ठंडा किया जाता है, (ii) अतिचालकता से की जा सकती है, जब कुछ विशेष परिस्थितियों में और कम तापमान पर ठंडा किए जाने पर कुछ पदार्थ अत्यधिक धारा प्रवाहित कर सकते हैं, और (iii) लेजर क्रिया से की जा सकती है, जिसमें लेजर माध्यम के रूपांतरण (जनसंख्या व्युत्क्रमण) होने पर पूर्ण और अत्यंत शक्तिशाली प्रकाश उत्पन्न होता है। लेकिन इन्हें केवल उपमा के रूप में ही माना जाना चाहिए, इस विचार के साथ कि मनुष्य भी चेतना की कुछ अति-अवस्थाओं में रूपांतरित हो सकते हैं।
(f) अज्ञान को अति-अवस्था को न जानने और उसका अनुभव न करने के रूप में समझा जा सकता है (अर्थात् गैर-निरंतरता या गैर-समाधि/ध्यान/ज़ेन/सम्मोहन), दूसरे शब्दों में, अज्ञान की अवस्था वह अवस्था है जिसे 'सामान्य' माना जाता है।
(g) सूत्र 65 में (सामान्य) चेतना और मन-शरीर रूप (नामरूप) के बीच चक्रीय अंतरनिर्भरता का भी उल्लेख है।
भगवान (बौद्ध) ने यही कहा। भिक्षु भगवान (बौद्ध) के कथन से प्रसन्न हुए।

नहीं: (का) संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आधार, संस्कृत में संस्कार या कर्म संस्कार) की अवधारण को समझने के झूठ, इसे कम्प्युटिंग के क्षेत्र में कृत्रिम तांत्रिक नेतावार्क आधार कृत्रिम बुद्धिमत्ता अभ्यास में भारों के निर्धारण के रूप में समझा जा सकता है. साथ ही, प्रत्यक्ष भार अनुभव/स्वायच्छिक क्रिया/निर्णय/प्रतिक्रिया द्वार समर्थ होता है, जो कृत्रिम् बुद्धिमत्ता तांत्रिक नेटवर्क के प्रशिक्षण के झूठ देता है। बुद्ध ने अगले सूत्र 2 में इसका और अधिक विस्तार से वर्णन किया है।
(ख) यहां अज्ञान (संस्कृत में अविद्या) को दिव्य अवस्था/समाधि अवस्था/ध्यान अवस्था/ज़ेन के अज्ञान के रूप में समझा जा सकता है। गहन ध्यान के बाद जब समाधि प्राप्त होती है (ज्ञान के 9 सितारों में से किसी में भी), तो अनुभव आधारित स्पष्ट समझ और दिव्य आनंद के करण संबंध ज्ञान दूर हो जाता है, जो भीतर सच्चा सुख (सुख) है।

(जीए) विश्राम एक ऐसी घटना है जो समाधि/ध्यान/ज़ेन की दिव्य या अति-अवस्था के दौरन घटित होती है, जैसे अति-अवस्था के अनुभव के दौरन सामान्य गतिविधि के नीलांबन के रूप में समझ जा सकता है।
(जीएच) इस सूत्र को इस विचार के प्रकाश में समझा जा सकता है कि ध्यान (समाधि/ध्यान) के दौरान व्यक्ति सामान्य अवस्था से विश्राम की एक नई उन्नति अति-अवस्था में रूपान्तरित हो सकता है और अति-अवस्था में होने पर व्यक्ति इस प्रवचन में वर्णित समान अवस्था को समझ सकाता है.

(एआई) भौतिक जगत में अति-अवस्था की उपमा के रूप में, इसाकी तुलाना (आई) बॉस-आइंस्टीन संघनन से की जा सकती है, जब कुछ पदारथों को अत्याधिक ठंडा किया जाता है, (ii) अतिचलकटा से की जा सकती है, जब कुछ विशेष परिस्थितियों में और काम तपमान पर ठंडा की जाने पर कुछ पदार्थ अत्यधिक धारा प्रवाहित कर सकते हैं, और (iii) लेजर क्रिया से की जा सकती है, जिसमें लेजर मध्यम के रूपान्तरण (जनसंख्य व्युत्क्रमण) होने पर पूर्ण और अतियंत शक्तिशाली प्रकाश उत्पन्न होता है। लेकिन इन्हें केवल उपमा के रूप में ही माना जाना चाहिए, इस विचार के साथ-साथ मनुष्य भी चेतना की तरह अति-अवस्थाओं में रूपान्तरित हो सकता है।
(च) अज्ञान को अति-अवस्था को न जानने और उसका अनुभव न करने के रूप में समझा जा सकता है (अर्थात गैर-निरंतरता या गैर-समाधि/ध्यान/ज़ेन/सम्मोहन), दूसरे शब्दों में, अज्ञान की अवस्था वह अवस्था है जिसे सामान्य माना जाता है।

(जी) सूत्र 65 में (सामानय) चेतना और मनुष्य-शरीर रूप (नामरूप) के बीच चक्री अंतरनिर्भरता का भी उल्लेख है।____

2. आश्रित उत्पत्ति (विभंग) का विश्लेषण

(पटिच्चसमुत्पाद का विस्तृत विवरण; SN3-79 में और भी विस्तृत जानकारी)

सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धांत सिखाऊंगा और उसका विश्लेषण करूंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और मनसिकारो, मैं बोलूंगा।"
"
जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चसमुत्पाद) क्या है? अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या)
के कारण संस्कार (आक्रामक व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (संपर्क) होता है; स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उत्पन्न होती है; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (संपर्क) उत्पन्न होते हैं।" तृष्णा (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म के कारण दुःख, वृद्धावस्था और मृत्यु, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है । हे भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं। और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है? विभिन्न कोटि के प्राणियों की वृद्धावस्था, उनका बूढ़ा होना, दांतों का टूटना, बालों का सफेद होना, त्वचा का झुर्रीदार होना, शक्ति का क्षय होना, इंद्रियों का क्षय होना: यही वृद्धावस्था कहलाता है। विभिन्न प्रकार के प्राणियों का एकाकी होना, उनका नाश होना, विखंडन होना, लुप्त हो जाना, नश्वरता, मृत्यु, काल की समाप्ति, स्कंधों का विखंडन, शव का देह त्यागना: यही मृत्यु कहलाता है। 2 अतः इस वृद्धावस्था और इस मृत्यु को एक साथ वृद्धावस्था-मृत्यु कहा जाता है।

"और हे भिक्षुओं, जन्म क्या है? विभिन्न प्राणियों का विभिन्न रूपों में जन्म, उनका जन्म होना, गर्भ में उतरना, उत्पत्ति, स्कंधों का प्रकटीकरण, इंद्रियों का प्राप्त होना। यही जन्म कहलाता है। 3

"और हे भिक्षुओं, अस्तित्व (भावो) क्या है? तीन प्रकार के अस्तित्व (भावो) हैं: इंद्रिय-क्षेत्र का अस्तित्व, रूप-क्षेत्र का अस्तित्व, निराकार-क्षेत्र का अस्तित्व। यही अस्तित्व (भावो) कहलाता है। 4 "और हे भिक्षुओं

, आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) क्या है? चार प्रकार की आसक्ति हैं: इंद्रिय सुखों से आसक्ति, विचारों से आसक्ति, नियमों और प्रतिज्ञाओं से आसक्ति, आत्म-सिद्धांत से आसक्ति। यही आसक्ति कहलाता है। 5

"और हे भिक्षुओं, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) क्या है?" भोग की ये छह श्रेणियाँ हैं: रूपों के प्रति भोग, ध्वनियों के प्रति भोग, गंधों के प्रति भोग, स्वादों के प्रति भोग, स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति भोग और मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति भोग। इसे भोग (तन्हा संश्लेष) कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, वेदना क्या है? वेदना की ये छह श्रेणियाँ हैं: नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना, कान संपर्क (कान संपर्क) से उत्पन्न वेदना, नाक संपर्क (नाक संपर्क) से उत्पन्न वेदना, जीभ संपर्क (जीभ संपर्क) से उत्पन्न वेदना, शरीर संपर्क (शरीर संपर्क) से उत्पन्न वेदना और मन संपर्क (मन संपर्क) से उत्पन्न वेदना। इसे वेदना कहते हैं।

"और, भिक्षुओं, संपर्क क्या है? संपर्क की ये छह श्रेणियाँ हैं: नेत्र संपर्क, कान संपर्क, नाक संपर्क, जीभ संपर्क, शरीर संपर्क और मन संपर्क। इसे संपर्क (फस्सा/स्पर्श) कहते हैं।

"भिक्षुओं, ये छह इंद्रिय शक्तियाँ क्या हैं? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन। इन्हें छह इंद्रिय शक्तियाँ कहते हैं। और भिक्षुओं,

मनरूप क्या है? वेदना, अनुभूति, चेतना, संपर्क, मानसिक जागरूकता: इसे मन कहते हैं। चार महातत्व (पृथ्वी, वायु, जल और ऊष्मा) और इन चार महातत्वों से उत्पन्न रूप (धातु): इसे रूप कहते हैं। इस प्रकार, इस मन और इस रूप को एक साथ मनरूप कहते हैं।" 6.

भिक्षुओं, चेतना क्या है? चेतना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र-चेतना, कान-चेतना, नाक-चेतना, जीभ-चेतना, शरीर-चेतना और मन-चेतना। इसे चेतना कहते हैं।

भिक्षुओं, संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) क्या हैं? संस्कार (व्यवहार) तीन प्रकार के होते हैं: शारीरिक संस्कार (व्यवहार) , मौखिक संस्कार (व्यवहार) और मानसिक संस्कार (व्यवहार) । इन्हें संस्कार कहते हैं।

"और हे भिक्षुओं, अज्ञान क्या है? दुख को न जानना, दुख के कारण को न जानना, दुख के निवारण (निरोध) को न जानना, दुख के निवारण के मार्ग को न जानना। यही अज्ञान कहलाता है। 8 आश्रित

उत्पत्ति
"और हे भिक्षुओं, आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुत्पाद) क्या है? अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के
कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-स्थिति) उत्पन्न होते हैं ; संस्कार (व्यवहार-स्थिति) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) होता है; स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; (घ) इस सूत्र को इस विचार के प्रकाश में समझा जा सकता है कि ध्यान (समाधि/झान) के दौरान व्यक्ति 'सामान्य' अवस्था से एक नई उन्नत परम अवस्था में परिवर्तित हो सकता है और जब वह परम अवस्था में होता है, तो वह इस प्रवचन में वर्णित 'सामान्य' अवस्था को समझ सकता है। (e) भौतिक जगत में अति-अवस्था की उपमा के रूप में, इसकी तुलना (i) बोस-आइंस्टीन संघनन से की जा सकती है जब कुछ पदार्थों को अत्यधिक ठंडा किया जाता है, (ii) अतिचालकता से की जा सकती है जब कुछ परिस्थितियों में और कम तापमान पर ठंडा किए जाने पर कुछ पदार्थ अत्यधिक धारा प्रवाहित कर सकते हैं, और (iii) लेजर क्रिया से की जा सकती है जब लेजर माध्यम रूपांतरण (जनसंख्या व्युत्क्रमण) से गुजरता है, जिससे पूर्ण और अत्यंत शक्तिशाली प्रकाश उत्पन्न होता है। लेकिन इन्हें केवल उपमा के रूप में ही माना जाना चाहिए, इस विचार के साथ कि मनुष्य भी चेतना की कुछ अति-अवस्थाओं में रूपांतरित हो सकते हैं। (f) अज्ञान को अति-अवस्था को न जानने और उसका अनुभव न करने के रूप में समझा जा सकता है (अर्थात् गैर-निरस्तता या गैर-समाधि/ध्यान/ज़ेन/सम्मोहन), दूसरे शब्दों में, अज्ञान की अवस्था वह अवस्था है जिसे 'सामान्य' माना जाता है। (g) सूत्र 65 में (सामान्य) चेतना और मन-शरीर रूप (नामरूप) के बीच चक्रीय अंतरनिर्भरता का भी उल्लेख किया गया है।

व्यथा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है;
आसथा के कारण भाव उत्पन्न होता है;

भाव के कारण पुनर्जन्म होता है;

पुनर्जन्म के कारण दुःख, वृद्धावस्था, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।
यही इस समस्त दुःख का मूल है। हे भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं।
व्यथा के कारण असक्ति उत्पन्न होती है;

आस्था के कारण भाव उत्पन्न होता है;

भाव के कारण पुनर्जन्म होता है;

पुनर्जन्म के कारण दुःख, वृद्धावस्था, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।
यही समस्त दुःख का मूल है। वह भिक्षुओं, इसे प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं।
निरोध
परन्तु शेषफल के क्षीण होने और
अज्ञान के समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आदत) समाप्त हो जाते हैं;

संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) के समाप्त होने से चेतना समाप्त हो जाती है;

चेतना समाप्त होने से मन-शरीर का रूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है;

मन-शरीर का रूप (नामरूप) समाप्त होने से छह इंद्रियों का रूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है;

छह इंद्रियों के समाप्त होने से स्पर्श (संपर्क) समाप्त हो जाता है;
स्पर्श (संपर्क) समाप्त होने से वेदना (संवेदना) समाप्त हो जाती है;

वेदना (संवेदना) समाप्त होने से तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) समाप्त हो जाती है;

तृष्णा समाप्त होने से आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) समाप्त हो जाती है;

आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व (भाव) समाप्त हो जाता है;
अस्तित्व के समाप्त होने से पुनर्जन्म समाप्त हो जाता है;
पुनर्जन्म के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत हो जाता है, और दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है। 9

नोट: (क) संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-अनुकूलन, संस्कृत में संस्कार या कर्म संस्कार) की अवधारणा को समझने के लिए, इसे कंप्यूटिंग के क्षेत्र में कृत्रिम तंत्रिका नेटवर्क आधारित कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणाली में भारों को मान प्रदान करने के रूप में समझा जा सकता है। साथ ही, प्रत्येक भार अनुभव/स्वैच्छिक क्रिया/निर्णय/प्रतिक्रिया द्वारा समर्थित होता है, जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता तंत्रिका नेटवर्क के प्रशिक्षण के लिए डेटा के समान है। बुद्ध ने अगले सूत्र 2 में इनका और अधिक विस्तार से वर्णन किया है।
(ख) यहाँ अज्ञान (संस्कृत में अविद्या) को दिव्य अवस्था/समाधि अवस्था/ध्यान अवस्था/ज़ेन के अज्ञान के रूप में समझा जा सकता है। गहन ध्यान के बाद जब समाधि प्राप्त होती है (ज्ञान के 9 स्तरों में से किसी में भी), तो अनुभव आधारित स्पष्ट समझ और दिव्य आनंद के कारण, जो कि सच्चा सुख है, संबंधित अज्ञान दूर हो जाता है।
(ग) अंत एक ऐसी घटना है जो समाधि/ध्यान की दिव्य या अति-अवस्था के दौरान घटित होती है। ज़ेन अवस्था, जिसे अति-अवस्था के अनुभव के दौरान 'सामान्य' गतिविधियों के निलंबन के रूप में माना जा सकता है।
निरोध
परन्तु शेषफल के क्षीण होने और
Agyaan ke samaapt hone se sanskaar (व्यवहार-आदत) samaapt ho jaate hain;

संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) के संपर्क होने से चेतना समाप्त हो जाती है;

चेतना समाप्त होने से मन-शरीर का रूप (नामरूप) समाप्त हो जाता है;

आदमी-शरीर का रूप (नामरूप) samaapt hone se chah indriyon ka roop (नामरूप) samaapt ho jaata hai;

chah indriyon ke samaapt hone se sparsh (sampark) samaapt ho jaata hai;
स्पर्श (संपर्क) samaapt hone se vadana (संवेदना) samaapt ho jaatee hai;

वेदना (संवेदना) समाप्त होने से तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) समाप्त हो जाती है;

तृष्णा समाप्त होने से असक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) समाप्त हो जाती है;

Asakti ke samaapt hone se astitv (bhaav) samaapt ho jaata hai;
Astitv ke samaapt hone se punarjanm samaapt ho jaata hai;
पुनर्जन्म के समापत होने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत हो जाता है, और दुख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।

इस प्रकार संपूर्ण दुख का अंत होता है। 9

नहीं: (का) संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-अनुकूलन, संस्कृत में संस्कार या कर्म संस्कार) की अवधारण को समझने के झूठ, इसे कम्प्युटिंग के क्षेत्र में कृत्रिम तांत्रिक नेतावार्क आधार कृत्रिम बुद्धिमत्ता अभ्यास में भारों को मान प्रदान करने के रूप में समझ जा सकाता है. साथ ही, प्रत्यक्ष भार अनुभव/स्वायच्छिक क्रिया/निर्णय/प्रतिक्रिया द्वार समर्थ होता है, जो कृत्रिम् बुद्धिमत्ता तांत्रिक नेटवर्क के प्रशिक्षण के झूठ देता है। बुद्ध ने अगले सूत्र 2 में इनका और अधिक विस्तार से वर्णन किया है।
(ख) यहां अज्ञान (संस्कृत में अविद्या) को दिव्य अवस्था/समाधि अवस्था/ध्यान अवस्था/ज़ेन के अज्ञान के रूप में समझा जा सकता है। गहन ध्यान के बाद जब समाधि प्राप्त होती है (ज्ञान के 9 सितारों में से किसी में भी), तो अनुभव आधारित स्पष्ट समझ और दिव्य आनंद के कारण, जो सच्चा सुख है, संबंध ज्ञान दूर हो जाता है।
(गा) अंत एक ऐसी घटना है जो समाधि/ध्यान की दिव्य या अति-अवस्था के दौरन घटित होती है। ज़ेन अवस्था, जैसे अति-अवस्था के अनुभव के दौरन सामान्य गतिविधियों के नीलांबन के रूप में मन जा सकता है।

---

3. दो मार्ग (पतिपदा सं. प्रतिपदा)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें गलत और सही मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और सचेत रहो (मानसिकरो), मैं बोलूंगा।"
"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, गलत मार्ग क्या है?
अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं;
संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है;
चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं;
मन और शरीर (नामरूप) के कारण छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं;
छह इंद्रियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) होता है ;
स्पर्श (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है ;
वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) उत्पन्न होती है;
तृष्णा के कारण आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है।" [उत्पन्न होता है];
आसक्ति के कारण अस्तित्व (भावो) [उत्पन्न होता है];
अस्तित्व के कारण पुनर्जन्म [होता है];
पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था-मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है।
यही इस समस्त दुःख का मूल है।

भिक्षुओं, इसे ही कुमार्ग कहते हैं।

"और भिक्षुओं, सही मार्ग क्या है? अज्ञान के पूर्णतः क्षीण होने और
निरोध के साथ ही संस्कार (व्यवहार-आदत) का अंत होता है; संस्कार

(अनिच्छुक-व्यवहार-आदत) के अंत के साथ चेतना का अंत होता है;
चेतना के अंत के साथ मन-शरीर-रूप (नामरूप) का अंत होता है;
मन-शरीर-रूप (नामरूप) के अंत के साथ छह इंद्रियों का अंत होता है;
छह इंद्रियों के समाप्त होने पर स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) समाप्त हो जाता है;
स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) समाप्त होने पर वेदना समाप्त हो जाती है;
वेदना समाप्त होने पर तृष्णा समाप्त हो जाती है;
तृष्णा समाप्त होने पर आसक्ति समाप्त हो जाती है;
आसक्ति समाप्त होने पर भाव समाप्त हो जाता है; जन्म
समाप्त
होने पर वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है।
यही समस्त दुःख का निरोध है। हे

भिक्षुओं, यही सही मार्ग कहलाता है।

---

4. विपस्सी (एक पूर्व बुद्ध)
सावत्थी में। [बुद्ध:]
(i. उत्पत्ति)
"भिक्षुओं, विपस्सी बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत के उचित जागरण से पहले, जब वे अभी भी एक बोधिसत्व थे और पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुए थे, तब यह विचार आया:
'हाय, यह संसार संकट में पड़ गया है, क्योंकि यह जन्म लेता है, वृद्ध होता है और मरता है, यह नष्ट होता है और पुनर्जन्म लेता है, फिर भी यह वृद्धावस्था और मृत्यु के इस कष्ट से मुक्ति नहीं समझ पाता। अब इस वृद्धावस्था और मृत्यु के कष्ट से मुक्ति कब प्राप्त होगी?'

"तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'वृषण और मृत्यु कब अस्तित्व में आते हैं? वृद्धावस्था और मृत्यु किसके द्वारा उत्पन्न होते हैं (पच्चय संस्कृत प्रत्यय)?'" तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 13 'जब पुनर्जन्म होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म है (पच्चय सं. प्रत्यय)।' 14

"तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो पुनर्जन्म कैसे होता है? पुनर्जन्म किसके कारण होता है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब अस्तित्व का कारक होता है, तो पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म का कारण अस्तित्व है।'

"फिर, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब कोई चीज विद्यमान होती है, तो उसका अस्तित्व (भावो) कैसे उत्पन्न होता है? अस्तित्व (भावो) किसके कारण होता है (पच्चय संस्कृत प्रत्यय)?' फिर, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा) विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब आसक्ति (उपदान संस्कृत आसक्ति) होती है, तो अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व (भावो) का कारण आसक्ति है।'

फिर, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब कोई चीज विद्यमान होती है, तो उसका आसक्ति कैसे उत्पन्न होती है? आसक्ति किसके कारण होती है (पच्चय संस्कृत प्रत्यय)?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब तृष्णा होती है, तो आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति का कारण तृष्णा है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो तृष्णा उत्पन्न होती है? तृष्णा किसके द्वारा उत्पन्न होती है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब वेदना होती है, तो तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा का कारण वेदना है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो वेदना (संवेदना) कैसे उत्पन्न होती है? वेदना (संवेदना) किस कारण उत्पन्न होती है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है, तो वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) का कारण संपर्क (फस्सा/स्पर्श) है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो संपर्क (फस्सा/स्पर्श) कैसे उत्पन्न होता है (पच्चया)? संपर्क (फस्सा/स्पर्श) किस कारण उत्पन्न होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक गहन अंतर्दृष्टि (मंसिकारा) प्राप्त हुई: 'जब छह इंद्रियां विद्यमान होती हैं, तब संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है; संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का कारण छह इंद्रियां ही हैं।

' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है, तब छह इंद्रियां अस्तित्व में आती हैं? छह इंद्रियों का कारण (पच्चया) क्या है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) होता है, तब छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; इन छह इंद्रिय शक्तियों का कारण मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में आता है, तब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) उत्पन्न होता है? मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) किसके द्वारा उत्पन्न होता है (पच्चय)?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब चेतना होती है, तब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) उत्पन्न होता है; मन-शरीर रूप (नामरूप) का कारण चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) है।

"फिर, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो चेतना कैसे उत्पन्न होती है? चेतना किसके कारण उत्पन्न होती है (पच्चाय)?' फिर, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार-स्थिति) होते हैं, तो चेतना उत्पन्न होती है; चेतना का कारण संस्कार (व्यवहार-स्थिति) है।' 15

"फिर, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो संस्कार (व्यवहार-स्थिति) कैसे उत्पन्न होते हैं? संस्कार (व्यवहार-स्थिति) किसके कारण उत्पन्न होते हैं (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं ने ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक सफलता प्राप्त की: 'जब अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) होता है, संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) का कारण अज्ञान है।

इस प्रकार अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधारभूतता) को कारण मानकर चेतना उत्पन्न होती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। (जैसा कि 1 और 2 में है) "

'उत्पत्ति, उत्पत्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व में पहले कभी न सुने गए धर्मों (नियम, मार्ग) के संबंध में दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुए। 16

(ii. निरोध का निवारण)

"तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वृद्धावस्था और मृत्यु कैसे उत्पन्न नहीं होती? किसके निवारण से वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण होता है?'" तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती; पुनर्जन्म के रुकने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत हो जाता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब अस्तित्व ही नहीं है तो पुनर्जन्म क्यों नहीं होता? किसके रुकने से पुनर्जन्म रुकता है?' तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ:
'जब अस्तित्व का कोई कारण नहीं होता, तो पुनर्जन्म नहीं होता; अस्तित्व के कारण (भावो) के समाप्त होने से पुनर्जन्म का अंत हो जाता है।

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व का अस्तित्व नहीं होता, तो क्या अस्तित्व का कारण (भावो) उत्पन्न नहीं होता? किसके समाप्त होने से अस्तित्व के कारण (भावो) का अंत होता है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: ... 'जब आसक्ति नहीं होती (उपदान संस. आसक्ति), तो अस्तित्व का कारण (भावो) उत्पन्न नहीं होता; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व का अंत हो जाता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व का अस्तित्व नहीं होता, तो क्या आसक्ति उत्पन्न नहीं होती?' किस चीज के निरोध से आसक्ति का निरोध होता है? तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्त में ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: ... 'जब तृष्णा नहीं होती, तो आसक्ति उत्पन्न नहीं होती; तृष्णा के निरोध से आसक्ति का निरोध होता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो तृष्णा कैसे उत्पन्न नहीं होती? किसके निरोध से तृष्णा का निरोध होता है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यानमग्नता (मानसिकारा) के माध्यम से, विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: ... 'जब वेदना नहीं होती, तो तृष्णा उत्पन्न नहीं होती; वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध होता है।'

तब, हे भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वेदना कैसे उत्पन्न नहीं होती? किसके निरोध से वेदना का निरोध होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: "...जब इंद्रियों का विषय से संपर्क नहीं होता, तो वेदना उत्पन्न नहीं होती; संपर्क के समाप्त होने से वेदना का भी निरोध हो जाता है।"

तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: "जब जो अस्तित्व में ही नहीं है, उससे संपर्क कैसे नहीं होता? किसके समाप्त होने से संपर्क समाप्त होता है?" तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: ... 'जब छह इंद्रियां नहीं होतीं, तो संपर्क स्थापित नहीं होता; छह इंद्रियों के निष्क्रिय होने (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य करना बंद करने) से संपर्क (फस्सा/स्पर्श) भी समाप्त हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्व में नहीं होती, तो छह इंद्रियां कैसे अस्तित्व में नहीं आतीं? किसके निष्क्रिय होने से छह इंद्रियों का निष्क्रिय होना संभव होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा के माध्यम से एक ज्ञानोदय प्राप्त हुआ: "...जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) नहीं होता (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य का रुक जाना), तब छह इंद्रियां अस्तित्व में नहीं आतीं; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के रुकने से छह इंद्रियां भी रुक जाती हैं।

" तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व को यह विचार आया: "जब जो अस्तित्व में नहीं है, तब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) कैसे अस्तित्व में नहीं आता? किसके रुकने से मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का रुक जाना होता है?" तब, भिक्षुओं ने ध्यान (योनिसो) के माध्यम से विपस्सी बोधिसत्व में प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व उपलब्धि प्राप्त की:
... 'जब चेतना नहीं होती (विन्नान संस. विज्ञान), तो मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता; (साधारण) चेतना के समाप्त होने के साथ ही मन-शरीर रूप (नामरूप) का भी अंत हो जाता है।'

"फिर, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन होता है तो क्या (साधारण) चेतना उत्पन्न नहीं होती? किसके निरासण से चेतना का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा) विपस्सी बोधिसत्व को प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: ... 'जब संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत) नहीं होते, तो चेतना उत्पन्न नहीं होती; संस्कार (व्यवहार-आदत) के निरासण से (साधारण) चेतना का निरासण होता है।'

तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्व के मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन होता है तो क्या संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते? किसके निरासण से संस्कार (व्यवहार-आदत) का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्त में ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि (पन्ना) उत्पन्न हुई:
... 'जब अज्ञान नहीं होता, तो संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते; अज्ञान के निवारण से संस्कार (व्यवहार-आदत) का निवारण होता है।'

"इस प्रकार, अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और निवारण से संस्कार (व्यवहार-आदत) का निवारण होता है; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) के निवारण से चेतना का निवारण होता है... (जैसा कि पहले 1 और 2 में बताया गया है)।
इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का निवारण होता है।
" "'निराशा, निराशा' - इस प्रकार, भिक्षुओं, विपस्सी बोधिसत्त में पहले कभी न सुने गए धर्मों के संबंध में दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

---

5. सिख धर्म (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
सिख धर्म में बुद्ध के ज्ञानोदय और अरहत के प्रति सही जागृति से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

6 (6) वेसभु (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
वेस्साभू बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत भाव के सही जागरण से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

7 (7) काकुसंध (एक अन्य पूर्व बुद्ध)

काकुसंध बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत भाव के सही जागरण से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

8 (8) कोनागमना (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
कोनागमना बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत के रूप में सही ढंग से जागृत होने से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

9 (9) कस्सपा (एक अन्य पूर्व बुद्ध)
कश्यप बुद्ध को, उनके ज्ञानोदय और अरहत के सही ज्ञानोदय से पहले...
(जैसा कि 4. विपस्सी में है)

---

10 (10) गौतम महान शाक्य ऋषि (वर्तमान बुद्ध)

(i. उत्पत्ति)
"भिक्षुओं, मुझे, अपने ज्ञानोदय और अरहत के उचित जागरण से पहले, जब मैं अभी भी एक बोधिसत्व था और पूरी तरह से प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब यह विचार आया:
'हाय, यह संसार संकट में पड़ गया है, क्योंकि यह जन्म लेता है, वृद्ध होता है और मरता है, यह नष्ट हो जाता है और पुनर्जन्म लेता है, फिर भी यह वृद्धावस्था और मृत्यु के इस कष्ट से मुक्ति नहीं समझ पाता। अब इस वृद्धावस्था और मृत्यु के कष्ट से मुक्ति कब मिलेगी?'

"तब, भिक्षुओं, मुझे यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में आता है तो वृद्धावस्था और मृत्यु कैसे उत्पन्न होती है? वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक सफलता प्राप्त हुई: 13 'जब पुनर्जन्म होता है, तब वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है; वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म है।' 14

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व होता है तो पुनर्जन्म कैसे होता है? पुनर्जन्म किस कारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब अस्तित्व (भावो) होता है, तो पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म का कारण अस्तित्व (भावो) है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व होता है तो अस्तित्व (भावो) कैसे होता है? अस्तित्व (भावो) किस कारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब आसक्ति (उपदान संस. आसक्ति) होती है, तो अस्तित्व (भावो) होता है; अस्तित्व (भावो) का कारण आसक्ति है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) कैसे उत्पन्न होती है? आसक्ति किसके कारण उत्पन्न होती है (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) होती है, तो आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति का कारण तृष्णा है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो तृष्णा कैसे उत्पन्न होती है? तृष्णा किसके कारण उत्पन्न होती है (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब वेदना (संवेदना) होती है, तो तृष्णा उत्पन्न होती है; " लालसा का कारण वेदना है।

" तब, हे भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो वेदना कैसे उत्पन्न होती है? वेदना किसके द्वारा उत्पन्न होती है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यानमग्नता के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से यह ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब संपर्क होता है, तब वेदना उत्पन्न होती है; वेदना का कारण संपर्क है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो संपर्क कैसे उत्पन्न होता है? संपर्क किसके द्वारा उत्पन्न होता है (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब छह इंद्रियां विद्यमान होती हैं, तब संपर्क उत्पन्न होता है; संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का कारण छह इंद्रियां ही हैं।

' तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो छह इंद्रियां कैसे उत्पन्न होती हैं? छह इंद्रियां किसके द्वारा उत्पन्न होती हैं (पच्चाय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा), मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) होता है, तब छह इंद्रियां विद्यमान होती हैं; छहों इंद्रियों का कारण मन और शरीर (नामरूप) है।

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो मन और शरीर (नामरूप) कैसे उत्पन्न होता है? मन और शरीर (नामरूप) का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब चेतना होती है, तो मन और शरीर (नामरूप) उत्पन्न होता है; मन और शरीर (नामरूप) का कारण चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान) है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो चेतना कैसे उत्पन्न होती है? चेतना का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) होते हैं, तब चेतना उत्पन्न होती है; चेतना का कारण संस्कार (व्यवहार-आदत) है।' 15

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब कुछ विद्यमान होता है, तब संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न होते हैं? संस्कार (आक्रामक-व्यवहार-आदत) किसके द्वारा उत्पन्न होते हैं (पच्चय)?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) होता है, तो संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आधार) का कारण अज्ञान ही है।'

"इस प्रकार अज्ञान के कारण संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधार) के कारण चेतना... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। (जैसा कि 1 और 2 में है)

'उत्पत्ति, उत्पत्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, धर्मों (नियम, मार्ग) के संबंध में, जो पहले कभी नहीं सुने गए थे, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुए। 16

(ii. निरोध का निवारण)

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या होता है? किसके निरासण से वृद्धावस्था और मृत्यु का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या होता है; पुनर्जन्म के निरासण से वृद्धावस्था और मृत्यु का निरासण होता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो पुनर्जन्म का क्या होता है? किसके निरासण से पुनर्जन्म का निरासण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब अस्तित्व (भावो) का कोई कारण नहीं होता, तो पुनर्जन्म नहीं होता; अस्तित्व (भावो) के कारण के समाप्त होने से पुनर्जन्म का अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो अस्तित्व (भावो) का कोई कारण नहीं होता? किसके समाप्त होने से अस्तित्व (भावो) का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब आसक्ति नहीं होती, तो अस्तित्व (भावो) का कोई कारण नहीं होता; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व (भावो) का अंत हो जाता है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) कैसे उत्पन्न नहीं होती? किस चीज के समाप्त होने से आसक्ति का निवारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से (मानसिकारा) मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) नहीं होती, तो आसक्ति उत्पन्न नहीं होती; तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति का निवारण होता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो तृष्णा कैसे उत्पन्न नहीं होती? किस चीज के समाप्त होने से तृष्णा का निवारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से मनसिकारा करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब वेदना नहीं होती, तो तृष्णा उत्पन्न नहीं होती; वेदना के समाप्त होने से तृष्णा का भी अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो वेदना क्यों नहीं उत्पन्न होती? किसके समाप्त होने से वेदना का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से मनसिकारा करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब इंद्रियों का विषय से संपर्क नहीं होता, तो वेदना उत्पन्न नहीं होती; संपर्क के समाप्त होने से वेदना का भी अंत हो जाता है।'

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो क्या संपर्क स्थापित नहीं होता? किसके विलुप्त होने से संपर्क का विलुप्त होना संभव है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) की चेतना (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अनुभव प्राप्त हुआ: ... 'जब छह इंद्रियां नहीं होतीं, तो संपर्क स्थापित नहीं होता; छह इंद्रियों के विलुप्त होने (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य करना बंद करने) से संपर्क (फस्सा/स्पर्श) का विलुप्त होना संभव हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब वह चीज अस्तित्वहीन है तो क्या छह इंद्रियां अस्तित्व में नहीं आतीं? किसके विलुप्त होने से छह इंद्रियों का विलुप्त होना संभव है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मनसिकारा के माध्यम से, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) नहीं होता (समाधि/ध्यान/ज़ेन के दौरान कार्य का रुक जाना), तो छह इंद्रियां अस्तित्व में नहीं आतीं; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के रुकने से छह इंद्रियां भी रुक जाती हैं।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, क्या मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता? किसके रुकने से मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का रुक जाना होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
... 'जब चेतना (विन्नान संस. विज्ञान) नहीं होती, तो मन-शरीर (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता; (साधारण) चेतना के समाप्त होने से मन-शरीर (नामरूप) का भी अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, क्या (साधारण) चेतना अस्तित्व में नहीं आती? किसके समाप्त होने से चेतना का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) करते हुए, मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: ... 'जब संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) नहीं होते, तो चेतना अस्तित्व में नहीं आती; संस्कार (व्यवहार-आधार) के समाप्त होने से (सामान्य) चेतना का भी अंत हो जाता है।

तब, हे भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन होता है तो संस्कार (व्यवहार-आधार) कैसे उत्पन्न नहीं होते? किसके समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) का अंत होता है?' तब, हे भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मनसिकारा (मानसिकारा) द्वारा मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
... 'जब अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) नहीं होता, तो संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न नहीं होते; अज्ञान के समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) का अंत हो जाता है।'

इस प्रकार, अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और समाप्त होने के साथ ही संस्कार (व्यवहार-आदत) का अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) के समाप्त होने के साथ ही चेतना का अंत हो जाता है... (जैसा कि पहले 1 और 2 में बताया गया है)।
इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत हो जाता है।
'समाप्ति, समाप्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, धर्मों (नियम, मार्ग) के विषय में, जो पहले कभी सुने नहीं गए थे, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।

(ii) पोषण अनुभाग (अहरवग्गो)
11. पोषण (आहार)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे...

"भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। 17 वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, चाहे स्थूल हो या सूक्ष्म; दूसरा, इंद्रियों का विषय से संपर्क; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान)। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनकी सहायता के लिए हैं। 18

"भिक्षुओं, इन चार प्रकार के पोषणों का स्रोत क्या है, इनका उद्‌गम क्या है, ये किससे उत्पन्न और निर्मित होते हैं?" इन चारों प्रकार के पोषक तत्वों का स्रोत तृष्णा है; इनका जन्म और उत्पत्ति तृष्णा से ही होती है। 19

"और इस तृष्णा का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति किससे होती है? इस तृष्णा का स्रोत वेदना है; इसकी उत्पत्ति वेदना से ही होती है।

और इस वेदना का स्रोत क्या है...? वेदना का स्रोत स्पर्श है... और इस स्पर्श का स्रोत क्या है...? स्पर्श का स्रोत छह इंद्रियां हैं... और इन छह इंद्रियों का स्रोत क्या है...? छह इंद्रियों का स्रोत नामरूप है... और इस नामरूप का स्रोत क्या है...? मन और शरीर (नामरूप) का स्रोत चेतना है... और इस चेतना का स्रोत क्या है...? चेतना का स्रोत संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) है... और इन संस्कारों (व्यवहार) का स्रोत क्या है, इनकी उत्पत्ति क्या है, ये किससे उत्पन्न और निर्मित होते हैं? संस्कारों (व्यवहार) का स्रोत अज्ञान है, इनकी उत्पत्ति अज्ञान से होती है; ये अज्ञान से ही उत्पन्न और निर्मित होते हैं।

इस प्रकार, भिक्षुओं, अज्ञान के कारण संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आदत) के कारण चेतना उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और निरोध के साथ संस्कार (व्यवहार-आदत) का भी अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत) के अंत के साथ चेतना का भी अंत हो जाता है... यही इस समस्त दुख का अंत है। (1 और 2 के समान)

---

12. मोलियफाग्गुण

सावत्थी में। [बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये चार तरह के पोषक तत्व हैं जो पहले से मौजूद प्राणियों के रखरखाव और होने वाले प्राणियों की मदद के लिए हैं। कौन से चार? पोषक तत्व खाने लायक खाना, मोटा या हल्का; दूसरा, संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से; स्पर्श); तीसरा, मानसिक ज्ञान-जागरूकता; चौथा, चेतना (विन्नान संस. विज्ञान)। ये चार तरह के पोषक तत्व हैं जो पहले से मौजूद प्राणियों के रखरखाव और होने वाले प्राणियों की मदद के लिए हैं।" 20

जब यह कहा गया, तो आदरणीय मोलियाफग्गुण ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "आदरणीय महोदय, पोषक तत्व चेतना का सेवन कौन करता है?" 21
"यह सही सवाल नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने जवाब दिया। "मैं यह नहीं कहता, 'कोई खाता है।' 22 अगर मैं कहूँ, 'कोई खाता है,' तो यह एक सही सवाल होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन खाता है?' लेकिन मैं ऐसा नहीं बोलता। क्योंकि मैं ऐसा नहीं बोलता, अगर कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, न्यूट्रिशन कॉन्शसनेस [एक कारण] किस लिए है?' 23 तो यह एक सही सवाल होगा। इसका सही जवाब है: 'न्यूट्रिशन कॉन्शसनेस भविष्य में नए अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) के बनने का एक कारण है 24 जब जो अस्तित्व में आया है, वह मौजूद होता है, तो छह इंद्रियाँ [होती हैं]; 25 छह इंद्रियों के कारण के रूप में, संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है।'"

[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, संपर्क कौन करता है?"

"यह सही सवाल नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने जवाब दिया। "मैं यह नहीं कहता, 'कोई कॉन्टैक्ट करता है।' अगर मैं कहूँ, 'कोई कॉन्टैक्ट करता है,' तो यह एक सही सवाल होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन कॉन्टैक्ट (फस्सा/स्पर्श) करता है?' लेकिन मैं ऐसा नहीं बोलता। क्योंकि मैं ऐसा नहीं बोलता, अगर कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, किस वजह से कॉन्टैक्ट [होता है]?' तो यह एक सही सवाल होगा। इसका सही जवाब है: 'छह इंद्रियों के कारण होने पर, कॉन्टैक्ट [होता है]; कॉन्टैक्ट के कारण होने पर, सेंसेशन (वेदना)।'"

[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, कौन महसूस करता है?"

"यह सही सवाल नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने जवाब दिया। "मैं यह नहीं कहता, 'कोई महसूस करता है।' अगर मैं कहूँ, 'कोई महसूस करता है,' तो यह एक सही सवाल होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन महसूस करता है?' लेकिन मैं ऐसा नहीं बोलता क्योंकि मैं ऐसा नहीं बोलता, अगर कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, किस वजह से सेंसेशन (वेदना) [होती है]?' तो यह एक सही सवाल होगा। इसका सही जवाब है: 'जब कॉन्टैक्ट (स्पर्श) वजह हो, तो सेंसेशन (वेदना) [होती है]; जब सेंसेशन (वेदना) वजह हो, तो क्रेविंग (तन्हा बिना तृष्णा) होती है।'"
[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, कौन चाहता है?"

"यह सही सवाल नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने जवाब दिया। "मैं यह नहीं कहता, 'कोई चाहता है।' अगर मैं कहूँ, 'कोई चाहता है,' तो यह एक सही सवाल होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन चाहता है?' लेकिन मैं ऐसा नहीं बोलता। क्योंकि मैं ऐसा नहीं बोलता, अगर कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, किस वजह से चाहत [होती है]?' तो यह एक सही सवाल होगा। इसका सही जवाब है:

'जब सेंसेशन (वेदना) वजह हो, तो चाहत [होती है]; जब चाहत वजह हो, तो चिपकना (उपादान बिना आसक्ति)।'"

[मोलियाफग्गुण:] "आदरणीय महोदय, कौन चिपकता है?"

"यह सही सवाल नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने जवाब दिया। "मैं यह नहीं कहता, 'कोई चिपकता है।' यदि मैं कहूं, 'व्यक्ति चिपकता है,' तो उस स्थिति में यह एक वैध प्रश्न होगा: 'आदरणीय महोदय, कौन चिपकता है?' लेकिन मैं ऐसा नहीं बोलता। चूँकि मैं ऐसा नहीं बोलता, यदि कोई मुझसे पूछे, 'आदरणीय महोदय, किस कारण से चिपकना [होता है]?' तो यह एक वैध प्रश्न होगा। इसका वैध उत्तर है:
'लालसा (तन्हा बिना तृष्णा) को कारण मानकर चिपकना [होता है];
लगने के कारण से अस्तित्व (भावो)।'......
इस समस्त दुखों की उत्पत्ति ऐसी है।'

"लेकिन, फग्गुना, संपर्क की छह इंद्रियों के शेषहीन क्षीण होने और समाप्ति (निरोध) के साथ संपर्क का अंत हो जाता है; संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के अंत के साथ, संवेदना (वेदना) का अंत हो जाता है; संवेदना (वेदना) के अंत के साथ, लालसा का अंत हो जाता है; "तृष्णा के खत्म होने पर, आसक्ति का अंत होता है; आसक्ति के खत्म होने पर, अस्तित्व का अंत होता है; अस्तित्व के खत्म होने पर, पुनर्जन्म का अंत होता है; पुनर्जन्म के खत्म होने पर, बुढ़ापा और मृत्यु, दुख, विलाप, दर्द, नाराज़गी और निराशा खत्म हो जाती है। इस तरह इस सारे दुख का अंत होता है।" (1 और 2 जैसा)

---

13. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्राह्मण)
सावत्थी में। भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों को जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को नहीं समझते; 27 जो पुनर्जन्म... अस्तित्व (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (वेदना)... इंद्रियों का विषय से संपर्क (फस/स्पर्श)... छह इंद्रियों... मन-शरीर रूप (नामरूप)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन्न) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या मोक्ष के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते। ब्राह्मणत्व। 28

"परन्तु, हे भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं; जो पुनर्जन्म... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) को, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं; मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय, स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके, इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

14. तपस्वी और ब्राह्मण (2)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के बारे में जो इन धम्मों (धर्म, मार्ग), इनके उद्गम, इनके निरोध और इनके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: वे कौन से धम्म (मार्ग, नियम) हैं जिन्हें वे नहीं समझते, जिनके उद्गम को वे नहीं समझते, जिनके निरोध को वे नहीं समझते और जिनके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को वे नहीं समझते?

वे वृद्धावस्था और मृत्यु को नहीं समझते, न ही इसके उद्गम को, न इसके निरोध को और न इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को।" वे पुनर्जन्म, अस्तित्व (भावो), आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति), तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा), संवेदना (वेदना), स्पर्श (फस्सा/स्पर्श), छह इंद्रियों, मन-शरीर (नामरूप), चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान), संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), उनके उद्गम, उनके निवारण और निवारण के मार्ग को नहीं समझते। ये वे धर्म (नियम, मार्ग) हैं जिन्हें वे नहीं समझते, जिनके उद्गम को वे नहीं समझते, जिनके निवारण को वे नहीं समझते और जिनके निवारण के मार्ग को वे नहीं समझते।

"मैं इन्हें तपस्वियों में भी तपस्वी या ब्राह्मणों में भी ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और उसमें निवास नहीं करते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों, इनके उद्गम, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को समझते हैं; वे कौन से धर्म हैं जिन्हें वे समझते हैं, जिनके उद्गम को वे समझते हैं, जिनके निवारण को वे समझते हैं और जिनके निवारण के मार्ग को वे समझते हैं?"

वे वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं। वे पुनर्जन्म... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), इसके उद्भव, इसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं। ये वे धर्म हैं जिन्हें वे समझते हैं, जिनके उद्भव, निवारण और निवारण के मार्ग को वे समझते हैं।

मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिनय) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

---

15. कच्चनगोट्टा
सावत्थी में, पूज्य कच्चनगोत्ता भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "पूज्यवर, कहते हैं, 'सही दृष्टि, सही दृष्टि।' पूज्यवर, सही दृष्टि किस प्रकार है?"

"यह संसार, कच्चना, अधिकतर द्वैत पर निर्भर है - अस्तित्व (भावो) और गैर-अस्तित्व की धारणा पर। 29 परन्तु जो ध्यान में संसार की उत्पत्ति को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि से देखता है, उसके लिए संसार के संबंध में गैर-अस्तित्व की कोई धारणा नहीं होती। और जो ध्यान में निरोध को सही अंतर्दृष्टि से देखता है, उसके लिए संसार के संबंध में अस्तित्व (भावो) की कोई धारणा नहीं होती। 30

"यह संसार, कच्चना, अधिकतर आसक्ति, व्यथा (उपादान सं. आसक्ति) और निष्ठा से जकड़ा हुआ है। 31 परन्तु यह (सही दृष्टि वाला) व्यक्ति उस आसक्ति, मानसिक दृष्टिकोण, निष्ठा और अंतर्निहित प्रवृत्ति के कारण न तो संलग्न होता है और न ही उससे आसक्त होता है; वह 'मैं स्वयं' के बारे में कोई रुख नहीं अपनाता।" 32 उसे इस बात में कोई दुविधा या संदेह नहीं है कि जो कुछ उत्पन्न होता है वह केवल दुख का उत्पन्न होना है, और जो कुछ समाप्त होता है वह केवल दुख का समाप्त होना है। इस विषय में उसका ज्ञान दूसरों से स्वतंत्र है। कच्चना, सही दृष्टिकोण इसी प्रकार है। 33

"'सब कुछ विद्यमान है': कच्चाना, यह एक चरम सीमा है। 'सब कुछ विद्यमान नहीं है': यह दूसरी चरम सीमा है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं:
'अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना, संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और समाप्त होने से संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) समाप्त हो जाते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के समाप्त होने से चेतना समाप्त हो जाती है... यही इस संपूर्ण दुख का अंत है।' (जैसा कि 1 और 2 में है)

---

16. धर्म/मार्ग पर एक वक्ता (धम्मकथिका)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा:
"हे पूज्यवर, ऐसा कहा जाता है, 'धर्म (मार्ग, नियम) का वक्ता, धर्म का वक्ता।' हे पूज्यवर, किस प्रकार कोई धर्म का वक्ता होता है?"

"भिक्षु, यदि कोई वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा (निबिद्दा) और उसके निवारण (निरोध) के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है, तो वह धम्म का वक्ता भिक्षु कहलाने योग्य है। यदि कोई वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा, उसके निवारण और निवारण के उद्देश्य से अभ्यास करता है, तो वह धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है। 34 यदि वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा, उसके निवारण और निवारण के द्वारा अनासक्ति से मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त हो जाती है, तो वह इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है। 35

"भिक्षु, यदि कोई पुनर्जन्म के प्रति घृणा (निबिद्दा) के उद्देश्य से धम्म का उपदेश देता है... अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के निवारण और समाप्ति के लिए अभ्यास करने वाला भिक्षु धम्म का वक्ता कहलाने योग्य है। यदि कोई अज्ञान से घृणा करने, उसके निवारण और समाप्ति के उद्देश्य से अभ्यास कर रहा है, तो वह धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है। यदि अज्ञान से घृणा करने, उसके निवारण और समाप्ति के द्वारा अनासक्ति से मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त कर ली जाए, तो वह इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहलाने योग्य है।

---

17. नग्न तपस्वी कस्सपा (अचेलकस्सपा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। फिर, सुबह भगवान (बुद्ध) ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। नग्न तपस्वी कश्यप ने दूर से भगवान (बुद्ध) को आते देखा। उन्हें देखकर वह भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनका अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ खड़े हो गए और उनसे कहा: "हम गुरु गौतम से एक विषय पर प्रश्न पूछना चाहते हैं, क्या वे हमारे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करेंगे?"

[बुद्ध:] "यह प्रश्न पूछने का सही समय नहीं है, कश्यप। हम घरों के बीच प्रवेश कर चुके हैं।" 36
नग्न तपस्वी कस्सपा ने दूसरी और तीसरी बार भगवान (बुद्ध) से कहा, “हम गुरु गौतम से एक विषय पर प्रश्न पूछना चाहते हैं, यदि वे हमारे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें।”
[बुद्ध:] “कस्सापा, यह प्रश्न पूछने का उचित समय नहीं है। हम घरों में प्रवेश कर चुके हैं।”

तब नग्न तपस्वी कस्सपा ने भगवान (बुद्ध) से कहा, “हम गुरु गौतम से अधिक प्रश्न नहीं पूछना चाहते।”
[बुद्ध:] “तो कस्सपा, जो चाहो पूछो।”
[अचेलकस्सापा:] “गुरु गौतम, क्या दुख स्वयं उत्पन्न होता है?”
[बुद्ध:] “नहीं कस्सपा,” भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकस्सापा:] “तो, गुरु गौतम, क्या दुख किसी और के द्वारा उत्पन्न होता है?”
[बुद्ध:] “नहीं कस्सपा,” भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकसप:] "तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या दुख स्वयं और परावर्तित दोनों होते हैं?"
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, कस्सप," भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकसप:] "तो फिर, गुरु गौतम, क्या दुख संयोगवश उत्पन्न होता है, न तो स्वयं और न ही परावर्तित?" 37
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, कस्सप," भगवान (बुद्ध) ने कहा।
[अचेलकसप:] "तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या दुख नहीं है?"
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि दुख नहीं है, कस्सप; दुख है।"
[अचेलकसप:] "तो क्या गुरु गौतम दुख को नहीं जानते और नहीं देखते?"
[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि मैं दुख को नहीं जानता और नहीं देखता, कस्सप। मैं दुख को जानता हूँ, मैं दुख को देखता हूँ।"

[अचेलकस्सापा:] "चाहे आपसे पूछा जाए: 'हे गौतम गुरु, क्या दुख स्वयं उत्पन्न होता है?' या 'क्या यह किसी और द्वारा उत्पन्न होता है?' या 'क्या यह दोनों द्वारा उत्पन्न होता है?' या 'क्या यह किसी के द्वारा भी उत्पन्न नहीं होता?' प्रत्येक स्थिति में आप यही कहेंगे:
'ऐसा नहीं है, कस्सपा।' जब आपसे पूछा जाए: 'तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या दुख नहीं है?' तो आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि दुख नहीं है, कस्सपा; दुख है।' जब पूछा जाए: 'तो क्या गुरु गौतम दुख को जानते और देखते नहीं हैं?' तो आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि मैं दुख को जानता और देखता नहीं हूँ, कस्सपा। मैं दुख को जानता हूँ, मैं दुख को देखता हूँ।' आदरणीय महोदय, कृपया भगवान (बुद्ध) मुझे दुख का अर्थ समझाएँ। भगवान (बुद्ध) मुझे दुख के विषय में सिखाएँ। 38 तब नग्न तपस्वी कस्सपा ने भगवान (बुद्ध) के अधीन दीक्षा (पबज्जा) प्राप्त की और उपसंपदा प्राप्त की। और शीघ्र ही, अपनी उपसंपदा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में, एकांत में, सजग (अपमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य कस्सपा ने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से जाना: "पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" और पूज्य कस्सपा अरहंतों में से एक बन गए। 44
[बुद्ध:] "कस्सप, [अगर कोई सोचता है,] 'जो काम करता है, वही [नतीजा] भोगता है' [तो वह शुरू से मौजूद किसी के बारे में कहता है: 'दुख खुद ही पैदा करता है।' जब कोई ऐसा कहता है, तो यह हमेशा रहने वाला होता है। 39 लेकिन, कस्सप, [अगर कोई सोचता है,] जो काम करता है वह एक है, जो [नतीजा] भोगता है वह दूसरा है' [तो वह] वेदना से परेशान किसी के बारे में कहता है: 'दुख दूसरे के द्वारा पैदा किया जाता है।' जब कोई ऐसा कहता है, तो यह विनाशवाद के बराबर होता है। 40 इन दोनों में से किसी भी एक्सट्रीम की ओर जाए बिना, तथागत धम्म (रास्ता, कानून) को बीच का रास्ता (रास्ता, एक्सट्रीम नहीं) सिखाते हैं: 41 'अज्ञान (अविज्जा बिना. अविद्या) को कारण मानकर, संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) [होता है]; संस्कार (व्यवहार-कंडीशनिंग) को कारण मानकर, चेतना (विन्नाना बिना. विज्ञान).... यही इस पूरे दुख के ढेर की शुरुआत है। लेकिन अज्ञान के बिना बचे रहने के खत्म होने और खत्म होने (निरोध) के साथ संस्कार (व्यवहार-कंडीशनिंग) का भी अंत होता है; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) के खत्म होने के साथ, चेतना का भी अंत होता है.... यही इस पूरे दुख के ढेर का अंत है।'" (जैसा कि 1 और 2 में है)

जब यह कहा गया, तो नंगे तपस्वी कश्यप ने कहा भगवान (बुद्ध): "महान्, आदरणीय महोदय! महान्, आदरणीय महोदय! भगवान (बुद्ध) ने धम्म को कई तरीकों से साफ़ किया है, जैसे कि वे उलटी हुई चीज़ों को सीधा कर रहे हों, जो छिपा हुआ था उसे दिखा रहे हों, जो खो गया था उसे रास्ता दिखा रहे हों, या जिनकी आँखें हैं उन्हें रूप देखने के लिए अंधेरे में दीपक दिखा रहे हों। मैं भगवान (बुद्ध), और धम्म, और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। क्या मुझे भगवान (बुद्ध) के अंडर आगे बढ़ने (दीक्षा, पबज्जा) की इजाज़त मिले, क्या मुझे उपसम्पदा मिले?" 42
[बुद्ध:] "कस्सप, जो पहले दूसरे पंथ से थे और इस धम्म और अनुशासन में आगे बढ़ना (दीक्षा, पबज्जा) और ऊंची दीक्षा चाहते हैं, चार महीने तक प्रोबेशन पर रहते हैं। चार महीने के आखिर में, अगर भिक्षु उनसे खुश हैं, तो वे चाहें तो उन्हें आगे बढ़ना (दीक्षा, पबज्जा) और भिक्षु के पद पर ऊंची दीक्षा दे सकते हैं। लेकिन मैं व्यक्तिगत अंतरों को पहचानता हूं।" 43

[अचेलकस्साप्पा:] "आदरणीय महोदय, अगर कोई पहले किसी दूसरे पंथ का हो और इस धम्म (पथ, कानून) और अनुशासन में आगे बढ़ना (दीक्षा, पबज्जा) और ऊंची दीक्षा चाहता हो, और चार महीने तक प्रोबेशन पर रहता है, और अगर चार महीने के आखिर में भिक्षु उससे खुश होकर, अगर वे चाहें तो उसे आगे बढ़ना (दीक्षा, पबज्जा) और भिक्षु के पद पर ऊंची दीक्षा दे सकते हैं, तो मैं चार साल तक प्रोबेशन पर रहूंगा। चार साल के आखिर में, अगर भिक्षु मुझसे खुश हैं, तो वे चाहें तो मुझे आगे बढ़ना (दीक्षा, पबज्जा) और भिक्षु के पद पर ऊंची दीक्षा दे सकते हैं।"

---

18 (8) तिम्बारुका

श्रावस्ती में, तपस्वी तिंबरुक भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले:

[तिंबरुक:] "हे गौतम जी, क्या सुख और दुख स्वयं उत्पन्न होते हैं?" 45

[बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, तिंबरुक," भगवान (बुद्ध) ने कहा। [

तिंबरुक:] "तो हे गौतम जी, क्या सुख और दुख किसी और के द्वारा उत्पन्न होते हैं?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, तिंबरुक," भगवान (बुद्ध) ने कहा। [तिंबरुक:] "तो फिर, हे गौतम जी, क्या सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी और द्वारा?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है, तिम्बारुका," भगवान (बुद्ध) ने कहा। [तिम्बारुका:] "तो फिर क्या है, गुरु गौतम: क्या सुख और दुख नहीं हैं?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि सुख और दुख नहीं हैं, तिम्बारुका; सुख और दुख हैं।" [तिम्बारुका:] "तो क्या गुरु गौतम सुख और दुख को नहीं जानते और नहीं देखते?" [बुद्ध:] "ऐसा नहीं है कि मैं सुख और दुख को नहीं जानता और नहीं देखता, तिम्बारुका। मैं सुख और दुख को जानता हूँ, मैं सुख और दुख को देखता हूँ।"

[टिम्बरुका:] "चाहे आपसे पूछा जाए: 'यह कैसे है। मास्टर गोतम: क्या सुख और दुःख स्वयं के द्वारा निर्मित होते हैं?' या 'क्या वे किसी और के द्वारा बनाए जाते हैं?' [23] या 'क्या वे दोनों के द्वारा बनाए जाते हैं?' या 'क्या वे किसी के द्वारा नहीं बनाए जाते हैं?' प्रत्येक मामले में आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है, टिम्बरुका।' जब आपसे पूछा जाता है: 'तो फिर यह कैसे है। मास्टर गोतम: क्या सुख और दुःख नहीं हैं?' आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि सुख और दुःख नहीं हैं, टिम्बरुका; सुख और दुःख हैं।' जब पूछा जाता है: 'तो क्या ऐसा है कि मास्टर गोतम सुख और दुःख को नहीं जानते और देखते नहीं हैं?' आप कहते हैं: 'ऐसा नहीं है कि मैं सुख और दुःख को नहीं जानता और देखता नहीं हूँ, टिम्बरुका। मैं सुख और दुःख को जानता हूँ, मैं सुख और दुःख को देखता हूँ।' आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मुझे सुख और दुःख के बारे में समझाएँ। भगवान (बुद्ध) मुझे सुख और दुःख के बारे में सिखाएँ। [बुद्ध:] "टिम्बरुक, [अगर कोई सोचता है,] 'वेदना और उसे महसूस करने वाला एक ही हैं,' [तो वह कहता है] शुरू से मौजूद एक के बारे में: 'खुशी और दुख खुद ही बनाए जाते हैं।' मैं ऐसा नहीं कहता। 46 लेकिन, टिम्बरुक, [अगर कोई सोचता है,] 'वेदना एक है, उसे महसूस करने वाला दूसरा है,' [तो वह कहता है] वेदना से परेशान एक के बारे में: 'खुशी और दुख दूसरे के बनाए जाते हैं।' मैं भी ऐसा नहीं कहता। 47 इन दोनों में से किसी भी एक्सट्रीम की ओर जाए बिना, तथागत धम्म (रास्ता, कानून) को बीच का रास्ता (रास्ता, एक्सट्रीम नहीं) बताते हैं: 'अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) को कारण मानकर, संस्कार (कंपल्सिव-बिहेवियर-कंडीशनिंग) [होता है]; संस्कार (बिहेवियर-कंडीशनिंग) को कारण मानकर, चेतना (विन्नाना संस. विज्ञान).... यही इस पूरे दुख के ढेर की शुरुआत है। लेकिन अज्ञान के बिना बचे रहने के खत्म होने और खत्म होने (निरोध) के साथ संस्कार (बिहेवियर-कंडीशनिंग) का भी अंत होता है; संस्कार (कंपल्सिव-बिहेवियर-कंडीशनिंग) के खत्म होने के साथ, चेतना का भी अंत होता है.... यही इस पूरे दुख के ढेर का अंत है।'" (जैसा कि 1 और 2 में है)

जब यह कहा गया, तो नंगे तपस्वी टिम्बरुका ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "महान्, मास्टर गौतम!... मैं मास्टर गौतम, धम्म और भिक्खु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से मास्टर गौतम मुझे एक ऐसे आम अनुयायी के रूप में याद रखें जो जीवन भर के लिए शरण में गया है।"

---

19. बुद्धिमान और मूर्ख (बालपंडित)

सावत्थी में [बुद्ध:] "भिक्षुओं, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए अपरिष्कृत लोगों के लिए, इस शरीर की उत्पत्ति हुई है। अतः यह शरीर और बाहरी मन-शरीर रूप (नामरूप) का अस्तित्व है: इस प्रकार यह दोहा है। इस दोहे पर निर्भर इंद्रियों का विषय से संपर्क होता है। केवल छह इंद्रियां हैं, जिनके माध्यम से - या उनमें से किसी एक के माध्यम से - अपरिष्कृत व्यक्ति सुख और दुःख का अनुभव करता है। 48

"भिक्षुओं, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए बुद्धिमान लोगों के लिए, इस शरीर की उत्पत्ति हुई है। अतः यह शरीर और बाहरी मन-शरीर रूप (नामरूप) का अस्तित्व है: इस प्रकार यह दोहा है। इस दोहे पर निर्भर इंद्रियों का विषय से संपर्क होता है।" केवल छह इंद्रियाँ हैं, जिनके माध्यम से - या उनमें से किसी एक के माध्यम से - ज्ञानी व्यक्ति सुख और दुःख का अनुभव करता है। हे भिक्षुओं, यहाँ क्या अंतर है, क्या भेद है, ज्ञानी व्यक्ति और अपरिष्कृत (नासमझ) व्यक्ति में क्या अंतर है? "

हे पूज्यवर, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लें। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। 49 उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

[बुद्ध:] "तो सुनो और ध्यान रखो, हे भिक्षुओं, मैं बोलूँगा।"
"जी हे पूज्यवर," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, अज्ञान से अवरुद्ध और तृष्णा से जकड़े अपरिष्कृत (नासमझ) लोगों के लिए यह शरीर उत्पन्न हुआ है। अज्ञानी व्यक्ति के लिए अज्ञान का त्याग नहीं हुआ है और उसकी व्यथा पूर्णतः नष्ट नहीं हुई है। इसका कारण क्या है? क्योंकि अज्ञानी व्यक्ति ने दुखों के पूर्ण नाश के लिए ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया है। इसलिए, शरीर के टूटने पर अज्ञानी व्यक्ति पुनर्जन्म लेता है। नया शरीर धारण करने पर भी वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होता; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होता; दुखों से मुक्त नहीं होता, मैं कहता हूँ।

भिक्षुओं, अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े हुए ज्ञानी पुरुष के लिए यह शरीर उत्पन्न हुआ है। ज्ञानी पुरुष ने उस अज्ञान का त्याग कर दिया है और उस तृष्णा का पूर्णतः नाश कर दिया है। इसका कारण क्या है? क्योंकि ज्ञानी पुरुष ने दुख के पूर्ण नाश के लिए ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया है। इसलिए, शरीर के विखंडन के साथ, ज्ञानी पुरुष नया शरीर धारण नहीं करता। नया शरीर धारण न करने के कारण वह पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाता है; दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हो जाता है; मैं कहता हूँ, वह दुख से मुक्त हो जाता है।
"हे भिक्षुओं, यही ज्ञानी और अपरिष्कृत व्यक्ति के बीच का भेद, यही अंतर, यही अंतर है, अर्थात् ब्रह्मचर्य का जीवन जीना।" 50

---

20. कारण (पच्चय सं. प्रत्यय)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) और उससे उत्पन्न होने वाली घटनाओं (धम्म) का उपदेश दूंगा। ध्यानपूर्वक सुनो, मैं बोलूंगा।"
"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, यह प्रतीत्यसमुत्पाद क्या है? 'पुनर्जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है': तथागतों का उद्भव हो या न हो, वह तत्व (धातु) फिर भी विद्यमान रहता है, धम्म की स्थिरता, धम्म का निश्चित मार्ग, विशिष्ट कारण। 51 तथागत इसे जागृत करते हैं और इसे पार कर लेते हैं। 52 ऐसा करने के बाद, वे इसकी व्याख्या करते हैं, इसे सिखाते हैं, इसका प्रचार करते हैं, इसे स्थापित करते हैं, इसे प्रकट करते हैं, इसका विश्लेषण करते हैं, इसे स्पष्ट करते हैं। और वे कहते हैं: 'देखो! हे भिक्षुओं, पुनर्जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है।'" 53 "जब, हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस आश्रित उत्पत्ति और इन आश्रित उत्पन्न घटनाओं (धम्म) को स्पष्ट रूप से देख लेता है, तो यह असंभव है कि वह अतीत में वापस जाकर सोचे: 'क्या मैं अतीत में विद्यमान था? क्या मैं अतीत में विद्यमान नहीं था? मैं अतीत में क्या था? मैं अतीत में कैसा था? अतीत में मैं क्या था, और फिर क्या बन गया?' या यह कि वह भविष्य में आगे बढ़कर सोचे: 'क्या मैं भविष्य में विद्यमान रहूंगा? क्या मैं भविष्य में विद्यमान नहीं रहूंगा? मैं भविष्य में क्या होऊंगा? मैं भविष्य में कैसा होऊंगा? मैं क्या था, और फिर क्या बन जाऊंगा?' या यह कि वह वर्तमान के बारे में आंतरिक रूप से भ्रमित हो जाए: 'क्या मैं विद्यमान हूं? क्या मैं विद्यमान नहीं हूं? मैं क्या हूं? मैं कैसा हूं? यह अस्तित्व - कहां से आया है, और कहां जाएगा?' 56 "इसका क्या कारण है कि यह असंभव है? क्योंकि, भिक्षुओं, श्रेष्ठ शिष्य ने सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस आश्रित उत्पत्ति (पतीच्चसमुत्पाद) और इन आश्रित उत्पत्ति की घटनाओं (धम्म) को स्पष्ट रूप से देखा है।"

"'भावो' को कारण मानकर, पुनर्जन्म' ... 'उपादान संस. आसक्ति' को कारण मानकर, अस्तित्व' ... 'तृष्णा' को कारण मानकर, आसक्ति' ... 'वेदना' को कारण मानकर, तृष्णा' . . . 'संपर्क (इंद्रियों का वस्तु से स्पर्श) को कारण मानकर, संवेदना (वेदना)' ... 'छह ज्ञानेंद्रियों को कारण मानकर, संपर्क' ... 'मन-और-शरीररूप' को कारण मानकर, छह ज्ञानेंद्रियां' ... 'चेतना (विन्नान संस. विज्ञान) को कारण मानकर, मन-और-शरीररूप' ... 'संखारा (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) को कारण मानकर, चेतना' ... 'अज्ञानता (अविद्या) को कारण मानकर, संखारा (व्यवहार-कंडीशनिंग)': चाहे तथागतों का उदय हो या तथागत का कोई उदय नहीं, वह तत्व अभी भी बना रहता है, धम्म की स्थिरता, धम्म का निश्चित पाठ्यक्रम, विशिष्ट कारण। एक तथागत इसके प्रति जागृत होता है और [26] इसमें प्रवेश करता है। ऐसा करने के बाद, वह इसे समझाता है, इसे सिखाता है, इसे घोषित करता है, इसे स्थापित करता है, इसे प्रकट करता है, इसका विश्लेषण करता है, इसे स्पष्ट करता है। और वह कहता है: 'देखो! अज्ञान को कारण मानकर, भिक्षुओं, संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) (होते हैं)।' (जैसा कि 1 और 2 में है)
"इस प्रकार, भिक्षुओं, इसमें वास्तविकता, अचूकता, अन्यथा-नहीं-पन, विशिष्ट कारण: इसे आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुप्पदा) कहा जाता है। 54

"और, भिक्षुओं, निर्भर रूप से उत्पन्न होने वाली घटनाएँ (धम्म) क्या हैं? भिक्षुओं, बुढ़ापा और मृत्यु, अस्थायी है, शर्तबद्ध (संखतो), निर्भर रूप से उत्पन्न, विनाश (खाय\क्षय), गिरावट, मिटना, और समाप्ति (निरोध) के अधीन है। जन्म अस्थायी है ... अस्तित्व (भावो) अस्थायी है ... चिपकना अस्थायी है ... लालसा (तन्हा बिना तृष्णा) अस्थायी है ... संवेदना (वेदना) अस्थायी है ... संपर्क (फस्सा/स्पर्श) अस्थायी है ... छह इंद्रियाँ अस्थायी हैं...

मन और शरीर का रूप (नामरूप) अस्थायी है ... चेतना अस्थायी है ... संखारा (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) अस्थायी हैं ... अज्ञान अस्थायी है, शर्तबद्ध (संखत), निर्भर रूप से उत्पन्न, के अधीन है विनाश (खाया/क्षय), गिरावट, लुप्त होना और समाप्ति। भिक्षुओं, इन्हें आश्रित रूप से उत्पन्न घटना (धम्म) कहा जाता है।

(iii) दस शक्तियों का खंड (दशबलवग्गो)

21. दस शक्तियाँ (1) (दशबाला 1)

सावत्थी में। [बुद्ध:] "दस शक्तियों और आत्मविश्वास के चार आधारों से युक्त भिक्षुओं, तथागत झुंड के मुखिया बैल का स्थान धारण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को इस प्रकार घुमाते हैं: 57 'ऐसा है रूप, ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसी है संवेदना (वेदना), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसी है अनुभूति (संज्ञा), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसे हैं संस्कार (आक्रामक व्यवहार), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय; ऐसी है चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान), ऐसा है उत्पत्ति, ऐसा है अपक्षय। 58 अत: जब यह विद्यमान होता है, तो वह विद्यमान होता है; इसके विद्यमान होने पर वह विद्यमान होता है। जब यह विद्यमान नहीं होता, तो वह विद्यमान नहीं होता; इसके विद्यमान होने पर वह विद्यमान हो जाता है। 59 अर्थात्, इसके विद्यमान होने पर अज्ञान (अविज्ज संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) के कारण चेतना उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) का भी अंत हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आधारभूतता) के समाप्त होने से चेतना का भी अंत हो जाता है (जैसा कि अनुच्छेद 1 में है)। इसी प्रकार इस समस्त दुख का अंत होता है (जैसा कि अनुच्छेद 1 और 2 में है)।

---

22. दस शक्तियाँ (2) (दशबाला 2)

सावत्थी में, "दस शक्तियों और आत्मविश्वास के चार आधारों से युक्त भिक्षुओं, तथागत झुंड के मुखिया बैल का स्थान ग्रहण करते हुए सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मचक्र को इस प्रकार घुमाते हैं: 'ऐसा है रूप... (जैसा कि 21 में है)... इस समस्त दुख का यही निवारण (निरोध) है।' भिक्षुओं

, इस प्रकार मैंने धर्म (मार्ग, नियम) की अच्छी तरह व्याख्या की है, उसे स्पष्ट किया है, प्रकट किया है, प्रकट किया है, और उसमें से अनावश्यक बातें हटा दी हैं।" 60 हे भिक्षुओं, जब मैंने इस प्रकार धम्म की अच्छी तरह व्याख्या कर दी है, उसे स्पष्ट कर दिया है, प्रकट कर दिया है, उसमें से अनावश्यक बातें हटा दी हैं, तो यह उस कुल के अनुयायी के लिए पर्याप्त है जिसने विश्वास से दीक्षा ली है, ताकि वह अपनी ऊर्जा (वीर्य) को इस प्रकार जागृत कर सके: 'इच्छा से, मेरी केवल त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रह जाएँ, और मेरे शरीर का मांस और रक्त सूख जाए, परन्तु मैं अपनी ऊर्जा को तब तक शिथिल नहीं करूँगा जब तक मैं वह प्राप्त न कर लूँ जो पुरुष शक्ति से, पुरुष ऊर्जा शक्ति से, पुरुष परिश्रम से प्राप्त किया जा सकता है।' 61

भिक्षुओं, आलसी व्यक्ति दुख में रहता है, अकुशल (अकुशल संस्कृत) अवस्थाओं से दूषित रहता है, और वह बड़े पुण्य का उपेक्षित रहता है। 62 परन्तु ऊर्जावान व्यक्ति सुख में रहता है, अकुशल (अकुशल संस्कृत) अवस्थाओं से विरक्त रहता है, और वह बड़े पुण्य को प्राप्त करता है। निम्नतर के द्वारा परम को प्राप्त नहीं किया जाता, बल्कि परम के द्वारा ही परम को प्राप्त किया जाता है। 63 भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन मलाई के पेय के समान है; गुरु उपस्थित हैं। 64 अतः, भिक्षुओं, अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने के लिए, अभी तक अप्राप्त को सिद्ध करने के लिए, अभी तक असिद्ध को सिद्ध करने के लिए अपनी ऊर्जा को जागृत करो, [इस विचार के साथ]: 'इस प्रकार हमारा यह दीक्षा संस्कार निष्फल नहीं, बल्कि फलदायी और उपजाऊ होगा; और जब हम दूसरों द्वारा दिए गए वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधीय सामग्री का उपयोग करते हैं, तो उनके द्वारा हमारे लिए की गई ये सेवाएँ उनके लिए बहुत फलदायी और लाभकारी होंगी। 65 इसलिए, हे भिक्षुओं, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए:

"हे भिक्षुओं, अपने हित को ध्यान में रखते हुए, लक्ष्य के लिए सजगतापूर्वक प्रयास करना पर्याप्त है; दूसरों के हित को ध्यान में रखते हुए, लक्ष्य के लिए सजगतापूर्वक प्रयास करना पर्याप्त है; और दोनों के हित को ध्यान में रखते हुए, लक्ष्य के लिए सजगतापूर्वक प्रयास करना पर्याप्त है।" 66

---

23. निकटवर्ती कारण (उपनिष)

सावत्थी, 67 पर: "भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि विकारों का नाश (खया/क्षय) उसे होता है जो जानता और देखता है (ध्यान में, पस्सति, विपश्यना ध्यान का संदर्भ), न कि उसे जो नहीं जानता और नहीं देखता। जो जानता है, जो देखता है (ध्यान में), उसके लिए विकारों का नाश होता है? 'ऐसा रूप है, ऐसा उसका उद्गम है, ऐसा उसका क्षय है; ऐसी संवेदना (वेदना) है... ऐसी धारणा (सन्ना, संज्ञा) है... ऐसे संस्कार (आक्रामक व्यवहार-आदतियाँ) हैं... ऐसी चेतना (विन्नान, संस्कृत विज्ञान), ऐसा उसका उद्गम है, ऐसा उसका क्षय है': जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार देखता है (ध्यान में, पस्सति), उसके लिए विकारों का नाश होता है।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि नाश के संबंध में नाश (खया/क्षय) के ज्ञान का एक निकटवर्ती कारण है; इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है। और विनाश के ज्ञान का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति)। 68

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, उस मुक्ति का भी एक प्रत्यक्ष कारण है; इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है। और मुक्ति का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: वैराग्य।

मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, उस वैराग्य का भी एक प्रत्यक्ष कारण है; इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं है। और वैराग्य का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: घृणा (निब्बिदा)।"

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि घृणा का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और घृणा का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: धम्मों (नियम, मार्ग और अनुभव) का वास्तविक ज्ञान और दर्शन।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि धम्मों का वास्तविक ज्ञान और दर्शन का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और धम्मों के वास्तविक ज्ञान और दर्शन का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि समाधि (सम्मोहन) अवस्था का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और समाधि (सम्मोहन) अवस्था का प्रत्यक्ष कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: सुख।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि सुख का भी एक प्रत्यक्ष कारण होता है; यह प्रत्यक्ष कारण के बिना नहीं होती। और सुख का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: शांति।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि शांति (पसाद्धि/प्रशब्धि) का भी एक निकटतम कारण है; यह निकटतम कारण के बिना नहीं है। और शांति का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: परमानंद (पीति/प्रीति)।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि परमानंद (पीति/प्रीति) का भी एक निकटतम कारण है; यह निकटतम कारण के बिना नहीं है। और परमानंद का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: प्रसन्नता।

"मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि प्रसन्नता का भी एक निकटतम कारण है; यह निकटतम कारण के बिना नहीं है। और प्रसन्नता का निकटतम कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: विश्वास।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि आस्था का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और आस्था का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: दुख। 69

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि दुख का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और दुख का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: पुनर्जन्म।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि पुनर्जन्म का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और पुनर्जन्म का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: अस्तित्व का कारक (भाव)।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि अस्तित्व के कारक (भाव) का भी एक निकटवर्ती कारण है; यह निकटवर्ती कारण के बिना नहीं होती। और अस्तित्व के कारक (भाव) का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि आसक्ति का भी एक तात्कालिक कारण होता है; यह तात्कालिक कारण के बिना नहीं होती। और आसक्ति का तात्कालिक कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: तृष्णा (तन्हा संस्कृत में तृष्णा)।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि तृष्णा (तन्हा संस्कृत में तृष्णा) का भी एक तात्कालिक कारण होता है; यह तात्कालिक कारण के बिना नहीं होती। और तृष्णा का तात्कालिक कारण क्या है? यह कहा जाना चाहिए: वेदना (संवेदना)।

"वेदना के लिए, यह कहना चाहिए: इंद्रियों का विषय से संपर्क। संपर्क के लिए: छह इंद्रिय शक्तियाँ। छह इंद्रिय शक्तियों के लिए: मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप)। मन और शरीर के स्वरूप के लिए: चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)। चेतना के लिए: संस्कार (आक्रामक व्यवहार)।

" "मैं कहता हूँ, भिक्षुओं, कि संस्कार (व्यवहार) का भी एक निकटवर्ती कारण है; उनमें निकटवर्ती कारण का अभाव नहीं है। और संस्कार (व्यवहार) का निकटवर्ती कारण क्या है? यह कहना चाहिए: अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या)।"

इस प्रकार, भिक्षुओं, अज्ञान को मुख्य कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार-आधार) को मुख्य कारण मानकर चेतना उत्पन्न होती है; चेतना को मुख्य कारण मानकर मन-शरीर रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है; मन-शरीर रूप (नामरूप) को मुख्य कारण मानकर छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों को मुख्य कारण मानकर स्पर्श उत्पन्न होता है; स्पर्श (फस/स्पर्श) को मुख्य कारण मानकर संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; संवेदना (वेदना) को मुख्य कारण मानकर तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) उत्पन्न होती है; तृष्णा को मुख्य कारण मानकर आसक्ति उत्पन्न होती है; आसक्ति को मुख्य कारण मानकर अस्तित्व (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व (भावो) को मुख्य कारण मानकर पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म को मुख्य कारण मानकर दुख उत्पन्न होता है; दुख को मुख्य कारण मानकर विश्वास उत्पन्न होता है; विश्वास को मुख्य कारण मानकर प्रसन्नता उत्पन्न होती है; प्रसन्नता को मुख्य कारण मानकर निकटवर्ती कारण, आनंद (पीति/प्रीति); आनंद को निकटवर्ती कारण मानकर, शांति (पसद्धि/प्रशब्धि); शांति को निकटवर्ती कारण मानकर, सुख (सुख); सुख को निकटवर्ती कारण मानकर, समाधि (सम्मोहन) अवस्था; समाधि (सम्मोहन) अवस्था को निकटवर्ती कारण मानकर, धर्मो (नियम, मार्ग) का वास्तविक ज्ञान और दर्शन; धर्मों के वास्तविक ज्ञान और दर्शन को निकटवर्ती कारण मानकर, घृणा (निब्बिद); घृणा को निकटवर्ती कारण मानकर, वैराग्य; वैराग्य को निकटवर्ती कारण मानकर, मुक्ति (विमुक्ति/विमुक्ति); मुक्ति को निकटवर्ती कारण मानकर, विनाश का ज्ञान (खयाल/क्षय)।

"जैसे, भिक्षुओं, जब पर्वत की चोटी पर भारी मात्रा में वर्षा होती है, तो पानी ढलान के साथ बहता हुआ दरारों, नालों और छोटी नदियों को भर देता है; इनके भर जाने से तालाब भर जाते हैं; ये सब भर जाने पर झीलें भर जाती हैं; ये सब भर जाने पर नदियाँ भर जाती हैं; और ये सब भर जाने पर विशाल सागर भर जाता है; 70

इसी प्रकार, अज्ञान को मुख्य कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधार) को मुख्य कारण मानकर चेतना उत्पन्न होती है... मुक्ति को मुख्य कारण मानकर विनाश का ज्ञान (खयाल/क्षय) उत्पन्न होता है।

---

24. अन्य संप्रदायों के तपस्वी (अन्नतित्तीय संप्रदाय)
राजगृह में बांस के वन (वेलुवन) में।
(i)

फिर, सुबह, पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। तब उन्हें यह विचार आया: "राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। मुझे अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में जाना चाहिए।"

तब पूज्य सारिपुत्त अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गए। उन्होंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए। तब तपस्वियों ने उससे कहा:

“मित्र सारिपुत्त, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख दूसरों द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरों दोनों द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, जो कर्म के समर्थक हैं, मानते हैं कि दुख संयोगवश उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरों द्वारा। 71 अब, मित्र सारिपुत्त, तपस्वी गौतम इस विषय में क्या कहते हैं? वे क्या सिखाते हैं? यदि हमें तपस्वी गौतम द्वारा कही गई बात को ही बताना है और तथ्यों के विपरीत कोई गलत व्याख्या नहीं करनी है, तो हमें कैसे उत्तर देना चाहिए? और हमें धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे समझाना चाहिए ताकि हमारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार न बने?” 72

"मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि दुख आश्रित रूप से उत्पन्न होता है। किस पर आश्रित? इंद्रियों के संपर्क (विषय से स्पर्श) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह भगवान (बुद्ध) के कथन को ही व्यक्त कर रहा होगा और उन्हें तथ्य के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"मित्रों, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, वह भी संपर्क के कारण होता है (पच्चाय)। 73 इसी प्रकार, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, वह भी

संपर्क के कारण होता है (पच्चाय)। इसके अलावा, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों के द्वारा उत्पन्न होता है, वह भी संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के कारण होता है। [34] इसके अलावा, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख संयोगवश उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं और न ही दूसरे के द्वारा, वह भी संपर्क (पच्चाय) के कारण होता है।

"मित्रों, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, उनके लिए संपर्क के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है। इसी प्रकार, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, उनके लिए संपर्क के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है। इसी प्रकार, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होता है, उनके लिए संपर्क के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है। इसी प्रकार, कर्म के समर्थक उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो यह मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा, उनके लिए संपर्क (फस/स्पर्श) के बिना कुछ भी अनुभव करना असंभव है।"

(ii)

पूज्य आनंद ने पूज्य सारिपुत्त और अन्य संप्रदायों के तपस्वियों के बीच यह वार्तालाप सुना। फिर, जब वे राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए पैदल यात्रा करके लौटे, तो भोजन करने के बाद वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को पूज्य सारिपुत्त और अन्य संप्रदायों के उन तपस्वियों के बीच हुई पूरी बातचीत बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"अच्छा, अच्छा, आनंद! सही उत्तर देने वाला कोई भी व्यक्ति सारिपुत्त के समान ही उत्तर देगा। मैंने कहा है, आनंद, कि दुख आश्रितता से उत्पन्न होता है। किस पर आश्रित? स्पर्श (संपर्क) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह मेरे कहे हुए को ही दोहरा रहा होगा और मुझे तथ्य के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है... और जो मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी अन्य द्वारा, वह भी स्पर्श (संपर्क) के कारण होता है।"

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है... और जो मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी और द्वारा, उनके लिए बिना संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के किसी भी चीज का अनुभव करना असंभव है।"

"एक बार, आनंद, मैं यहीं राजगृह में, बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहा था। फिर सुबह, मैंने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए राजगृह में प्रवेश किया। तभी मेरे मन में विचार आया: 'राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। मुझे दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में जाना चाहिए।' तब मैं दूसरे संप्रदायों के तपस्वियों के उद्यान में गया। मैंने उन तपस्वियों से अभिवादन किया और अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर मैं एक तरफ बैठ गया। तब तपस्वियों ने मुझसे कहा, जब मैं एक तरफ बैठा था: ... (तपस्वियों ने वही प्रश्न पूछा जो उन्होंने सारिपुत्त से पूछा था और उन्हें वही उत्तर मिला) ... बिना स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) के उनका अनुभव करना असंभव है।"

"यह अद्भुत है, आदरणीय महोदय! यह आश्चर्यजनक है, आदरणीय महोदय! कैसे संपूर्ण अर्थ एक ही वाक्य में व्यक्त किया जा सकता है! क्या इसी अर्थ को विस्तार से, गहन और निहितार्थों से भरपूर तरीके से व्यक्त किया जा सकता है?" 74

"तो फिर, आनंद, आप स्वयं ही इस विषय को स्पष्ट करें।"

"आदरणीय महोदय, यदि वे मुझसे पूछें: 'मित्र आनंद, वृद्धावस्था और मृत्यु का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे जन्म लेता है और उत्पन्न होता है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा:
'मित्रों, वृद्धावस्था और मृत्यु का स्रोत पुनर्जन्म है, पुनर्जन्म ही इसकी उत्पत्ति है; यह पुनर्जन्म से जन्म लेता है और उत्पन्न होता है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा। [37]

"आदरणीय महोदय, यदि वे मुझसे पूछें: 'मित्र आनंद, पुनर्जन्म का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे जन्म लेता है और उत्पन्न होता है?' इस प्रकार पूछे जाने पर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'मित्रों, पुनर्जन्म का स्रोत और मूल तत्व अस्तित्व का कारक (भावो) है; यह अस्तित्व के कारक

(भावो) से ही उत्पन्न होता है... अस्तित्व के कारक (भावो) का स्रोत आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) है... आसक्ति का स्रोत तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) है... तृष्णा का स्रोत वेदना (संवेदना) है... वेदना का स्रोत स्पर्श (संपर्क) है... संपर्क का स्रोत और मूल तत्व छह इंद्रिय शक्तियां हैं; यह छह इंद्रिय शक्तियों से ही उत्पन्न होता है। लेकिन छह इंद्रिय शक्तियों के अंत (निरोध) से संपर्क का भी अंत हो जाता है; स्पर्श के समाप्त होने पर, वेदना समाप्त हो जाती है; वेदना समाप्त होने पर, तृष्णा समाप्त हो जाती है; तृष्णा समाप्त होने पर, आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति समाप्त होने पर, भाव समाप्त हो जाता है; भाव समाप्त होने पर, पुनर्जन्म समाप्त हो जाता है; पुनर्जन्म समाप्त होने पर, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार इस समस्त दुःख का अंत हो जाता है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, आदरणीय महोदय, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा। (प्रश्न 1 और 2 के समान)

25.भूमिजा
सावत्थी में।
(i)

फिर, शाम को, पूज्य भूमिजा एकांतवास से बाहर आए और पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे 75 उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से अभिवादन किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“मित्र सारिपुत्त, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख दूसरों द्वारा उत्पन्न होते हैं; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं और दूसरों दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण, कर्म के समर्थक, मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरों द्वारा। 76 हे मित्र सारिपुत्त, इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं? वे क्या शिक्षा देते हैं? यदि हमें भगवान (बुद्ध) द्वारा कही गई बातों को ही बताना है और उन्हें तथ्यों के विपरीत गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करना है, तो हमें कैसे उत्तर देना चाहिए?” और हमें धम्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे समझाना चाहिए ताकि हमारे कथन के किसी भी तर्कसंगत परिणाम से आलोचना का कोई आधार न मिले?

"मित्र, भगवान (बुद्ध) ने कहा है कि सुख और दुख आश्रितता से उत्पन्न होते हैं। किस पर आश्रित? इंद्रियों के संपर्क (फस/स्पर्श) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह भगवान (बुद्ध) के कथन को ही व्यक्त कर रहा होगा और तथ्य के विपरीत कोई गलत व्याख्या नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"मित्र, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं, और जो मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह संपर्क के कारण (पच्चय) होता है।"

"इसमें, हे मित्रों, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं, जो यह मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो यह मानते हैं कि सुख और दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो यह मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होते हैं, और जो यह मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह असंभव है कि वे स्पर्श के बिना किसी भी चीज का अनुभव करेंगे।"

(ii)

आदरणीय आनंद ने आदरणीय सारिपुत्त और आदरणीय भूमिजा के बीच यह बातचीत सुनी। फिर वे भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और भगवान (बुद्ध) को आदरणीय सारिपुत्त और आदरणीय भूमिजा के बीच हुई पूरी बातचीत बताई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]
"अच्छा, अच्छा, आनंद! सही उत्तर देने वाला कोई भी व्यक्ति सारिपुत्त के समान ही उत्तर देगा। मैंने कहा है, आनंद, कि सुख और दुख आश्रितता से उत्पन्न होते हैं। किस पर आश्रित? स्पर्श (संपर्क) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह मेरे कहे हुए वचन को ही दोहरा रहा होगा और मुझे तथ्य के विपरीत किसी बात से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं, जो मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं... और जो मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं... प्रत्येक मामले में यह स्पर्श (संपर्क) के कारण होता है।"

"इसमें, आनंद, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में, जो कर्म के समर्थक हैं और मानते हैं कि सुख और दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं... और जो मानते हैं कि सुख और दुख संयोगवश उत्पन्न होते हैं... प्रत्येक मामले में यह असंभव है कि वे बिना संपर्क (फस/स्पर्श) के किसी भी चीज का अनुभव करेंगे।

(iii)

"आनंद, जब शरीर होता है, तो शारीरिक संज्ञानात्मक-जागरूकता के कारण सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं; जब वाणी होती है, तो वाणी संज्ञानात्मक-जागरूकता के कारण सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं; जब मन होता है, तो मानसिक संज्ञानात्मक-जागरूकता के कारण सुख और दुख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं - और अज्ञान (अविज्जा संस्कृत. अविद्या) इसका कारण है।" 77

"आनंद, या तो स्वयं की पहल पर, व्यक्ति वह शारीरिक संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न करता है जिसके कारण सुख और दुःख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं; या दूसरों के उकसावे पर, व्यक्ति वह शारीरिक संस्कार (व्यवहार) उत्पन्न करता है जिसके कारण सुख और दुःख आंतरिक रूप से उत्पन्न होते हैं। 78

हे आनंद, या तो व्यक्ति स्वयं अपनी पहल पर वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं; या दूसरों के कहने पर वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं। हे आनंद, या तो जानबूझकर वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं; या अनजाने में वह मौखिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं।

हे आनंद, या तो व्यक्ति स्वयं अपनी पहल पर वह मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं; या दूसरों के कहने पर वह मानसिक संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) उत्पन्न करता है जिससे आंतरिक रूप से सुख और दुःख उत्पन्न होते हैं। हे आनंद, या तो जानबूझकर, व्यक्ति उस मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार) को उत्पन्न करता है जिसके कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं; या अनजाने में, व्यक्ति उस मानसिक संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आधार) को उत्पन्न करता है जिसके कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं।

"अज्ञान इन अवस्थाओं में समाहित है। 80 परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त हो जाने और निरोध के साथ, वह शरीर (पच्चय) जो आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न करता है, अस्तित्वहीन हो जाता है; वह वाणी (पच्चय) जो आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न करती है, अस्तित्वहीन हो जाती है; वह मन (मन) जो आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न करता है, अस्तित्वहीन हो जाता है। 81 वह क्षेत्र (क्षेत्र) अस्तित्वहीन हो जाता है, वह स्थान (स्थान) अस्तित्वहीन हो जाता है, वह इंद्रिय (इंद्रिय) अस्तित्वहीन हो जाती है, वह आधार (आधार) अस्तित्वहीन हो जाता है जिसके कारण आंतरिक रूप से सुख और दुख उत्पन्न होते हैं।" 82

---

26. उपवन
सावत्थी में, पूज्य उपवन भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 83

“पूज्यवर, कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख दूसरे के द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों के द्वारा उत्पन्न होता है; कुछ तपस्वी और ब्राह्मण मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न होता है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा। अब, पूज्यवर, इस विषय में भगवान (बुद्ध) क्या कहते हैं? वे क्या सिखाते हैं? यदि हमें भगवान (बुद्ध) द्वारा कही गई बातों को ही बताना है और उन्हें तथ्य के विपरीत किसी भी बात से गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं करना है, तो हमें कैसे उत्तर देना चाहिए? और हमें धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार कैसे व्याख्या करनी चाहिए ताकि हमारे कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार न बने?”

[बुद्ध:] "उपवन, मैंने कहा है कि दुख आश्रित रूप से उत्पन्न होता है। किस पर आश्रित? स्पर्श (संपर्क) पर आश्रित। यदि कोई इस प्रकार बोले तो वह मेरे कहे हुए को ही दोहरा रहा होगा और तथ्य के विपरीत कोई गलत व्याख्या नहीं कर रहा होगा; वह धम्म के अनुसार व्याख्या कर रहा होगा, और उसके कथन का कोई भी तर्कसंगत परिणाम आलोचना का आधार नहीं बनेगा।

"उपवन, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह स्पर्श (संपर्क) के कारण होता है।"

"उपवन में, उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के मामले में जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख दूसरे द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख स्वयं और दूसरे दोनों द्वारा उत्पन्न होता है, और जो यह मानते हैं कि दुख संयोगवश उत्पन्न हुआ है, न तो स्वयं द्वारा और न ही दूसरे द्वारा - प्रत्येक मामले में यह असंभव है कि वे स्पर्श के बिना किसी भी चीज का अनुभव करेंगे।"

---

27. कारण (पक्काया सं. प्रत्यय)
सावत्थी में [बुद्ध:] "भिक्षुओं, अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है... (जैसा कि 1 में है)। यही इस समस्त दुख का मूल है।

" "और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है? विभिन्न प्राणियों की वृद्धावस्था... (जैसा कि 2 में है)... इस प्रकार इस वृद्धावस्था और इस मृत्यु को एक साथ वृद्धावस्था और मृत्यु कहा जाता है। पुनर्जन्म के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है; पुनर्जन्म के निवारण (निरोध) के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण होता है। यही आर्य अष्टांगिक मार्ग वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले जाता है।" अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, पुनर्जन्म क्या है?... अस्तित्व का कारक (भावो)?... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)?... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)?... संवेदना (वेदना)?... इंद्रियों का विषय से संपर्क (फस/स्पर्श)?... छह इंद्रियां?... मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)?... चेतना?... संस्कार (व्यवहार-आधार)? ये तीन प्रकार के संस्कार (व्यवहार-आधार) हैं: शारीरिक संस्कार (व्यवहार-आधार), मौखिक संस्कार (व्यवहार-आधार), मानसिक संस्कार (व्यवहार-आधार)। अज्ञान के उत्पन्न होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) उत्पन्न होते हैं। अज्ञान के समाप्त होने से संस्कार (व्यवहार-आधार) समाप्त हो जाते हैं। यही आर्य अष्टांगिक मार्ग मोक्ष की ओर ले जाता है। संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का निवारण; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सत्त्व) अवस्था (देखें SN5.8)।

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार कारण को समझ लेता है; इस प्रकार कारण के उद्गम को समझ लेता है; इस प्रकार कारण के निवारण को समझ लेता है; इस प्रकार कारण के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, 84 तब वह दृष्टि में सिद्ध, दृष्टि में सिद्ध, इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका, इस सच्चे धम्म को (ध्यान, पस्सति में, विपश्यना ध्यान में) देखने वाला, प्रशिक्षु का ज्ञान रखने वाला, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखने वाला, धम्म की धारा में प्रवेश कर चुका, मर्मस्पर्शी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला श्रेष्ठ, जो अमरता (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ रूप से खड़ा है, कहलाता है।" 85

---

28. भिक्षु (संस्कृत: भिक्षु, साधु)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "यहाँ, भिक्षु (भिक्षु) वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को समझते हैं। वे पुनर्जन्म... अस्तित्व के कारक (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; फस/स्पर्श)... छह इंद्रियाँ... मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को समझते हैं।

"और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है?... (जैसा कि पिछले सूत्र 27 में) ... केवल यही आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) की समाप्ति की ओर ले जाता है; अर्थात्, सही दृष्टिकोण, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था (देखें एसएन 5.8)।

जब, भिक्षुओं, कोई भिक्षु इस प्रकार वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है; जब वह पुनर्जन्म... अस्तित्व के कारक (भावो)... आसक्ति... तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... स्पर्श (फस्सा/स्पर्श)... छह इंद्रियों... मन-शरीर के स्वरूप (नामरूप)... चेतना... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार)... इनके उद्भव, इनके निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध भिक्षु कहलाता है, जो इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका है, जो (ध्यान में, पस्सति संदर्भ: विपश्यना ध्यान में) इस सच्चे धम्म को देखता है, जो प्रशिक्षु का ज्ञान, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखता है, जो ज्ञान की धारा में प्रवेश कर चुका है। धम्म, एक महान व्यक्ति है जो गहन प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से परिपूर्ण है, जो अमरता की अवस्था (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ता से खड़ा है।

---

29. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों को जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को पूर्णतः नहीं समझते; 86 जो पुनर्जन्म... अस्तित्व के कारक (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना

(वेदना)... संपर्क (इंद्रियों का वस्तु से संपर्क; फस/स्पर्श)... छह इंद्रिय शक्तियाँ... मन-शरीर का स्वरूप (नामरूप)... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को पूर्णतः नहीं समझते: ये मैं इन पूजनीय भिक्षुओं को तपस्वियों में श्रेष्ठ या ब्राह्मणों में श्रेष्ठ नहीं मानता, और न ही ये पूज्य भिक्षु स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य को प्राप्त कर पाते हैं।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को पूर्णतः समझते हैं; जो पुनर्जन्म... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), उसके उद्भव, निवारण और निवारण के मार्ग को पूर्णतः समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ मानता हूँ, और न ही ये पूजनीय भिक्षु स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य को प्राप्त कर पाते हैं।

---

30. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] “भिक्षुओं (सन्यासियों), उन तपस्वियों या ब्राह्मणों के लिए जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: उनके लिए वृद्धावस्था और मृत्यु से परे जाकर निवास करना असंभव है। उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए जो पुनर्जन्म... अस्तित्व का कारक (भावो)... आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... स्पर्श (फस/स्पर्श)... छह इंद्रियां... नामरूप... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार), इनके उद्भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: उनके लिए वृद्धावस्था और मृत्यु से परे जाकर निवास करना असंभव है।” संस्कार (व्यवहार-आधार)।

"परन्तु, भिक्षुओं, उन तपस्वियों या ब्राह्मणों के लिए जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं: यह संभव है कि वे वृद्धावस्था और मृत्यु से परे जाकर निवास करेंगे। उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के लिए जो पुनर्जन्म... संस्कार (व्यवहार-आधार), उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझते हैं: यह संभव है कि वे संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आधार) से परे जाकर निवास करेंगे।"

(iv) कलारा खटिया धारा (सं. कलारा-क्षत्रिय)
31. जो कुछ हुआ है (भूत)
एक बार भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में निवास कर रहे थे...
वहाँ भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा,
"सारिपुत्त, पारायण के 'अजिता के प्रश्न' में लिखा है: '87

जिन्होंने धम्म (मार्ग, नियम) को समझ लिया है; और यहाँ उपस्थित अनेक प्रशिक्षुओं से
उनके आचरण के बारे में पूछा गया है; विवेकशील होकर मुझे बताइए, हे महोदय।' 88

संक्षेप में कही गई इस बात का विस्तृत अर्थ कैसे समझा जाए?"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त मौन रहे। दूसरी और तीसरी बार भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा, "सारिपुत्त, पारायण के 'अजिता के प्रश्न' में लिखा है: 'जिन्होंने... मुझे बताइए, हे महोदय; ... संक्षेप में कही गई इस बात का विस्तृत अर्थ कैसे समझा जाए?" दूसरी और तीसरी बार पूज्य सारिपुत्त मौन रहे। 89

"सारिपुत्त, क्या तुम देख रहे हो: 'यह अस्तित्व में आया है'? सारिपुत्त, क्या तुम देख रहे हो: 'यह अस्तित्व में आया है'?"

[सारिपुत्त:] "आदरणीय महोदय, ध्यान में (पस्साति संदर्भ: विपश्यना ध्यान) सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है कि यह वास्तव में क्या है:
'यह अस्तित्व में आया है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इसे जैसा है वैसा देखकर; 'यह अस्तित्व में आया है', व्यक्ति अस्तित्व में आई चीज़ के प्रति घृणा (निब्बिद) के उद्देश्य से, उसके लुप्त होने और निरोध (निरोध) के लिए अभ्यास कर रहा है। 90 ध्यान में सही अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है कि यह वास्तव में क्या है: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से हुई है।' 91 सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखकर: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से होती है,' व्यक्ति इसके पोषण से उत्पन्न होने के प्रति घृणा उत्पन्न करने, इसके लुप्त होने और समाप्ति के लिए अभ्यास करता है। व्यक्ति (ध्यान में) सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है: 'उस पोषण के समाप्त होने के साथ, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्त हो जाता है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखकर: 'उस पोषण के समाप्त होने के साथ, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्त हो जाता है,' व्यक्ति समाप्त होने के प्रति घृणा उत्पन्न करने, इसके लुप्त होने और समाप्ति के लिए अभ्यास करता है। इसी प्रकार व्यक्ति एक प्रशिक्षु होता है।

"और हे पूज्यवर, आपने धम्म (मार्ग, नियम) को कैसे समझा है? हे पूज्यवर, व्यक्ति (ध्यान में) सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है:
'यह अस्तित्व में आया है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखने पर: 'यह अस्तित्व में आया है', जो अस्तित्व में आया है उसके प्रति घृणा (निब्बिद) के माध्यम से, उसके लुप्त होने और समाप्ति से, अनासक्ति द्वारा मुक्ति (विमुत्त संस्कृत: विमुक्त) प्राप्त होती है। ध्यान में व्यक्ति सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से हुई है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखने पर: 'इसकी उत्पत्ति उसी के पोषण से हुई है,' पोषण से इसकी उत्पत्ति के प्रति घृणा के माध्यम से, उसके लुप्त होने और समाप्ति से, अनासक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है। ध्यान में व्यक्ति सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से इसे यथार्थ रूप में देखता है: 'उस पोषण की समाप्ति के साथ, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्ति के अधीन है।' सही अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इसे जैसा है वैसा ही देखकर: 'उस पोषण के समाप्त होने से, जो अस्तित्व में आया है वह समाप्त हो जाएगा', जो समाप्त होने वाला है उसके प्रति घृणा के द्वारा, उसके लुप्त होने और समाप्त होने के द्वारा, व्यक्ति अनासक्ति से मुक्त हो जाता है। 92 इसी प्रकार से धम्म को समझा जाता है।

"इस प्रकार, आदरणीय महोदय, जब परायण के 'अजिता के प्रश्न' में कहा गया है:
'जिन्होंने धम्म को समझ लिया है; और यहां मौजूद कई ट्रेनी, उनसे उनके व्यवहार के बारे में पूछा गया है; समझदार बनकर, मुझे बताओ, सर।'

इस तरह से मैं इस बात का मतलब डिटेल में समझ पाया जो शॉर्ट में कहा गया था।"

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त!... (बुद्ध यहां पहले की तरह आदरणीय सारिपुत्त की पूरी बात दोहराते हैं)
इस तरह से इस बात का मतलब, जो शॉर्ट में कहा गया है, डिटेल में समझा जाना चाहिए।"

32. कालरा
सावत्थी में।

(i)

तब भिक्षु कालरा क्षुष्ठ्या पूज्य सारिपुत्त के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और पूज्य सारिपुत्त से कहा, "मित्र सारिपुत्त, भिक्षु मोलियाफग्गुण ने साधना त्याग दी है और निम्न लोक में लौट गए हैं।" 93
"तो निश्चय ही उस पूज्य भिक्षु को इस धर्म और अनुशासन में शांति नहीं मिली।"
"तो क्या पूज्य सारिपुत्त को इस धर्म और अनुशासन में शांति मिली है?"

[सारिपुत्त:] "मुझे कोई दुविधा नहीं है, मित्र।"

[कालरा:] "परन्तु भविष्य के बारे में, मित्र?"

[सारिपुत्त:] "मुझे कोई संदेह नहीं है, मित्र।"

तब भिक्षु कालरा क्षुष्ठ्या अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: "हे पूज्यवर, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'हे मित्रों, अस्तित्व का मूल (भावो) आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) है...'" " परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे आपसे पूछें: 'परन्तु, मित्र सारिपुत्त, आसक्ति का स्रोत क्या है...? तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे उत्पन्न होती है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर आप क्या उत्तर देंगे?" "हे पूज्यवर, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'हे मित्रों, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का स्रोत (वेदना) है, इसकी उत्पत्ति (वेदना) है; यह संवेदना (वेदना) से उत्पन्न होती है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, हे पूज्यवर, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा।" "परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे तुमसे पूछें: 'मित्र सारिपुत्त, तुम्हें कैसे पता चला, तुमने कैसे देखा कि वेदनाओं में आनंद (नंदी/आनंद) अब तुममें नहीं रहता?' - इस प्रकार पूछे जाने पर तुम क्या उत्तर दोगे?" 97 "यदि वे मुझसे यह पूछें, आदरणीय महोदय, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'मित्रों, ये तीन प्रकार की वेदनाएँ हैं। कौन सी तीन? सुखद वेदना, दुखदायी वेदना, न दुखदायी न सुखद वेदना। मित्रों, ये तीनों वेदनाएँ क्षणभंगुर हैं; जो क्षणभंगुर है वही दुख है। जब यह समझ में आया, तो वेदनाओं में आनंद (नंदी/आनंद) मुझमें नहीं रहा।' इस प्रकार पूछे जाने पर, आदरणीय महोदय, मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा।" "अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! यह उसी बात को संक्षेप में समझाने का एक और तरीका है: 'जो कुछ भी अनुभव किया जाता है वह दुख में समाहित है।'" 98 परन्तु, सारिपुत्त, यदि वे आपसे पूछें: 'मित्र सारिपुत्त, आपने किस प्रकार के उद्धार (विमोक्ष/विमोक्ष) के द्वारा इस प्रकार अंतिम ज्ञान की घोषणा की है: "मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत किया गया है, जो करना था वो हो चुका है, अब इस स्थिति में रहने के लिए और कुछ नहीं बचा है?' - इस प्रकार पूछे जाने पर आप क्या उत्तर देंगे?

"आदरणीय महोदय, आदरणीय सारिपुत्त ने आखिरी ज्ञान इस तरह बताया है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म खत्म हो गया है, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह हो गया है, इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं बचा है।'" 94

फिर भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से इस तरह कहा: "आओ, भिक्षु, सारिपुत्त को मेरे नाम से बताओ कि गुरु उसे बुला रहे हैं।"

"हाँ, आदरणीय महोदय," उस भिक्षु ने जवाब दिया, और वह आदरणीय सारिपुत्त के पास गया और उनसे कहा: "गुरु तुम्हें बुला रहे हैं, दोस्त सारिपुत्त।"

"हाँ, दोस्त," आदरणीय सारिपुत्त ने जवाब दिया, और वह भगवान (बुद्ध) के पास गया, उन्हें प्रणाम किया, और एक तरफ बैठ गया। फिर भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "क्या यह सच है, सारिपुत्त, कि तुमने आखिरी ज्ञान इस तरह बताया है: 'मैं समझता हूँ: पुनर्जन्म खत्म हो गया, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया, जो करना था वह हो गया, इस हालत के लिए और कुछ नहीं बचा'?"

"आदरणीय महोदय, मैंने बात उन शब्दों और बातों में नहीं कही।"

"सारिपुत्त, एक कुल का आदमी जिस भी तरह आखिरी ज्ञान बताता है, उसने जो बताया है उसे वैसा ही समझना चाहिए।"

"आदरणीय महोदय, क्या मैंने भी ऐसा नहीं कहा था: 'आदरणीय महोदय, मैंने बात उन शब्दों और बातों में नहीं कही'?"

"यदि, सारिपुत्त, वे आपसे पूछें: 95 'मित्र सारिपुत्त, आपने कैसे जाना, आपने कैसे देखा, कि आपने अंतिम ज्ञान इस प्रकार घोषित किया है: 'मैं समझता हूं: पुनर्जन्म नष्ट हो गया, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह किया जा चुका है, इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है' - इस प्रकार पूछे जाने पर, आप कैसे उत्तर देंगे?"

"यदि वे मुझसे यह पूछें, आदरणीय महोदय, [52] तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा: 'जिस स्रोत से पुनर्जन्म उत्पन्न होता है, उसके खाय\क्षय के साथ, मैंने समझा है: "जब [कारण] नष्ट हो जाता है, [प्रभाव] नष्ट हो जाता है।" यह समझने के बाद, मैं समझता हूं: पुनर्जन्म नष्ट हो गया, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जी लिया गया है, जो करना था वह किया जा चुका है, इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।' इस प्रकार पूछे जाने पर, आदरणीय महोदय, मैं इस तरह उत्तर दूंगा।" 96

"लेकिन, सारिपुत्त, अगर वे आपसे पूछें: 'लेकिन, दोस्त सारिपुत्त, पुनर्जन्म का सोर्स क्या है, इसकी शुरुआत क्या है, यह किससे पैदा होता है और बनता है?' - ऐसा पूछे जाने पर, आप क्या जवाब देंगे?"

"अगर वे मुझसे यह पूछें, आदरणीय सर, तो मैं इस तरह जवाब दूंगा: 'दोस्तों, पुनर्जन्म का सोर्स, फैक्टर-ऑफ-एक्सिस्टेंस (भावो) ही है; यह फैक्टर-ऑफ-एक्सिस्टेंस (भावो) से पैदा होता है और बनता है।' ऐसा पूछे जाने पर, आदरणीय सर, मैं इस तरह जवाब दूंगा।"

"लेकिन, सारिपुत्त, अगर वे आपसे पूछें: 'लेकिन, दोस्त सारिपुत्त, फैक्टर-ऑफ-एक्सिस्टेंस (भावो) का सोर्स क्या है...?' - ऐसा पूछे जाने पर, आप क्या जवाब देंगे?"
"हे पूज्यवर, यदि वे मुझसे यह प्रश्न पूछें, तो मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा: [54] 'मित्रों, आंतरिक मुक्ति के द्वारा, समस्त आसक्ति (उपादान संस. आसक्ति) के नाश (खया/क्षय) द्वारा, मैं इस प्रकार ध्यान (सतो) में लीन रहता हूँ कि मेरे भीतर दोष प्रवाहित नहीं होते और मैं स्वयं को तुच्छ नहीं समझता।' हे पूज्यवर, इस प्रकार पूछे जाने पर मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा।" 99

"अच्छा, अच्छा, सारिपुत्त! उसी बात को संक्षेप में समझाने का यह एक और तरीका है: 'मुझे तपस्वी द्वारा बताए गए दोषों के संबंध में कोई दुविधा नहीं है; मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि मैंने उनका त्याग कर दिया है।'

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, परम पूज्य अपने आसन से उठे और अपने निवास में प्रवेश कर गए।

(ii)

फिर, भगवान (बुद्ध) के चले जाने के तुरंत बाद, पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने मुझसे जो पहला प्रश्न पूछा था, उस पर मैंने पहले विचार नहीं किया था: 100 इसलिए मैं उस पर संकोच कर रहा था। लेकिन जब भगवान (बुद्ध) ने मेरे उत्तर को स्वीकार कर लिया, तो मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि भगवान (बुद्ध) मुझसे इस विषय पर विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से पूरे दिन प्रश्न पूछें, तो मैं उन्हें पूरे दिन विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकूँगा। यदि वे मुझसे इस विषय पर विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से पूरी रात, एक दिन और रात, [55] दो दिन और रात, तीन, चार, पाँच, छह या सात दिन और रात - सात दिन और रात प्रश्न पूछें, तो मैं उन्हें विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकूँगा।'"

तब भिक्षु कालरा (खत्तिया) अपने आसन से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। पास आकर उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:
"आदरणीय महोदय, आदरणीय सारिपुत्त ने सिंह की गर्जना करते हुए कहा है: 'मित्रों, भगवान (बुद्ध) ने मुझसे जो पहला प्रश्न पूछा था, उस पर मैंने पहले विचार नहीं किया था, इसलिए मैं उस पर संकोच कर रहा था। लेकिन जब भगवान (बुद्ध) ने मेरे उत्तर को स्वीकार कर लिया, तो मेरे मन में यह विचार आया: 'यदि भगवान (बुद्ध) मुझसे इस विषय पर सात दिन और सात रात तक प्रश्न पूछें, तो मैं उन्हें विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से उत्तर दे सकूँगा।'

"भिक्षु, आदरणीय सारिपुत्त ने धर्म (मार्ग, नियम) के उस तत्व (धातु) में पूर्णतः प्रवेश किया है, जिसके पूर्णतः प्रवेश से, यदि मैं उनसे इस विषय पर सात दिन और सात रात तक विभिन्न शब्दों और विभिन्न विधियों से प्रश्न पूछूँ, तो वे मुझे विभिन्न शब्दों और विधियों से उत्तर दे सकेंगे। विभिन्न शर्तों और विधियों के साथ।" 101

---

33. ज्ञान के मामले (1) (नानवत्थु संस्कृत ज्ञान-वस्तु)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, मैं तुम्हें ज्ञान के चौवालीस मामलों का उपदेश दूंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और एकाग्र रहो, मैं बोलूंगा।"
"जी, पूज्यवर," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, ज्ञान के चौवालीस प्रकार क्या हैं? वृद्धावस्था और मृत्यु का ज्ञान, इसके उद्भव का ज्ञान, इसके निवारण का ज्ञान, इसके निवारण के मार्ग का ज्ञान। पुनर्जन्म का ज्ञान... अस्तित्व के कारक (भावो) का ज्ञान... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) का ज्ञान... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) का ज्ञान... वेदना (संवेदना) का ज्ञान... स्पर्श (फस/स्पर्श) का ज्ञान... छह इंद्रियों का ज्ञान... नामरूप (मन-शरीर) का ज्ञान... चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) का ज्ञान... संस्कार (आक्रामक व्यवहार) का ज्ञान, इनके उद्भव का ज्ञान, इनके निवारण का ज्ञान, इनके निवारण के मार्ग का ज्ञान। हे भिक्षुओं, ये चौवालीस प्रकार हैं।" ज्ञान का।

"और हे भिक्षुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है?... (परिभाषा 2 में दी गई है)... इस प्रकार इस वृद्धावस्था और इस मृत्यु को एक साथ वृद्धावस्था और मृत्यु कहा जाता है। जन्म के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है। पुनर्जन्म के समाप्त होने के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु समाप्त हो जाती है। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले जाता है; अर्थात् सही दृष्टिकोण... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।"

"हे भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तो यही उसका सिद्धांत का ज्ञान है। 102 इस प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष, तत्काल प्राप्त और ज्ञात सिद्धांत के माध्यम से, 103 वह अतीत और भविष्य पर इस प्रकार विधि का प्रयोग करता है: 'अतीत में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जाना, उन सभी ने इसे ठीक उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप से जाना जिस प्रकार मैं अब जानता हूँ। भविष्य में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों को वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और निवारण के मार्ग का प्रत्यक्ष ज्ञान होगा, उन सभी ने इसे ठीक उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप से जाना जिस प्रकार मैं अब जानता हूँ।' यह उसका निहितार्थ का ज्ञान है। 104

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन दो प्रकार के ज्ञान - सिद्धांत का ज्ञान और निहितार्थ का ज्ञान - को शुद्ध और पवित्र कर लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध, दृष्टि मंत्र सिद्ध, इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका, इस सच्चे धम्म को जानने वाला, प्रशिक्षु का ज्ञान रखने वाला, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखने वाला, धम्म की धारा में प्रवेश कर चुका, मर्मस्पर्शी प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला श्रेष्ठ, अमरता की अवस्था (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ रूप से खड़ा रहने वाला श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है।"

भिक्षुओं, पुनर्जन्म क्या है?... संस्कार (व्यवहार-आदत) क्या हैं?... (परिभाषाएँ 2 में दी गई हैं)... यह आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्कार (व्यवहार-आदत) के निवारण का मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था।

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार संस्कार (अनिवार्य-व्यवहार-आदत), उनके उद्‌गम, उनके निवारण और उनके निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तो यही उसका सिद्धांत का ज्ञान है। इस प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष, प्राप्त और गूढ़ सिद्धांत के माध्यम से वह भूतकाल और भविष्यकाल पर विधि का प्रयोग करता है... यही उसका परिणाम का ज्ञान है।

"जब, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य इन दो प्रकार के ज्ञान - सिद्धांत का ज्ञान और परिणाम का ज्ञान - को शुद्ध और पवित्र कर लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध श्रेष्ठ शिष्य कहलाता है... वह जो अमरता के द्वार के समक्ष दृढ़ता से खड़ा होता है।"

---

34. ज्ञान के मामले (2) (नानवत्थु2)
श्रावस्ती में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें सत्तरह ज्ञान के विषय सिखाऊंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा।"
"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, वे सत्तरह ज्ञान के विषय क्या हैं? ज्ञान: 'वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म है।' ज्ञान: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी नहीं होती।' ज्ञान: 'पूर्वकाल में भी वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण पुनर्जन्म था।' ज्ञान: 'पूर्वकाल में भी, यदि पुनर्जन्म न होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी न होती।' ज्ञान: 'भविष्य में भी वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण जन्म होगा।' ज्ञान: 'भविष्य में भी, यदि पुनर्जन्म न हो, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी न होगी।'" यह ज्ञान: 'धर्म (मार्ग, नियम) की स्थिरता का वह ज्ञान भी विनाश (खया/क्षय), पतन, लुप्त होने और निरोध के अधीन है।' 105

"यह ज्ञान: 'पुनर्जन्म का कारण अस्तित्व का कारक (भावो) है।' ... यह ज्ञान: 'संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का कारण अज्ञान (अविज्ज सं. अविद्या) है।' यह ज्ञान: 'जब अज्ञान नहीं होता, तब संस्कार (व्यवहार) नहीं होते।' यह ज्ञान: 'अतीत में भी संस्कार (व्यवहार) का कारण अज्ञान था।' यह ज्ञान: 'अतीत में भी, यदि अज्ञान न होता, तो संस्कार (व्यवहार) नहीं होते।' यह ज्ञान: 'भविष्य में भी संस्कार (व्यवहार) का कारण अज्ञान होगा।' ज्ञान: 'भविष्य में भी, यदि अज्ञान न हो, तो संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) न होंगे।' ज्ञान: 'धम्म की स्थिरता का वह ज्ञान भी विनाश (खया/क्षय), क्षय, लुप्त होने और समाप्ति के अधीन है।'

"भिक्षुओं, इन्हें ज्ञान के सतहत्तर कारक कहा जाता है।"

नोट: यह एक अत्यंत गहन अर्थ वाला सूत्र है। सारतः इसका अर्थ यह है कि पिछले सूत्र 33 के अतिरिक्त, यदि सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त भी हो जाए, तो यह 'ज्ञान' स्वयं क्षय और विनाश (खया/क्षय) के अधीन है। इसलिए व्यक्ति को इस प्राप्त ज्ञान का 'उपयोग' करके बंधनों और बेड़ियों को तोड़ना चाहिए और अस्तित्व के कारक (भावो) से मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए ताकि वह पुनः जन्म न ले, दूसरे शब्दों में, शाश्वत आनंद की निर्वाण अवस्था प्राप्त कर सके।

---

35. अज्ञान को कारण मानकर (1) (अविज्जपच्चय 1 सं. अविद्या-प्रत्यय)
सावत्थी में, "भिक्षुओं, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है। ... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

जब उन्होंने यह कहा, तो एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"आदरणीय महोदय, वृद्धावस्था और मृत्यु क्या है, और यह वृद्धावस्था और मृत्यु किसके लिए है?"

"यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। 106
"भिक्षु, चाहे कोई कहे, 'वृषण और मृत्यु क्या है, और यह वृद्धावस्था और मृत्यु किसके लिए है?'" या चाहे कोई कहे, 'वृषण और मृत्यु एक ही बात है, और जिसके लिए यह वृषण और मृत्यु है वह दूसरी बात है' - इन दोनों कथनों का अर्थ एक ही है; केवल शब्दों में अंतर है। यदि यह मत है कि 'आत्मा और शरीर एक ही हैं', तो ब्रह्मचर्य का जीवन संभव नहीं है; और यदि यह मत है कि 'आत्मा एक है, शरीर दूसरा है', तो ब्रह्मचर्य का जीवन संभव नहीं है। 107 इन दोनों अतिवादों में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में धम्म (मार्ग, नियम) की शिक्षा देते हैं: 'पुनर्जन्म को कारण मानते हुए, वृषण और मृत्यु।' "आदरणीय महोदय

, पुनर्जन्म क्या है, और यह पुनर्जन्म किसके लिए है?"

"यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "भिक्षु, चाहे कोई कहे, 'पुनर्जन्म क्या है, और यह पुनर्जन्म किसके लिए है?' या चाहे कोई कहे, 'पुनर्जन्म एक बात है, जिसके लिए यह जन्म है वह दूसरी बात है' - इन दोनों कथनों का अर्थ एक ही है; इनमें केवल शब्दों का अंतर है... इन दोनों चरम

सीमाओं की ओर झुके बिना, तथागत धम्म को मध्य मार्ग (चरम मार्ग नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अस्तित्व के कारक (भावो) को कारण मानकर जन्म होता है।'

"आदरणीय महोदय, अब अस्तित्व का कारक (भावो) क्या है, और यह अस्तित्व का कारक (भावो) किसके लिए है?"

"यह कोई मान्य प्रश्न नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "भिक्षु, चाहे कोई यह कहे कि 'अस्तित्व का कारक (भावो) क्या है, और यह अस्तित्व का कारक (भावो) किसके लिए है?'" या चाहे कोई कहे, 'अस्तित्व का कारक (भावो) एक चीज है, जिसके लिए यह अस्तित्व का कारक (भावो) है वह दूसरी चीज है' - ये दोनों कथन अर्थ में समान हैं; इनमें केवल शब्दों के प्रयोग में अंतर है... इन दोनों चरम सीमाओं की ओर झुके बिना, तथागत धम्म को मध्य मार्ग (चरम मार्ग नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) को कारण मानकर, अस्तित्व का कारक (भावो)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) को कारण मानकर, आसक्ति... वेदना (संवेदना) को कारण मानकर, तृष्णा... इंद्रियों के संपर्क (विषय से इंद्रिय का स्पर्श) को कारण मानकर, संवेदना (वेदना)... छह इंद्रियों को कारण मानकर, संपर्क (संवेदना)... मन और शरीर के रूप (नामरूप) को कारण मानकर, छह इंद्रियां... [62] चेतना को कारण मानकर, मन-शरीर रूप (नामरूप)... संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) को कारण मानकर चेतना। "

आदरणीय महोदय, संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) क्या हैं, और ये संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) किसके लिए हैं?" "

यह प्रश्न मान्य नहीं है," भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया। "भिक्षु, चाहे कोई पूछे, 'संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-अनुकूलन) क्या हैं, और ये संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन) किसके लिए हैं?'" चाहे कोई कहे, 'संस्कार (व्यवहार-आधार) एक चीज है, जिसके लिए ये संस्कार (व्यवहार-आधार) मौजूद हैं वह दूसरी चीज है' - इन दोनों कथनों का अर्थ एक ही है; इनमें अंतर केवल शब्दों के प्रयोग में है। यदि यह मत है कि 'आत्मा और शरीर एक हैं', तो ब्रह्मचर्य जीवन संभव नहीं है; और यदि यह मत है कि 'आत्मा एक चीज है, शरीर दूसरी चीज है', तो भी ब्रह्मचर्य जीवन संभव नहीं है। इन दोनों अतिवादी विचारों में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-आधार) का पालन किया जाता है।'

लेकिन अज्ञान के पूर्णतः लुप्त हो जाने और निरोध के साथ, चाहे कितने ही प्रकार के दुष्प्रचार, चालबाज़ी और दुविधाएँ क्यों न हों - 'वृषण-मृत्यु क्या है, और किसके लिए है?' या 'वृषण-मृत्यु एक बात है, जिसके लिए यह है वह दूसरी बात है,' या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं,' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरी बात है' - ये सब त्याग दिए जाते हैं, जड़ से काट दिए जाते हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिए जाते हैं, ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों।

"अज्ञान के पूर्णतः लुप्त हो जाने और उसके समाप्त हो जाने के साथ ही, चाहे कितने भी प्रकार के दुष्प्रचार, युक्ति और दुविधाएँ हों - 'पुनर्जन्म क्या है, और यह पुनर्जन्म किसके लिए है?' ... 'संस्कार क्या हैं, और ये संस्कार किसके लिए हैं?' या 'संस्कार एक ही बात है, जिसके लिए ये संस्कार हैं वह दूसरा है,' या 'आत्मा और शरीर एक ही हैं,' या 'आत्मा एक है, शरीर दूसरा है' - ये सभी त्याग दिए जाते हैं, जड़ से काट दिए जाते हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह मिटा दिए जाते हैं ताकि वे भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन न रहें।"

---

36. कारण के रूप में अज्ञान के साथ (2) (अविज्जापच्चया2 सं. अविद्या-प्रत्यय)
(यह सूत्र पिछले 35 सूत्रों के समान ही है, केवल इतना अंतर है कि इसमें भिक्षुओं को सामूहिक रूप से संबोधित किया गया है, और कोई भी ऐसा वार्ताकार नहीं है जो अनुचित प्रश्न पूछता हो। बुद्ध ने स्वयं ही अमान्य कथनों के प्रकारों का उल्लेख किया है।)

---

37. तुम्हारा नहीं (नटुम्ह)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह शरीर न तो तुम्हारा है और न ही दूसरों का। 110 यह पुराना कर्म है, जिसे चेतना द्वारा उत्पन्न और निर्मित माना जाता है, जिसे अनुभव किया जा सकता है। 111 इसमें, भिक्षुओं, प्रबुद्ध शिष्य ध्यानपूर्वक और निकटता से प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) पर ध्यान केंद्रित करते हैं, इस प्रकार: 'जब यह अस्तित्व में आता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने से वह उत्पन्न होता है। जब यह अस्तित्व में नहीं आता, तो वह अस्तित्व में नहीं आता; इसके निरोध के साथ वह समाप्त हो जाता है। अर्थात्, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विन्नाना संस्कृत: विज्ञान)... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है। लेकिन शेषफल के साथ यह लुप्त हो जाता है।" और अज्ञान के अंत से संस्कार (व्यवहार-आदत) का अंत होता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार-आदत) के अंत से चेतना का अंत होता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

---

38. जागरूकता के साथ (1) (चेतना1)
सावत्थी में।

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जागरूकता के साथ, और जो कोई प्लान बनाता है, और जिस चीज़ की ओर उसका झुकाव होता है: यह चेतना (विन्नान संस. विज्ञान) को बनाए रखने का आधार बन जाता है। जब कोई आधार होता है तो चेतना को स्थापित करने के लिए एक सहारा होता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और बढ़ जाती है, तो भविष्य में नए अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) का निर्माण होता है। जब भविष्य में नए अस्तित्व का निर्माण होता है, तो भविष्य में पुनर्जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु, दुख, विलाप, दर्द, नाराज़गी और निराशा होती है। यही इस सारे दुख की शुरुआत है। 112

"अगर, भिक्षुओं, कोई इरादा नहीं रखता है, और कोई प्लान नहीं बनाता है, लेकिन फिर भी उसका किसी चीज़ की ओर झुकाव है, तो यह चेतना को बनाए रखने का आधार बन जाता है। जब कोई आधार होता है, तो चेतना को स्थापित करने के लिए एक सहारा होता है.... यही इस सारे दुख की शुरुआत है। 113

"लेकिन, भिक्षुओं, जब कोई इरादा नहीं रखता, और कोई प्लान नहीं बनाता, और किसी चीज़ के प्रति उसका झुकाव नहीं होता, तो चेतना को बनाए रखने का कोई आधार नहीं होता। जब कोई आधार नहीं होता, तो चेतना को स्थापित करने के लिए कोई सहारा नहीं होता। जब चेतना स्थापित नहीं होती और बढ़ती नहीं है, तो भविष्य में नए अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) का कोई प्रोडक्शन नहीं होता। जब भविष्य में नए अस्तित्व का कोई प्रोडक्शन नहीं होता, तो भविष्य में पुनर्जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु, दुख, विलाप, दर्द, नाराज़गी और निराशा खत्म हो जाती है। इस तरह इस पूरे दुख का अंत (निरोध) होता है।" 114

---

39. जागरूकता के साथ (2) (चेतना2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जागरूकता के साथ, अपनी योजनाओं और अपनी प्रवृत्तियों के साथ, यह चेतना के रखरखाव का आधार बनता है (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)। जब आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण होता है। 115 मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण इंद्रियों का विषय से संपर्क होता है; संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना ... तृष्णा ... आसक्ति ... अस्तित्व का कारक (भावो) ... पुनर्जन्म होता है; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

"हे भिक्षुओं, यदि कोई इरादा न करे, कोई योजना न बनाए, परन्तु किसी ओर झुकाव रखे, तो यह चेतना के बने रहने का आधार बनता है। जब कोई आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण होता है। मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण ही छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।"

लेकिन, भिक्षुओं, जब कोई इरादा नहीं करता, कोई योजना नहीं बनाता, और किसी भी चीज़ की ओर कोई झुकाव नहीं रखता, तो चेतना के बने रहने का कोई आधार नहीं होता। जब कोई आधार नहीं होता, तो चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं होता। जब चेतना स्थापित नहीं होती और विकसित नहीं होती, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण नहीं होता। मन-शरीर रूप (नामरूप) के निरोधन के साथ ही छह इंद्रियों का भी निरोधन हो जाता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

---

40. जागरूकता के साथ (3) (चेतना3)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो भी व्यक्ति इरादा करता है, जो भी योजना बनाता है, और जिस भी ओर उसका झुकाव होता है, वही चेतना के रखरखाव का आधार बनता है (विन्नान संस्कृत विज्ञान)। जब कोई आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है। जब चेतना स्थापित हो जाती है और विकसित हो जाती है, तो झुकाव उत्पन्न होता है। जब झुकाव होता है, तो आना-जाना होता है। जब आना-जाना होता है, तो मृत्यु और पुनर्जन्म होता है। 116 मृत्यु और पुनर्जन्म होने पर, भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस संपूर्ण दुःख का मूल है।

"यदि, भिक्षुओं, कोई इरादा न करे, कोई योजना न बनाए, फिर भी किसी चीज़ की ओर झुकाव हो, तो वही चेतना के रखरखाव का आधार बनता है। जब कोई आधार होता है, तो चेतना की स्थापना के लिए सहारा मिलता है... यही इस संपूर्ण दुःख का मूल है।"

लेकिन, भिक्षुओं, जब कोई इरादा नहीं करता, कोई योजना नहीं बनाता, और किसी भी चीज़ की ओर कोई झुकाव नहीं रखता, तो चेतना के बने रहने का कोई आधार नहीं होता। जब कोई आधार नहीं होता, तो चेतना की स्थापना के लिए कोई सहारा नहीं होता। जब चेतना स्थापित नहीं होती और विकसित नहीं होती, तो कोई झुकाव नहीं होता। जब कोई झुकाव नहीं होता, तो आना-जाना नहीं होता। जब आना-जाना नहीं होता, तो मरना-मरना नहीं होता। जब मरना-मरना नहीं होता, तो भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा समाप्त हो जाती है। यही इस संपूर्ण दुःख का निरोध है।

(v) Householder Section (Gahapativaggo sans. Grihapati-varg)
41. पाँच भयानक शत्रुताएँ (1) (पंचवरभय1)
सावत्थी में। तब गृहस्थ अनाथपिंडिका भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा,

"गृहस्थ, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में पाँच भयानक शत्रुताएँ शांत हो जाती हैं, और उसमें सोतापन्न के चार गुण आ जाते हैं, और उसने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से श्रेष्ठ विधि को स्पष्ट रूप से देख लिया है और उसमें पूर्णतः प्रवेश कर लिया है, तो यदि वह चाहे तो स्वयं अपने बारे में कह सकता है: 'मैं नरक से मुक्त हो गया हूँ, पशु जगत से मुक्त हो गया हूँ, प्रेतों के लोक से मुक्त हो गया हूँ, दुख के लोक से मुक्त हो गया हूँ, बुरे गंतव्यों से मुक्त हो गया हूँ, पाताल लोक से मुक्त हो गया हूँ। मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो पाताल लोक से मुक्त है, नियति में स्थिर हूँ, और मेरा गंतव्य ज्ञान है।' 118

"वे पाँच भयानक शत्रुताएँ कौन सी हैं जो शांत हो गई हैं?" गृहस्थ, जो जीवन का विनाश करता है, ऐसे आचरण के कारण वर्तमान जीवन और भविष्य दोनों में भयंकर द्वेष उत्पन्न करता है, और वह मानसिक पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव करता है। 119 इस प्रकार, जो जीवन का विनाश करने से परहेज करता है, उसके लिए यह भयंकर द्वेष शांत हो जाता है।

जो व्यक्ति बिना दिए वस्तुएँ ग्रहण करता है... जो यौन दुराचार में लिप्त होता है... जो झूठ बोलता है... जो शराब, मदिरा और मादक पदार्थों का सेवन करता है जो आलस्य (पमादा) का आधार हैं, ऐसे आचरण के कारण उसे वर्तमान जीवन और भविष्य दोनों में भयानक शत्रुता का सामना करना पड़ता है, और वह मानसिक पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव करता है। अतः जो व्यक्ति शराब, मदिरा और मादक पदार्थों से परहेज करता है जो आलस्य का आधार हैं, उसके लिए यह भयानक शत्रुता शांत हो जाती है।

ये पाँच भयानक शत्रुताएँ हैं जो शांत हो जाती हैं।

"उसमें सोतापन्ना (धारा-प्रवेश) के चार कारक कौन से हैं? 120 हे गृहस्थ, इस प्रकार श्रेष्ठ शिष्य बुद्ध में दृढ़ विश्वास रखता है: भगवान (बुद्ध) एक अरहंत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में निपुण हैं, सौभाग्यशाली हैं, जगत के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अद्वितीय नेता हैं, देवदूतों और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध हैं, भगवान (बुद्ध) हैं।"

"वह धम्म (मार्ग, नियम) में दृढ़ विश्वास रखता है: धम्म की व्याख्या भगवान (बुद्ध) द्वारा अच्छी तरह से की गई है, प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तात्कालिक है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, लागू करने योग्य है, बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है।"

"संघ (भाईचारे) में उनका दृढ़ विश्वास इस प्रकार है: 'भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का संघ अच्छे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, सीधे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, सच्चे मार्ग का अनुसरण कर रहा है, उचित मार्ग का अनुसरण कर रहा है; अर्थात्, चार युग्मों के व्यक्ति, आठ प्रकार के व्यक्ति - भगवान (बुद्ध) के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य के योग्य है, भेंट के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, विश्व के लिए दिव्य पुण्य का अतुलनीय क्षेत्र है।" '

"उसमें श्रेष्ठों को प्रिय गुण हैं - अटूट, अक्षुण्ण, बेदाग, मुक्तिदायक, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित, अछूता, समाधि (सम्मोहन) अवस्था की ओर ले जाने वाला। 121

"ये वे चार कारक हैं जो उसमें सोतापन्ना (प्रवाह-प्रवेश) के रूप में मौजूद हैं।"

और वह श्रेष्ठ विधि क्या है जिसे उन्होंने स्पष्ट रूप से देखा है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पूरी तरह से समझ लिया है? 122 हे गृहस्थ, श्रेष्ठ शिष्य ध्यानपूर्वक प्रतीत्यसमुत्पाद (पतीच्चसमुत्पाद) पर इस प्रकार विचार करते हैं: 'जब यह विद्यमान होता है, तो वह विद्यमान होता है; इसके विद्यमान होने पर वह विद्यमान होता है। जब यह विद्यमान नहीं होता, तो वह विद्यमान नहीं होता; इसके निरोध के साथ वह विद्यमान हो जाता है। अर्थात्, अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (आक्रामक व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (आक्रामक व्यवहार) को कारण मानकर चेतना (विन्नान विज्ञान) विद्यमान होती है। ... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और विद्यमान होने से संस्कार (आक्रामक व्यवहार) विद्यमान हो जाते हैं; संस्कार (आक्रामक व्यवहार) के विद्यमान होने से चेतना विद्यमान हो जाती है। ... यही है। "इस संपूर्ण दुख के अंत का हल।"
"यह वह श्रेष्ठ विधि है जिसे उसने स्पष्ट रूप से देखा है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पूर्णतः समझ लिया है।

" "हे गृहस्थ, जब किसी श्रेष्ठ शिष्य में ये पाँच भयानक शत्रुताएँ शांत हो जाती हैं, और उसमें सोतापन्ना के ये चार गुण आ जाते हैं, और उसने इस श्रेष्ठ विधि को स्पष्ट रूप से देखा है और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से पूर्णतः समझ लिया है, तो यदि वह चाहे तो स्वयं अपने बारे में कह सकता है: मैं नरक से मुक्त हो चुका हूँ, पशु जगत से मुक्त हो चुका हूँ, प्रेतों के लोक से मुक्त हो चुका हूँ, दुख के लोक से मुक्त हो चुका हूँ, बुरे गंतव्यों से मुक्त हो चुका हूँ, पाताल लोक से मुक्त हो चुका हूँ। मैं सोतापन्ना हूँ, अब पाताल लोक से बंधा हुआ नहीं हूँ, नियति में स्थिर हूँ, और मेरा गंतव्य ज्ञान है।"

---

42. पाँच भयानक शत्रुताएँ (2) (पंचावेरभय2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि यह "कई भिक्षुओं" को संबोधित है।)

---

43. दुःख
सावत्थी में, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें दुख की उत्पत्ति और उसके निवारण के बारे में बताऊंगा। ध्यानपूर्वक सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा।" 123

"जी, आदरणीय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, दुख की उत्पत्ति क्या है? आँख और रूपों पर निर्भरता से, आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) है। संपर्क के कारण, वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण, तृष्णा उत्पन्न होती है। यही दुख की उत्पत्ति है।

कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... नाक और गंधों पर निर्भरता से... जीभ और स्वादों पर निर्भरता से... शरीर और स्पर्शनीय वस्तुओं पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से, मन-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है।" स्पर्श (संपर्क) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है... यही दुख का मूल कारण है।

भिक्षुओं, दुख का निवारण क्या है? आँख और रूपों पर निर्भर रहने से नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों के मिलन से संपर्क (फस/स्पर्श) होता है। संपर्क के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है... परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः समाप्त होने और निरोध से आसक्ति समाप्त होती है; आसक्ति समाप्त होने से भाव का निवारण होता है; भाव के निवारण से पुनर्जन्म समाप्त होता है; पुनर्जन्म समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का निवारण होता है। यही इस समस्त दुख का निवारण है। यही दुख का निवारण है।

कान और ध्वनियों पर निर्भर रहने से... मन और मानसिक चेतना पर निर्भर रहने से... जब धम्म (प्रघटनाएं) उत्पन्न होती हैं, तो मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः समाप्त होने और मिट जाने से आसक्ति समाप्त हो जाती है... अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के अंत के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही इस समस्त दुःख का अंत है। यही दुःख का देहांत है।

---

44. लोक
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें संसार की उत्पत्ति और उसके अंत के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और सचेत रहो, मैं बोलूंगा।" 124

"जी, आदरणीय," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, संसार की उत्पत्ति क्या है? आँख और रूपों पर निर्भर होकर, नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से संपर्क; स्पर्श) है। संपर्क के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा; तृष्णा के कारण आसक्ति; आसक्ति के कारण भाव; भाव के कारण पुनर्जन्म; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। हे भिक्षुओं, यही संसार की उत्पत्ति है।

कान और ध्वनियों पर निर्भर होकर... नाक और गंधों पर निर्भर होकर... जीभ और स्वादों पर निर्भर होकर... शरीर और स्पर्शनीय वस्तुओं पर निर्भर होकर... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन को संपर्क कहते हैं। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति... अस्तित्व का कारक (भाव)... पुनर्जन्म उत्पन्न होता है; पुनर्जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। भिक्षुओं, यही संसार की उत्पत्ति है।

और भिक्षुओं, संसार का नश्वर होना क्या है? आँख और रूपों पर निर्भरता से आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क कहलाता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः लुप्त होने और निरोध होने से आसक्ति

समाप्त हो जाती है; आसक्ति समाप्त होने से भाव का अंत हो जाता है; भाव का अंत होने से पुनर्जन्म समाप्त हो जाता है; पुनर्जन्म समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही समस्त दुःख का अंत है। भिक्षुओं, यही संसार का नश्वर होना है। दुनिया का अंत।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है; वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः लुप्त हो जाने और समाप्त हो जाने से आसक्ति समाप्त हो जाती है... अस्तित्व के कारक (भाव) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के अंत के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। यही इस समस्त दुःख का अंत है। हे भिक्षुओं, यही संसार का क्षय है।"

---

45. नातिका में
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) नातिका में ईंट के हॉल में निवास कर रहे थे। तब, जब भगवान (बुद्ध) एकांत में अकेले थे, उन्होंने यह धम्म (मार्ग, नियम) व्याख्या दी: 125

"आँख और रूपों पर निर्भरता से, आँख-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क (इंद्रिय का विषय से स्पर्श) है। संपर्क के कारण, संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; संवेदना (वेदना) के कारण, तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा); तृष्णा के कारण, आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से, मन-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण, संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है; तृष्णा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

"दृष्टि और रूपों पर निर्भरता से नेत्र-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उसी तृष्णा के पूर्णतः लुप्त हो जाने और निरोध (निरोध) से आसक्ति का अंत होता है; आसक्ति के अंत से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत होता है... यही इस समस्त दुख का अंत है।

"कान और ध्वनियों पर निर्भरता से... मन और मानसिक घटनाओं (धम्म) पर निर्भरता से मन-चेतना उत्पन्न होती है। तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क (फस/स्पर्श) के कारण वेदना (संवेदना) उत्पन्न होती है; वेदना (संवेदना) के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। परन्तु उस तृष्णा के पूर्णतः समाप्त होने और तृप्त होने से आसक्ति का भी अंत हो जाता है; आसक्ति के अंत से अस्तित्व के कारक (भावो) का भी अंत हो जाता है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत हो जाता है।"
उस समय एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) की बातें सुन रहा था। भगवान (बुद्ध) ने उसे वहाँ सुनते हुए देखा और उससे कहा, "क्या तुमने धम्म प्रवचन सुना, भिक्षु?"

"जी, पूज्यवर।"

"उस धम्म प्रवचन को सीखो, उसमें पारंगत हो जाओ और उसे याद रखो। वह धम्म प्रवचन ब्रह्मचर्य के मूल सिद्धांतों के लिए लाभकारी और प्रासंगिक है।"

---

46. एक ब्राह्मण (अन्नतरब्रह्मण)
सावत्थी में। तब एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वह एक तरफ बैठ गया और उनसे बोला,

"हे गुरु गौतम, क्या कर्म करने वाला और फल भोगने वाला एक ही हैं?" 126

"'कर्म करने वाला और फल भोगने वाला एक ही हैं': हे ब्राह्मण, यह एक चरम है।" [76]

"तो, हे गुरु गौतम, क्या कर्म करने वाला एक है और फल भोगने वाला दूसरा?"

“'कर्म करने वाला एक है, और परिणाम भोगने वाला दूसरा': हे ब्राह्मण, यही दूसरा चरम है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धर्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (अतिवादी नहीं) के रूप में सिखाते हैं: 'अज्ञान (अविद्या संस्कृत) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (व्यवहार) के कारण चेतना (विज्ञान संस्कृत) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः मिट जाने और निरोध के साथ संस्कार (व्यवहार) का अंत होता है; संस्कार (व्यवहार) के अंत के साथ चेतना का अंत होता है... यही इस समस्त दुख का अंत है।'

यह सुनकर उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"महान गुरु गौतम!... मैं गुरु गौतम, धम्म और भिक्षु संघ की शरण में जाता हूँ। आज से गुरु गौतम मुझे जीवन भर के लिए शरण लेने वाले गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।"

---

47. जानूसोनी
सावत्थी में, ब्राह्मण जनुस्सोनी भगवान (बुद्ध) के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर, वे एक तरफ बैठ गए और उनसे बोले: 127

“हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान है?”

“'सब कुछ विद्यमान है': हे ब्राह्मण, यह एक चरम सीमा है।”

“तो, हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान नहीं है?”

“'सब कुछ विद्यमान नहीं है': हे ब्राह्मण, यह दूसरी चरम सीमा है। इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य मार्ग (चरम नहीं) के रूप में सिखाते हैं...(जैसा कि 46 में है)।”

यह सुनकर ब्राह्मण जनुस्सोनी ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
“महान, हे गुरु गौतम! ... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।”

---

48. एक लोक-अस्तित्ववादी (लोकायटिका)
सावत्थी में। तब एक ब्राह्मण, जो विश्व-अस्तित्ववादी था, 128 भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे कहा:

"हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान है?"

"सब कुछ विद्यमान है: हे ब्राह्मण, यही सबसे प्राचीन ब्रह्मांड विज्ञान है।" 129
"तो, हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ विद्यमान नहीं है?"

"सब कुछ विद्यमान नहीं है: हे ब्राह्मण, यही दूसरा ब्रह्मांड विज्ञान है।"

"हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ एक है?" 130

"सब कुछ एक है: हे ब्राह्मण, यही तीसरा ब्रह्मांड विज्ञान है।"

"तो, हे गुरु गौतम, क्या सब कुछ अनेकता है?" 131

"सब कुछ अनेकता है: हे ब्राह्मण, यही चौथा ब्रह्मांड विज्ञान है।" इन दोनों चरम सीमाओं में से किसी की ओर झुके बिना, तथागत धम्म (मार्ग, नियम) को मध्य (मार्ग, चरम नहीं) के रूप में सिखाते हैं..."

यह सुनकर उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा;
"महान, गुरु गौतम!... आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर के लिए शरण ली है।"

---

49. महान शिष्य (1) (आर्यसवक संस्कृत आर्य-श्रवक)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, एक ज्ञानवान शिष्य यह नहीं सोचता: 'जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो वह कैसे अस्तित्व में आती है? जिसके उत्पन्न होने से वह कैसे उत्पन्न होती है? [जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं? जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या चेतना (विन्नन संस्कृत: विज्ञान) उत्पन्न होती है?] 132 जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या मन-शरीर (नामरूप) उत्पन्न होते हैं?... जब कोई चीज़ विद्यमान होती है तो क्या वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है?'

"बल्कि, भिक्षुओं, ज्ञानवान शिष्य को इस विषय में ऐसा ज्ञान होता है जो दूसरों से स्वतंत्र है: 'जब यह विद्यमान होता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने से वह उत्पन्न होता है। [जब अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) होता है, तो संस्कार (व्यवहार) उत्पन्न होते हैं। जब संस्कार (व्यवहार-आधारभूतता) होते हैं, तब चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना होती है, तब मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में आता है... जब पुनर्जन्म होता है, तब वृद्धावस्था और मृत्यु होती है।' वे इस प्रकार समझते हैं: 'इस प्रकार संसार की उत्पत्ति होती है।'

भिक्षुओं, एक ज्ञानी शिष्य यह नहीं सोचता: 'जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या वह अस्तित्व में नहीं आता? जिसके निरोध के समाप्त होने से क्या समाप्त हो जाता है? [जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते? जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या चेतना उत्पन्न नहीं होती?] जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या मन-शरीर (नामरूप) उत्पन्न नहीं होते?... जब जो अस्तित्व में नहीं है, तो क्या वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न नहीं होती?'

बल्कि, भिक्षुओं, ज्ञानी शिष्य को इस विषय में ऐसा ज्ञान होता है जो दूसरों से स्वतंत्र है: 'जब यह अस्तित्व में नहीं है, तो वह अस्तित्व में नहीं आता; इसके समाप्त होने से वह समाप्त हो जाता है। [जब अज्ञान नहीं होता (समाधि/ध्यान में), तो संस्कार (व्यवहार-आदत) उत्पन्न नहीं होते। जब संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) नहीं होते, तो (सामान्य) चेतना उत्पन्न नहीं होती।] जब कोई चेतना, मन-शरीर (नामरूप) का अस्तित्व नहीं होता... जब जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु भी नहीं होती। वह इस प्रकार समझता है: 'इस प्रकार संसार का अंत हो जाता है।'

भिक्षुओं, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य संसार की उत्पत्ति और उसके अंत को यथावत समझ लेता है, तब वह दृष्टि में सिद्ध, दृष्टि में सिद्ध, इस सच्चे धम्म (मार्ग, नियम) तक पहुँच चुका, इस सच्चे धम्म का ज्ञाता, प्रशिक्षु का ज्ञान रखने वाला, प्रशिक्षु का सच्चा ज्ञान रखने वाला, धम्म की धारा में प्रवेश कर चुका, मर्मस्पर्शी प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) वाला श्रेष्ठ, और अमरता (निर्वाण) के द्वार के समक्ष दृढ़ निश्चय पर खड़ा शिष्य कहलाता है।

---

50 महान शिष्य (2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि कोष्ठकों में दिए गए वे अंश जो कुछ संस्करणों में अनुपस्थित हैं, यहाँ सभी संस्करणों में स्पष्ट रूप से शामिल हैं।)

(vi) धारा 133 (दुक्खावग्गो संस्कृत दुःख-वर्ग) के तहत पीड़ित होना
51. गहन जांच (परिविमांसा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, यदि कोई व्यक्ति अज्ञान में डूबा हुआ पुण्य संस्कार उत्पन्न करता है, तो चेतना पुण्य संस्कार की ओर अग्रसर होती है; यदि वह अपराधार संस्कार उत्पन्न करता है, तो चेतना अपराधार संस्कार की ओर अग्रसर होती है; यदि वह अविचलित संस्कार उत्पन्न करता है, तो चेतना अविचलित संस्कार की ओर अग्रसर होती है। 136 परन्तु जब कोई भिक्षु अज्ञान का त्याग कर सच्चे ज्ञान को जागृत कर लेता है, तब अज्ञान के मिट जाने और सच्चे ज्ञान के उदय होने पर वह न तो पुण्य संस्कार उत्पन्न करता है, न अपराधार संस्कार, न अविचलित संस्कार, न ही अविचलित संस्कार। क्योंकि वह संस्कार उत्पन्न या गढ़ता नहीं है, इसलिए वह संसार में किसी भी चीज़ से आसक्ति न रखो। आसक्ति न रखने पर वह विचलित नहीं होता। 137 विचलित न होने पर वह स्वयं निर्वाण प्राप्त करता है। वह समझता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था के लिए अब और कुछ नहीं है।' यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, 138 तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे चिपके नहीं रहना है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लेना है।' यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे चिपके नहीं रहना है'; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लेना है।' यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'यह क्षणभंगुर है'; वह समझता है: 'इससे चिपके नहीं रहना है; वह समझता है: 'इसमें आनंद नहीं लिया जाता।' "यदि उसे कोई सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर उसे महसूस करता है; यदि उसे कोई पीड़ादायक अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर उसे

महसूस करता है; यदि उसे न पीड़ादायक और न ही सुखद अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह उससे विरक्त होकर उसे महसूस करता है। "जब उसे शरीर में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'मुझे शरीर में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) हो रही है।' जब उसे जीवन में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) होती है, तो वह समझता है: 'मुझे जीवन में समाप्त होने वाली अनुभूति (वेदना) हो रही है।' 139 वह समझता है: 'जीवन की समाप्ति के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, जो कुछ भी महसूस किया जाता है, उसमें आनंद न लेकर, वह यहीं ठंडा हो जाएगा; केवल शरीर के अवशेष ही शेष रह जाएंगे।' 140

"भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु पूरी तरह से जांच कर रहा हो, तो उसे दुख के पूरी तरह से खत्म होने (खाय\क्षय) के लिए किस तरह से पूरी तरह से जांच करनी चाहिए?" 134

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएं भगवान (बुद्ध) में हैं, भगवान (बुद्ध) से गाइड होकर, भगवान (बुद्ध) का सहारा लेती हैं। अच्छा होगा अगर भगवान (बुद्ध) इस बात का मतलब साफ कर दें। उनसे यह सुनकर, भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो सुनो और ध्यान से रहो, भिक्षुओं, मैं बोलूंगा।"

"हां, आदरणीय महोदय," भिक्षुओं ने जवाब दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"यहाँ, भिक्षुओं, जब वह पूरी तरह से जाँच करता है, तो एक भिक्षु इस तरह अच्छी तरह से जाँच करता है: 'दुनिया में जो कई तरह के दुख पैदा होते हैं [जिनमें] बुढ़ापा और मौत शामिल है: इस दुख का सोर्स क्या है, इसकी शुरुआत क्या है, यह किससे पैदा होता है और बनता है? जब जो मौजूद है, क्या बुढ़ापा और मौत होती है? जब जो मौजूद नहीं है, क्या बुढ़ापा और मौत नहीं होती?'

"जब वह अच्छी तरह से जाँच करता है तो वह इस तरह समझता है: दुनिया में जो कई तरह के दुख पैदा होते हैं [जिनमें] बुढ़ापा और मौत शामिल है: इस दुख का सोर्स पुनर्जन्म है, इसकी शुरुआत पुनर्जन्म से है; यह पुनर्जन्म से पैदा होता है और बनता है। जब पुनर्जन्म होता है, तो बुढ़ापा और मौत होती है; जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो बुढ़ापा और मौत नहीं होती।'

"वह बुढ़ापा और मौत को, उसकी शुरुआत को, उसके खत्म होने को (निरोध) समझता है, और उस पर जाने वाला रास्ता उसके खत्म होने के हिसाब से है। 135 वह उसी तरह प्रैक्टिस करता है और उसी के हिसाब से खुद को चलाता है। इसे भिक्षु कहते हैं जो दुख के पूरी तरह खत्म होने (खाय\क्षय) के लिए, बुढ़ापा और मौत के खत्म होने के लिए प्रैक्टिस कर रहा है।

"फिर, आगे जांच करते हुए, वह इस तरह अच्छी तरह से जांच करता है:

'इस दोबारा जन्म का सोर्स क्या है, इसका ओरिजिन क्या है, यह किससे पैदा और प्रोड्यूस होता है?... इस भावो का सोर्स क्या है?... यह चिपकना (उपादान बिना आसक्ति)?... यह चाहत?... यह सेंसेशन (वेदना)?... यह कॉन्टैक्ट (फस्सा/स्पर्श)?... ये छह सेंस फैकल्टीज़?... यह मन और शरीर का रूप (नामरूप)?... यह कॉन्शसनेस (विन्नान बिना विज्ञान)? ... इन संखारों (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) का सोर्स क्या है, उनकी शुरुआत क्या है, वे किससे पैदा होते हैं और बनते हैं? जब जो मौजूद होता है, तो संखारे (व्यवहार-कंडीशनिंग) बनते हैं? जब जो मौजूद नहीं होता, तो क्या संखारे (व्यवहार-कंडीशनिंग) नहीं बनते?'

"जब वह अच्छी तरह से जांच करता है, तो वह इस तरह समझता है:
'संखारों (व्यवहार-कंडीशनिंग) का सोर्स अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) है, अज्ञान उनका मूल है; वे अज्ञान से पैदा होते हैं और बनते हैं। जब अज्ञान होता है, तो संखारे (व्यवहार-कंडीशनिंग) बनते हैं; जब अज्ञान नहीं होता (समाधि/ज्ञान में), तो संखारे (व्यवहार-कंडीशनिंग) नहीं बनते।'

"वह संखारों (व्यवहार-कंडीशनिंग), उनके मूल, उनके खत्म होने (निरोध), और उस पर जाने वाले रास्ते को उनके खत्म होने के हिसाब से समझता है। वह उसी तरह प्रैक्टिस करता है और उसी के हिसाब से खुद को चलाता है। इसे भिक्षु कहते हैं जो दुख के पूरी तरह खत्म होने (खाय/क्षय) के लिए, संस्कार (बिहेवियर-कंडीशनिंग) को खत्म करने के लिए प्रैक्टिस कर रहा है।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति कुम्हार की भट्टी से एक गर्म मिट्टी का बर्तन निकालकर उसे समतल जमीन पर रख दे: उसकी ऊष्मा वहीं समाप्त हो जाएगी और मिट्टी के टुकड़े बच जाएंगे। ठीक उसी प्रकार, जब उसे शरीर से जुड़ी कोई अनुभूति (वेदना) होती है... जीवन से जुड़ी हुई... तो वह समझता है: 'शरीर के विखंडन के साथ, जीवन की समाप्ति के बाद, जो कुछ भी अनुभव किया जाता है, उसमें आनंद न मिलने के कारण, वह यहीं ठंडा हो जाएगा; केवल शरीर के अवशेष ही शेष रह जाएंगे।' 141

"भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या कोई भिक्षु, जिसके दोष नष्ट हो गए हों, पुण्य कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) उत्पन्न कर सकता है, या दोषपूर्ण कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) या अविचलित कर्म (अनिच्छुक व्यवहार)?" "

नहीं, पूज्यवर।"

"जब बिल्कुल भी कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) न हों, तो क्या कर्म (अनिच्छुक व्यवहार) के निरोध से चेतना (विन्नान विज्ञान) का अनुभव किया जा सकता है?" 142

"नहीं, पूज्यवर।"

"जब बिल्कुल भी चेतना न हो, तो क्या चेतना के निरोध से मन और शरीर (नामरूप) का अनुभव किया जा सकता है?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"जब बिल्कुल भी मन और शरीर (नामरूप) न हों... तो छह इंद्रियां भी नहीं होतीं।" ..... कोई संपर्क नहीं (फस्सा/स्पर्श) ... कोई संवेदना नहीं (वेदना) ... कोई लालसा नहीं (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) ... कोई आसक्ति नहीं (उपादान संस्कृत: आसक्ति) ... कोई अस्तित्व का कारक नहीं (भावो) ... कोई जन्म नहीं, पुनर्जन्म के समाप्त होने पर क्या वृद्धावस्था और मृत्यु का बोध होगा?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"अच्छा, अच्छा, भिक्षुओं! यह बिल्कुल ऐसा ही है, अन्यथा नहीं! मुझ पर विश्वास रखो, भिक्षुओं, इस पर दृढ़ संकल्प करो। इस विषय में भ्रम और संदेह से मुक्त रहो। यही दुख का अंत है।" 143

---

52. आसक्ति (उपादान)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, जिनसे चिपका जा सकता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: असक्ति) उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुःख का मूल है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बड़ी अग्नि जल रही है, जिसमें दस, बीस, तीस या चालीस लट्ठे लकड़ी जल रही है, और एक व्यक्ति समय-समय पर उसमें सूखी घास, सूखा गोबर और सूखी लकड़ी डालता है। इस प्रकार, उस पदार्थ से पोषित होकर, उससे प्रेरित होकर, वह विशाल अग्नि बहुत लंबे समय तक जलती रहेगी। ठीक उसी प्रकार, जब कोई धर्मों में सुख (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, जिनसे लगाव रखा जा सकता है, तो उसकी तृप्ति बढ़ती जाती है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल कारण है।

भिक्षुओं, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है... पुनर्जन्म का अंत हो जाता है... वृद्धावस्था-मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है। इस प्रकार इस संपूर्ण दुःख का अंत हो जाता है। 145

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बड़ी अग्नि जल रही है, जो दस, बीस, तीस या चालीस भार लकड़ी को भस्म कर रही है, और कोई व्यक्ति समय-समय पर उसमें सूखी घास, सूखा गोबर या सूखी लकड़ी नहीं डालता है। इस प्रकार, जब ईंधन की पूर्व आपूर्ति समाप्त हो जाती है, तो वह बड़ी अग्नि, और अधिक ईंधन न मिलने के कारण, पोषण से रहित होकर बुझ जाएगी। इसी प्रकार, जब कोई धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए जीवन व्यतीत करता है, जिनसे जुड़ाव रखा जा सकता है, तो व्यथा समाप्त हो जाती है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत हो जाता है।" 146

---

53. बंधन (1) (संयोजन1)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई धर्मों (नियम, मार्ग) में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए रहता है, जो बंधन उत्पन्न कर सकते हैं, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: असक्ति) उत्पन्न होती है; आसक्ति के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) उत्पन्न होता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण पुनर्जन्म होता है; जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु, दु:ख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दु:ख का मूल है।"
"मान लो, भिक्षुओं, एक तेल का दीया तेल और बाती पर निर्भर होकर जल रहा था, और एक आदमी उसमें तेल डालता और समय-समय पर बाती को ठीक करता। इस तरह, उस तेल से, उससे ईंधन पाकर, वह तेल का दीया बहुत लंबे समय तक जलता रहेगा। इसी तरह, जब कोई बांधने वाले धम्मों में आनंद (अस्सदो संस. अस्वाद) देखते हुए जीता है, तो लालसा बढ़ती है.... यही इस सारे दुख की जड़ है।

"भिक्षुओं, जब कोई बांधने वाले धम्मों में खतरा (आदिनव) देखते हुए जीता है, तो लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) खत्म हो जाती है। लालसा के खत्म (निरोध) के साथ आसक्ति खत्म हो जाती है; आसक्ति के खत्म होने के साथ, भावो का खत्म होना... पुनर्जन्म का खत्म होना... बुढ़ापा और मृत्यु, दुख, विलाप, दर्द, नाराज़गी और निराशा खत्म हो जाती है। यही इस सारे दुख का खत्म होना है।

"मान लो, भिक्षुओं, एक तेल का दीया तेल और बाती पर निर्भर होकर जल रहा है, और वह आदमी उसमें तेल नहीं डाल रहा है या समय-समय पर बाती को ठीक नहीं कर रहा है। इस तरह, जब पहले का फ्यूल खत्म हो जाता है, तो वह तेल का दीया, और फ्यूल न मिलने पर, बिना पोषण के, बुझ जाएगा। इसी तरह, जब कोई धर्म में खतरा (आदनव) देखकर जीता है जो बांध सकता है, तो लालसा खत्म हो जाती है.... इस तरह इस सारे दुख का अंत हो जाता है।"

---

54. बेड़ियाँ (2) (संयोजन2)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि उत्पत्ति और निरोध (उत्पत्ति) दोनों खंडों में उपमाएँ पहले आती हैं और उनके अनुप्रयोग बाद में।)

---

55. महान वृक्ष (1) (महारुक्खा1 संस्कृत महावृक्ष)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखता हुआ रहता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष है, जिसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाती हैं और रस ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उससे संजोकर, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहता है। उसी प्रकार, जब कोई धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखता हुआ रहता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।" 148

"हे भिक्षुओं, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में भय (आदिनाव) देखता है, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति भी समाप्त हो जाती है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत होता है।

मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को जड़ से काट देता, उसे खोदकर निकाल लेता और उसकी जड़ों को, यहाँ तक कि उसकी छोटी जड़ों और रेशों को भी, उखाड़ लेता। वह वृक्ष को टुकड़ों में काटता, टुकड़ों को फाड़ता और उन्हें पतले-पतले टुकड़ों में बदल देता। फिर वह उन टुकड़ों को हवा और धूप में सुखाता, आग में जलाता और राख इकट्ठा करता। ऐसा करने के बाद, वह राख को तेज हवा में छानता या नदी की तेज धारा में बहा देता।" इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से काट दिया जाएगा, ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया जाएगा, मिटा दिया जाएगा ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृप्ति समाप्त हो जाती है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।" 149

---

56. महान वृक्ष (2) (महारुक्खा2 संस्कृत महा-वृक्ष)
(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान ही है, सिवाय इसके कि उत्पत्ति और निरोध (उत्पत्ति) दोनों खंडों में उपमाएँ पहले आती हैं और उनके अनुप्रयोग बाद में।)

---

57. The Tree Sapling (Tarunarukkha sans. Tarun-vriksh)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ जाती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक पौधा है, और एक व्यक्ति समय-समय पर उसकी जड़ों के आसपास की जगह साफ करता है, समय-समय पर उसे अच्छी मिट्टी देता है, समय-समय पर उसे पानी देता है। उस देखभाल और पोषण से पोषित होकर, वह पौधा बढ़ता और फैलता है। उसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा बढ़ जाती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

"हे भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने (निरोध) से आसक्ति समाप्त हो जाती है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत हो जाता है।

मान लीजिए, हे भिक्षुओं, एक पौधा था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह पौधे को जड़ से काट देता... (जैसा कि 55 में है)... वह राख को तेज हवा में उड़ा देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह पौधा जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा समाप्त हो जाती है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत हो जाता है।"

---

58. मन-और-शरीर रूप (नामरूप)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है। 150 मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण ही छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।

" "मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष है, जिसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाती हैं और रस को ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उससे संजोकर, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहता है। उसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो मन-शरीर रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है... यही इस समस्त दुख का मूल कारण है।"

भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो मन और शरीर (नामरूप) का अवतरण नहीं होता। मन और शरीर (नामरूप) के निरोधन से छह इंद्रियों का भी निरोधन हो जाता है... इस प्रकार समस्त दुख का अंत होता है।

भिक्षुओं, मान लीजिए एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को जड़ से काट देता (जैसा कि अनुच्छेद 55 में है)... वह राख को तेज हवा में बिखेर देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हो।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है जो बंधन उत्पन्न कर सकते हैं, तो मन और शरीर का अवतरण (नामरूप) नहीं होता... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।"

---

59. चेतना (विन्नान सं. विज्ञान)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो चेतना का अवतरण होता है। 151 चेतना के कारण मन और शरीर का रूप (नामरूप) उत्पन्न होता है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

" "मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष है, और उसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाकर रस को ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उससे संजोकर, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहता है। उसी प्रकार, जब कोई बंधनकारी धर्मों में आनंद (असदो संस्कृत: असवाद) का अनुभव करते हुए रहता है, तो चेतना का अवतरण होता है... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो चेतना का अवतरण नहीं होता। चेतना के निरोध (निरोध) के साथ ही मन और शरीर (नामरूप) का भी निरोध हो जाता है... यही इस समस्त दुख का निरोध है।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को उसके आधार से काट देता (जैसा कि अनुच्छेद 55 में है)... वह राख को तेज हवा में बिखेर देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब कोई धर्मों में बंधन उत्पन्न करने वाले खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो चेतना का अवतरण नहीं होता... यही इस समस्त दुख का निरोध है।

---

60. कारण (निदान)

एक बार भगवान (बुद्ध) कुरुओं के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ कम्मसदम्मा नामक कुरुओं का एक नगर था। तब पूज्य आनंद भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"हे पूज्यवर! यह अद्भुत है! यह प्रतीत्यसमुत्पाद (पटिच्चसमुत्पाद) इतना गहरा और इतने अर्थपूर्ण है, फिर भी मुझे यह बिल्कुल स्पष्ट प्रतीत होता है।"

"ऐसा नहीं, आनंद! ऐसा नहीं, आनंद! यह प्रतीत्यसमुत्पाद गहरा और अर्थपूर्ण है। आनंद, इस धर्म (मार्ग, नियम) को न समझने और उसमें प्रवेश न करने के कारण ही यह पीढ़ी उलझे हुए धागे के गुच्छे, उलझी हुई घास-फूस के समान हो गई है और दुख के लोक, बुरे गंतव्यों, संसार के अधोलोक से परे नहीं जा पाती।

आनंद, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में भोग (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, तो तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) बढ़ती है। तृष्णा के कारण आसक्ति (उपदान संस्कृत: आसक्ति) उत्पन्न होती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।"

हे आनंद, मान लीजिए एक विशाल वृक्ष है, जिसकी सभी जड़ें नीचे और आर-पार जाती हुई रस को ऊपर की ओर भेजती हैं। उस रस से पोषित होकर, उसी से जीवन यापन करते हुए, वह विशाल वृक्ष बहुत लंबे समय तक खड़ा रहेगा। ठीक उसी प्रकार, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में सुख (असदो संस्कृत: असवाद) देखता है, तो तृष्णा बढ़ती है... यही इस समस्त दुख का मूल है।

हे आनंद, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में खतरा (आदिनाव) देखता है, तो तृष्णा समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने (निरोध) से आसक्ति समाप्त हो जाती है... यही इस समस्त दुख का अंत है।

"मान लीजिए, आनंद, एक विशाल वृक्ष था। फिर एक व्यक्ति फावड़ा और टोकरी लेकर आता। वह वृक्ष को जड़ से काट देता (जैसा कि अनुच्छेद 55 में है)। वह राख को तेज हवा में बिखेर देता या नदी की तेज धारा में बहा देता। इस प्रकार वह विशाल वृक्ष जड़ से कट जाता, ताड़ के ठूंठ की तरह नष्ट हो जाता, ताकि वह भविष्य में फिर से उत्पन्न न हो सके।

इसी प्रकार, आनंद, जब कोई आसक्ति रखने योग्य धर्मों में खतरे (आदिनाव) को देखते हुए निवास करता है, तो तृष्णा समाप्त हो जाती है। तृष्णा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है; आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत हो जाता है; अस्तित्व के कारक (भावो) के समाप्त होने से पुनर्जन्म का अंत हो जाता है; पुनर्जन्म के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा का अंत हो जाता है।" इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है।

(vii) महावर्ग उप-अध्याय (महावर्ग)

61. अशिक्षित (1) (अश्रुताव्य संस्कृत)

मैंने ऐसा ही सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे...

"भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक मनुष्य को चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बने इस शरीर में वृद्धि और हानि देखी जाती है, इसे ग्रहण किया जाता है और त्याग दिया जाता है। इसलिए अज्ञानी सांसारिक मनुष्य को चार महा तत्वों से बने इस शरीर के प्रति घृणा का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो सकता है।

" "परन्तु, भिक्षुओं, जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' (विन्नान संस्कृत विज्ञान) कहा जाता है, उसके प्रति अज्ञानी सांसारिक मनुष्य घृणा का अनुभव नहीं कर सकता, वह इसके प्रति वैराग्यवान नहीं हो सकता।" इसके प्रति वैराग्य धारण करके इससे मुक्त हो जाना। इसका कारण क्या है? क्योंकि लंबे समय से उसने इसे इस प्रकार धारण किया है, अपना लिया है और ग्रहण किया है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है।' 155 अतः अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति इसके प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करने में असमर्थ है, इसके प्रति वैराग्य धारण करके इससे मुक्त होने में असमर्थ है।

"हे भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति के लिए मन के बजाय चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर को अपना प्राण मानना बेहतर होगा। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बना यह शरीर एक वर्ष, दो वर्ष, तीन, चार, पाँच या दस वर्ष, बीस, तीस, चालीस या पचास वर्ष, सौ वर्ष या उससे भी अधिक समय तक स्थिर रहता है। 156 परन्तु जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' कहा जाता है, वह दिन-रात एक रूप में उत्पन्न होता है और दूसरे रूप में समाप्त हो जाता है। जैसे कोई बंदर जंगल में घूमते हुए एक शाखा को पकड़ता है, उसे छोड़ता है और दूसरी को पकड़ता है, फिर उसे छोड़ता है और तीसरी को पकड़ता है, उसी प्रकार जिसे 'मन', 'मानसिकता' और 'चेतना' कहा जाता है, वह दिन-रात एक रूप में उत्पन्न होता है और दूसरे रूप में समाप्त हो जाता है। 157

"हे भिक्षुओं, इसमें ज्ञानी श्रेष्ठ शिष्य ध्यानपूर्वक (योनिसो) चिंतन करता है।" आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुप्पदा) के लिए स्वयं इस प्रकार: 158 'जब यह विद्यमान होता है, तो वह अस्तित्व में आता है; इसके उत्पन्न होने से, वह उत्पन्न होता है।

जब इसका अस्तित्व नहीं रहता, तो उसका भी अस्तित्व नहीं होता; इसके निरोध के साथ उसका भी निरोध हो जाता है। अर्थात्, अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के कारण चेतना उत्पन्न होती है। यही इस समस्त दुख का मूल है। परन्तु अज्ञान के पूर्णतः लुप्त होने और निरोध के साथ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का निरोध हो जाता है; संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) के निरोध के साथ चेतना का निरोध हो जाता है। इसी प्रकार इस समस्त दुख का निरोध हो जाता है।

"हे भिक्षुओं, इस प्रकार देखकर, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य रूप के प्रति घृणा (निब्बिद), वेदना के प्रति घृणा, चेतना के प्रति घृणा (सन्ना संस्कृत: संज्ञा), संस्कार (व्यवहार-आदत) और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। जब वह मुक्त (विमुक्त) हो जाता है, तो उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।'"

---

62. अशिक्षित (2) (असुतव2 सं. अश्रुतव्य)

(यह सूत्र पिछले सूत्र के समान है, आरंभ से लेकर बंदर की उपमा तक। इसके बाद बंदर की उपमा को छोड़ दिया गया है और आगे इस प्रकार जारी है:)

"भिक्षुओं, अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को चार महा तत्वों (धातु) से बने इस शरीर के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त (विमुक्त संस्कृत) हो सकता है। इसका कारण क्या है? क्योंकि चार महा तत्वों से बने इस शरीर में वृद्धि और हानि देखी जाती है, इसे ग्रहण किया जाता है और त्याग दिया जाता है। इसलिए अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति को चार महा तत्वों से बने इस शरीर के प्रति घृणा का अनुभव हो सकता है; वह इसके प्रति वैराग्यवान होकर इससे मुक्त हो सकता है। "भिक्षुओं, जिस प्रकार दो जलती हुई लकड़ियों के संपर्क और घर्षण से ऊष्मा उत्पन्न होती है और अग्नि उत्पन्न होती है, परन्तु लकड़ियों को अलग करने और त्याग देने से परिणामी ऊष्मा थम जाती है और शांत हो जाती है; इसी प्रकार, सुखद अनुभव होने वाले संपर्क, पीड़ादायक अनुभव होने वाले संपर्क, न पीड़ादायक न सुखद अनुभव होने वाले संपर्क के आधार पर, एक पीड़ादायक न सुखद अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। उस पीड़ादायक न सुखद अनुभव होने वाले संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के समाप्त होने पर, संबंधित अनुभूति (वेदना) भी समाप्त हो जाती है और शांत हो जाती है। इस प्रकार देखकर, हे भिक्षुओं, दीक्षित श्रेष्ठ शिष्य स्पर्श के प्रति घृणा (निब्बिदा), वेदना के प्रति घृणा, संज्ञा के प्रति घृणा, संशय के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए वह वैराग्य का अनुभव करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह

समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में और कुछ नहीं है।'

"लेकिन, भिक्षुओं, जिसे 'मन' और 'मानसिकता' और 'चेतना (विन्नाना संस. विज्ञान)' कहते हैं, 154 - बिना सीखे दुनियावी उसके प्रति नफ़रत महसूस नहीं कर पाते, उसके प्रति उदासीन नहीं हो पाते और उससे आज़ाद नहीं हो पाते। किस वजह से? क्योंकि लंबे समय से उसने इसे इस तरह माना है, अपनाया है, और समझा है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्व है।' 155 इसलिए बिना सीखे दुनियावी उसके प्रति नफ़रत महसूस नहीं कर पाते, उसके प्रति उदासीन नहीं हो पाते और उससे आज़ाद नहीं हो पाते।

"भिक्षुओं, यह बेहतर होगा कि बिना सीखे दुनियावी मन के बजाय चार महान तत्वों (धातु) से बने इस शरीर को अपना ले। किस वजह से? क्योंकि चार महाभूतों से बना यह शरीर एक साल, दो साल, तीन, चार, पाँच या दस साल, बीस, तीस, चालीस या पचास साल, सौ साल या उससे भी ज़्यादा समय तक खड़ा रहता है। लेकिन जिसे 'मन' और 'मानसिकता' और 'चेतना' कहते हैं, वह दिन-रात एक चीज़ के रूप में पैदा होता है और दूसरी चीज़ के रूप में खत्म हो जाता है।"

[बुद्ध:] "इसमें, भिक्षुओं, सिखाया हुआ महान शिष्य योनियोनि और मनसिकर होता है, खुद आश्रित उत्पत्ति (पटिच्चसमुप्पदा) के प्रति इस तरह: 'जब यह होता है, तो वह होता है; इसके होने के साथ, वह होता है। जब यह नहीं होता है, तो वह नहीं होता है; इसके खत्म होने के साथ, वह खत्म हो जाता है।' भिक्षुओं, किसी सुखद अनुभव के लिए इंद्रिय और वस्तु के स्पर्श पर निर्भर होकर, एक सुखद अनुभूति (वेदना) होती है। सुखद अनुभव होने वाले उस संपर्क के समाप्त होने पर, तत्सम अनुभूति (वेदना) - वह सुखद अनुभूति (वेदना) जो उस संपर्क के सुखद होने पर निर्भर करती थी - समाप्त हो जाती है और कम हो जाती है। दर्दनाक अनुभव होने वाले संपर्क के आधार पर, एक दर्दनाक अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। दर्दनाक अनुभव होने वाले उस संपर्क के समाप्त होने पर, तत्सम अनुभूति (वेदना) - वह दर्दनाक अनुभूति (वेदना) जो उस संपर्क के दर्दनाक होने पर निर्भर करती थी - समाप्त हो जाती है और कम हो जाती है। न-दर्दनाक-न-सुखद के रूप में अनुभव किए जाने वाले संपर्क के निर्भरता में, न-दर्दनाक-न-सुखद अनुभूति (वेदना) उत्पन्न होती है। न-दर्दनाक-न-सुखद के रूप में अनुभव किए जाने वाले उस संपर्क के समाप्त होने के साथ, तत्सम अनुभूति (वेदना) - न-दर्दनाक-न-सुखद अनुभूति (वेदना) जो उस संपर्क (फस्सा/स्पर्श) के आधार पर उत्पन्न हुई थी, न-दर्दनाक-न-सुखद के रूप में अनुभव की जाने वाली - समाप्त हो जाती है और कम हो जाती है।

---

63. बेटे के मांस का रूपक (पुत्तमसुपमा बिना पुत्र-मांस-उपमा)
(यह एक महत्वपूर्ण सूत्र है जहाँ बुद्ध ने इस रूपक के माध्यम से अनेक घटनाओं की व्याख्या की है।)

श्रावस्ती, 160 में भगवान बुद्ध कहते हैं: "भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, स्थूल या सूक्ष्म; दूसरा, स्पर्श; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, विज्ञान। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनकी सहायता के लिए आवश्यक हैं।

(1) भोजन

"और हे भिक्षुओं, भोजन को किस प्रकार देखा जाना चाहिए? मान लीजिए एक पति-पत्नी सीमित भोजन लेकर रेगिस्तान से गुजर रहे हैं। उनके साथ उनका इकलौता पुत्र है, जो उन्हें प्रिय और प्यारा है। रेगिस्तान के बीच में ही उनका सीमित भोजन समाप्त हो जाएगा, जबकि रेगिस्तान का शेष भाग पार करना बाकी रहेगा। पति-पत्नी सोचते: 'हमारा सीमित राशन खत्म हो चुका है, और इस रेगिस्तान का बाकी हिस्सा अभी पार करना बाकी है। चलो अपने इकलौते प्यारे बेटे की बलि चढ़ा दें और उसका सूखा और मसालेदार मांस तैयार करें। अपने बेटे का मांस खाकर हम इस रेगिस्तान का बाकी हिस्सा पार कर लेंगे। हम तीनों न मरें!'

"तब, भिक्षुओं, पति-पत्नी अपने इकलौते प्यारे बेटे की बलि चढ़ाते, सूखा और भुना हुआ मांस तैयार करते, और अपने बेटे का मांस खाकर वे रेगिस्तान का बाकी हिस्सा पार कर लेते। अपने बेटे का मांस खाते हुए वे अपनी छाती पीटते और रोते: 'हे हमारे इकलौते बेटे, तुम कहाँ हो? हे हमारे इकलौते बेटे, तुम कहाँ हो?'

"हे भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं?" क्या वे उस भोजन को मनोरंजन, आनंद या शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण के लिए खाएंगे? "

नहीं, पूज्यवर।"

"क्या वे उस भोजन को केवल रेगिस्तान पार करने के लिए नहीं खाएंगे?"

"जी हाँ, पूज्यवर।" "

भिक्षुओं, मैं इसी प्रकार कहता हूँ कि पौष्टिक भोजन को देखना चाहिए। 161 जब पौष्टिक भोजन को पूरी तरह समझ लिया जाता है, तो पाँच इंद्रिय सुखों के लिए कामवासना (राग) को पूरी तरह समझ लिया जाता है। 162 जब पाँच इंद्रिय सुखों के लिए कामवासना को पूरी तरह समझ लिया जाता है, तो कोई बंधन नहीं रहता जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य इस संसार में वापस आ सके। 163

(टिप्पणी 1: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि भोजन की कमी इच्छाओं को शांत करने के लिए है, [मुझे अच्छा भोजन चाहिए], परन्तु बुद्ध के मार्ग में यह भोग के लिए नहीं है, बल्कि इसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाना चाहिए और केवल शरीर को जीवित रखने के लिए पोषण के साधन के रूप में देखा जाना चाहिए, जबकि शरीर दुखों से भरे संसार, रेगिस्तान को पार करने का साधन है। इसमें एक छुपा हुआ अर्थ भी प्रतीत होता है। जीवन देने वाला भोजन भी किसी जीव से ही आता है। अतः जब कोई ध्यानमग्न व्यक्ति ज्ञानोदय की अवस्था में समस्त जीवन के स्रोत के साथ एकात्मता का अनुभव करता है, तो वह जो भोजन ग्रहण करता है, वह भी उसी जीवन स्रोत से आता हुआ प्रतीत होता है, जो पुत्र के मांस के रूप में एक रूपक के रूप में प्रकट होता है।)

(2) संपर्क (फस्सो संस्कृत स्पर्श)

"और हे भिक्षुओं, पोषण संपर्क को कैसे देखा जाना चाहिए? मान लीजिए एक छिलका उतरी हुई गाय (घावों वाली) है। यदि वह किसी दीवार के सामने खड़ी हो, तो दीवार में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे। यदि वह किसी पेड़ के सामने खड़ी हो, तो पेड़ में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे।" उस पर। यदि वह पानी में खड़ी रहती है, तो पानी में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे। यदि वह खुली हवा में खड़ी रहती है, तो खुली हवा में रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे। वह छिलका उतरी हुई गाय (जिसके शरीर पर घाव हैं) जिस भी स्थिति में खड़ी रहती है, वहाँ रहने वाले जीव उसे कुतरेंगे।

"भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि पोषण संपर्क को इसी प्रकार देखना चाहिए। 164 जब पोषण संपर्क पूरी तरह समझ लिया जाता है, तो तीनों प्रकार की संवेदनाएँ पूरी तरह समझ ली जाती हैं। जब तीनों प्रकार की संवेदनाएँ पूरी तरह समझ ली जाती हैं, तो मैं कहता हूँ, एक श्रेष्ठ शिष्य को आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं होती है। 165

(टिप्पणी 2: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि इंद्रियों का संसार की वस्तुओं से संपर्क तीन प्रकार की संवेदनाओं को जन्म देता है: 1. सुखद, 2. अप्रिय और 3. न सुखद न अप्रिय, जिससे 'मैं अनुभव' होता है, लेकिन ये आनंद के लिए नहीं हैं; यह समाधि/सम्मोहन अवस्था से दूर, भीतर ध्यान की उपलब्धि के क्षय और हानि का कारण है, इसलिए संपर्क (फस्सा/स्पर्श) और परिणामी संवेदनाओं को वैराग्य/समभाव से समझना चाहिए। इसे समझने का एक और तरीका यह है कि संसार का इंद्रियों से संपर्क तंत्रिकाओं में संवेदनाओं या धाराओं को जन्म देता है जो बाहर से भीतर की ओर प्रवाहित होती हैं और ध्यान की जागृत अति-अवस्था में व्यवधान उत्पन्न करती हैं।)

(3) मानसिक संज्ञानात्मक-जागरूकता (मनोसंचेतना)

भिक्षुओं, पोषक तत्व मानसिक चेतना को कैसे देखा जाना चाहिए? मान लीजिए एक कोयले का गड्ढा है जो मनुष्य की ऊँचाई से गहरा है, और बिना लौ या धुएँ के सुलगते कोयलों से भरा है। एक व्यक्ति वहाँ आता है, जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, सुख की कामना करता है और दुख से विमुख है। तब दो बलवान पुरुष उसे दोनों भुजाओं से पकड़कर कोयले के गड्ढे की ओर घसीटते हैं। उस व्यक्ति की चेतना दूर जाने की होती है, उसकी लालसा दूर जाने की होती है, उसकी इच्छा दूर जाने की होती है [कोयले के गड्ढे से]। क्यों? क्योंकि वह जानता है: 'मैं इस कोयले के गड्ढे में गिर जाऊँगा और इसी कारण मेरी मृत्यु होगी या मुझे घातक कष्ट सहना पड़ेगा।' (टिप्पणी 4: यहाँ यह समझना आवश्यक है कि सांसारिक (साधारण) चेतना 'मन एवं शरीर की जागरूकता' [मैं हूँ, मैं विद्यमान हूँ] को जन्म देती है। यह साधारण 'मन एवं शरीर की जागरूकता' [मैं हूँ] पुनर्जन्म से शुरू होती है और मृत्यु की ओर बढ़ती है जहाँ इसका अंत होता है। इसलिए इसे ऐसा ही समझना चाहिए, ताकि इससे आसक्ति न हो, बल्कि बुद्ध के धम्म [मार्ग] का अनुसरण करते हुए, सद्गुण [शील], ध्यान/समाधि का उपयोग करते हुए दिव्य चेतना प्राप्त करने का प्रयास करें, जिससे दिव्य प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) प्राप्त होती है, जो भीतर निर्वाण/मुक्ति/मोक्ष की अवस्था की ओर ले जाती है, जो अविनाशी, सदा विद्यमान और शुद्ध आनंद है। इस सूत्र की विस्तृत व्याख्या अगले सूत्र 64 में की गई है। अत्तिरागा)

"इस तरह से, भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि पोषक मानसिक कॉग्निटिव-अवेयरनेस को देखा जाना चाहिए। 166 जब पोषक मानसिक कॉग्निटिव-अवेयरनेस पूरी तरह से समझ में आ जाती है, तो तीन तरह की लालसा (तन्हा रहित तृष्णा) (सुखद, अप्रिय और न सुखद न अप्रिय) पूरी तरह से समझ में आ जाती है। जब तीन तरह की लालसा पूरी तरह से समझ में आ जाती है, तो मैं कहता हूँ, एक अच्छे शिष्य को और कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। 167

(नोट 3: यहाँ यह समझना है कि दुनियावी मानसिक कॉग्निटिव-अवेयरनेस की प्रवृत्ति 'लालसा' पैदा करती है, यानी 'मैं यह करना चाहता हूँ', यह लालसा शांति के लिए नहीं है, यह तबाही का कारण है, इसलिए इससे बचना/हटाना है क्योंकि यह भी क्षय और ध्यान की उपलब्धि के नुकसान का कारण है, जो समाधि/ट्रांस अवस्था से दूर है। इसे समझने का एक और तरीका यह है कि मानसिक कॉग्निटिव-अवेयरनेस के दौरान नसों में करंट का बहाव अंदर से बाहर की ओर होता है। (4) चेतना (विन्नानम संस. विज्ञान)

"और भिक्षुओं, पोषण चेतना को कैसे देखा जाना चाहिए? मान लीजिए कि वे एक डाकू, एक अपराधी को पकड़कर राजा के सामने लाते हैं, और कहते हैं: 'भगवान, यह आदमी एक डाकू है, एक अपराधी है। इसे जो भी सज़ा चाहिए, दीजिए।' राजा उनसे कहते हैं: 'जाओ, लोगों, सुबह इस आदमी को सौ भाले मारो।' सुबह वे उसे सौ भाले मारते हैं। फिर दोपहर में राजा पूछता है: 'लोगों, वह आदमी कैसा है?' - 'अभी भी ज़िंदा है, भगवान।' - 'तो जाओ, और दोपहर में उसे सौ भाले मारो।' दोपहर में वे उसे सौ भाले मारते हैं। फिर शाम को राजा पूछता है: 'लोगों, वह आदमी कैसा है?' - 'अभी भी ज़िंदा है, भगवान।' - 'तो जाओ, और शाम को उसे सौ भाले मारो।' शाम को वे उस पर सौ भाले मारते हैं।

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या उस आदमी को तीन सौ भाले लगने पर भी दर्द और नाराज़गी महसूस होगी?"

"आदरणीय महोदय, अगर उसे एक भाला भी लगे तो भी उसे दर्द और नाराज़गी महसूस होगी, तीन सौ भालों की तो बात ही छोड़िए।"

"भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि इसी तरह से न्यूट्रिशन कॉन्शसनेस को देखा जाना चाहिए। 168 जब न्यूट्रिशन कॉन्शसनेस पूरी तरह से समझ में आ जाती है, तो मन और शरीर पूरी तरह से समझ में आ जाते हैं। जब मन और शरीर पूरी तरह से समझ में आ जाते हैं, तो मैं कहता हूँ, एक अच्छे शिष्य को और कुछ करने की ज़रूरत नहीं होती।" 169

---

64. यदि कामवासना विद्यमान हो (अथिराग संस्कृत अस्थि-राग)
(यह सूत्र पिछले सूत्र 63 की आगे की व्याख्या है। इसे व्यक्ति की दो प्रकार की अवस्थाओं से समझा जाना चाहिए, अर्थात् सांसारिक या ध्यानमग्न समाधि/समाधि)

एट सावत्थी।
[बुद्ध:] “भिक्षुओं, जो प्राणी पहले से ही अस्तित्व में हैं और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। वे चार क्या हैं? पहला, भोजन, चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म; दूसरा, इंद्रियों का विषय से संपर्क; तीसरा, मानसिक चेतना; चौथा, सांसारिक चेतना (विज्ञान)। ये चार प्रकार के पोषण हैं जो पहले से ही अस्तित्व में आ चुके प्राणियों के भरण-पोषण और पुनर्जन्म की तलाश करने वालों की सहायता के लिए हैं।

“हे भिक्षुओं, यदि भोजन के प्रति राग (कामना) हो, यदि आनंद हो, यदि तृष्णा हो, तो चेतना वहाँ स्थापित हो जाती है और विकसित होती है। 170 जहाँ कहीं भी चेतना स्थापित होती है और विकसित होती है, वहाँ मन और शरीर का अवतरण होता है (नामरूप)। 171 जहाँ समाधि की उच्च अवस्था से मन और शरीर का रूप (नामरूप) अवतरित होता है, वहाँ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का विकास होता है। 172 जहाँ संस्कार (व्यवहार) का विकास होता है, वहाँ भविष्य में पुनर्जन्म का कारण बनता है। जहाँ भविष्य में पुनर्जन्म होता है, वहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। जहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है, मैं कहता हूँ कि वह दुःख, पीड़ा और निराशा से भरी होती है।

भिक्षुओं, यदि पोषण संबंधी स्पर्श, या पोषण संबंधी मानसिक चेतना, या पोषण संबंधी चेतना की लालसा हो, यदि आनंद (नंदी/आनंद) हो, यदि तृष्णा हो, तो चेतना वहाँ स्थापित होकर विकसित होती है। जहाँ कहीं भी चेतना स्थापित होकर विकसित होती है, वहाँ समाधि की उच्च अवस्था से मन और शरीर का नामरूप उतरता है। 171 जहाँ मन और शरीर का नामरूप उतरता है, वहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) विकसित होता है। जहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) विकसित होता है, वहाँ भविष्य के नवजन्म का कारण उत्पन्न होता है। जहाँ भविष्य के नवजन्म का कारण उत्पन्न होता है, वहाँ भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है। जहाँ भविष्य का पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है, मैं कहता हूँ कि वह दुःख, पीड़ा और निराशा से भरा होता है।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई कलाकार या चित्रकार, रंग, लाख, हल्दी, नील या लाल रंग का उपयोग करके, एक पॉलिश किए हुए तख्ते, दीवार या कैनवास पर किसी पुरुष या स्त्री की आकृति को उसके सभी लक्षणों के साथ पूर्ण रूप से चित्रित करता है। उसी प्रकार, यदि पौष्टिक भोजन, या पौष्टिक स्पर्श, या पौष्टिक मानसिक चेतना, या पौष्टिक चेतना की लालसा हो, यदि आनंद हो, यदि तृष्णा हो, तो चेतना वहाँ स्थापित हो जाती है और विकसित होती है। जहाँ कहीं भी चेतना स्थापित होती है और विकसित होती है... मैं कहता हूँ कि वह दुःख, पीड़ा और निराशा से युक्त होती है। 173

भिक्षुओं, यदि पौष्टिक भोजन, या पौष्टिक स्पर्श, या पौष्टिक मानसिक चेतना, या पौष्टिक चेतना की लालसा न हो, यदि आनंद न हो, यदि तृष्णा न हो, तो चेतना स्थापित नहीं होती। वहाँ चेतना स्थापित होकर विकसित नहीं होती। जहाँ मन-शरीर का अवतरण (नामरूप) नहीं होता। जहाँ मन-शरीर का अवतरण (नामरूप) नहीं होता, वहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) का विकास नहीं होता। जहाँ संस्कार (व्यवहार-आधार) का विकास नहीं होता, वहाँ भविष्य में पुनर्जन्म (पुनर्जन्म का कारण) नहीं होता। जहाँ भविष्य में पुनर्जन्म (पुनर्जन्म) नहीं होता, वहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती। जहाँ पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती, मैं कहता हूँ कि वह स्थान दुःख, पीड़ा और निराशा से रहित है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक घर या हॉल है जिसकी छत नुकीली है और उत्तर, दक्षिण और पूर्व दिशाओं में खिड़कियाँ हैं। जब सूर्योदय होता है और प्रकाश की किरण किसी खिड़की से प्रवेश करती है, तो वह कहाँ स्थापित होगी?" "

पश्चिमी दीवार पर, आदरणीय।"

"यदि पश्चिमी दीवार न हो, तो वह कहाँ स्थापित होगी?"

"पृथ्वी पर, आदरणीय।"

"यदि पृथ्वी न होती, तो यह कहाँ स्थापित होता?"

"जल पर, आदरणीय महोदय।"

"यदि जल न होता, तो यह कहाँ स्थापित होता?"
"यह कहीं भी स्थापित नहीं होगा, आदरणीय महोदय।"

"इसी तरह, भिक्षुओं, अगर पौष्टिक खाने के लिए, या पौष्टिक संपर्क के लिए, या पौष्टिक मानसिक ज्ञान-जागरूकता के लिए, या पौष्टिक चेतना के लिए कोई राग नहीं है, अगर दुनियावी चीज़ों के लिए कोई आनंद (नंदी\आनंद) नहीं है, अगर कोई तृष्णा रहित तन्हाई नहीं है, तो (सांसारिक) चेतना वहाँ स्थापित नहीं होती और बढ़ती नहीं है। जहाँ (सांसारिक) चेतना स्थापित नहीं होती और बढ़ती नहीं है, वहाँ मन-और-शरीर रूप (नामरूप) का (समाधि की ऊँची अवस्था से) कोई अवतरण नहीं होता। जहाँ मन-और-शरीर रूप (नामरूप) का अवतरण नहीं होता, वहाँ संस्कार (व्यवहार-कंडीशनिंग) का कोई विकास नहीं होता। जहाँ संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) का कोई विकास नहीं होता, वहाँ भविष्य के नए अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) का कोई निर्माण नहीं होता। जहाँ भविष्य के नए अस्तित्व का कोई निर्माण नहीं होता, वहाँ भविष्य का कोई पुनर्जन्म नहीं होता, बुढ़ापा और मौत। जहाँ भविष्य में कोई पुनर्जन्म, बुढ़ापा और मौत नहीं है, मैं कहता हूँ कि वह दुख, तकलीफ और निराशा से रहित है। 174

(नोट: यहाँ भगवान बुद्ध ने सूरज और उसकी किरणों की एक उपमा दी है जो एक घर में फैलती हैं। इसी तरह चेतना की सुपर स्टेट का अनुभव तब होता है जब किसी व्यक्ति का ध्यान दुनियावी चीज़ों जैसे कि सेंसुअल-कॉन्टैक्ट (स्पर्श), मेंटल कॉग्निशन, आम चेतना, पसंद और इच्छाओं में नहीं फँसा होता है। तब वह समाधि अवस्था में खुद में समाया रहता है और बिना किसी दाग के खुद से प्रकाशित होता है और इस तरह मुक्ति/निर्वाण के लिए फिट होता है)।

---

65. नगर (नागरा)
(बुद्ध का मार्ग मुक्ति की ओर ले जाने वाला प्राचीन मार्ग है (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति)।) सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूरी तरह से प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'अफ़सोस, यह संसार संकट में पड़ गया है, क्योंकि यह जन्म लेता है, वृद्ध होता है और मरता है, यह नष्ट होता है और पुनर्जन्म लेता है, फिर भी यह वृद्धावस्था और मृत्यु के इस कष्ट से मुक्ति नहीं समझ पाता। अब इस वृद्धावस्था और मृत्यु के कष्ट से मुक्ति कब मिलेगी?' 175

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'वृषण और मृत्यु कब अस्तित्व में आते हैं? वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण क्या है?'" तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब जन्म होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण जन्म है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है, तब पुनर्जन्म होता है? ... अस्तित्व का कारक (भावो)? ... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)? ... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)? ... संवेदना (वेदना)? ... स्पर्श (फस/स्पर्श)? ... छह इंद्रियां? ... मन और शरीर का स्वरूप

(नामरूप)? मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) किसके कारण होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई:
'जब चेतना (विन्नान सं. विज्ञान) होती है, तब मन और शरीर (नामरूप) का अस्तित्व होता है; मन और शरीर (नामरूप) का कारण चेतना है।'

तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्व में होता है तो चेतना का अस्तित्व कैसे होता है? चेतना का कारण क्या है?' तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से मुझमें प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि उत्पन्न हुई: 'जब मन और शरीर (नामरूप) का अस्तित्व होता है, तब चेतना का अस्तित्व होता है; चेतना का कारण मन और शरीर (नामरूप) है।' 176

"तब, भिक्षुओं, मुझे यह विचार आया: 'यह चेतना पीछे मुड़ जाती है; यह मन-शरीर रूप (नामरूप) से आगे नहीं बढ़ती। 177 इसी सीमा तक कोई जन्म लेता है, वृद्ध होता है, मरता है, मर जाता है और पुनर्जन्म लेता है, अर्थात् जब चेतना का कारण मन-शरीर रूप (नामरूप) होता है, और मन-शरीर रूप (नामरूप) का कारण चेतना होती है। 178 मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण छह इंद्रिय शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रिय शक्तियों के कारण स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) उत्पन्न होता है... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।"

"'उत्पत्ति, उत्पत्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, पहले कभी न सुनी गई बातों के विषय में मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

"तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या अर्थ है? किसके निरोध के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत होता है?' तब, भिक्षुओं, ध्यानमग्नता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब पुनर्जन्म नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु का क्या अर्थ है; पुनर्जन्म के समाप्त होने से वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत होता है।'

मेरे मन में यह विचार आया: 'जब अस्तित्वहीन है तो पुनर्जन्म का क्या अर्थ है?... अस्तित्व का कारक (भावो)?... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)?... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)?... वेदना (संवेदना)?'" संपर्क (फस्सा/स्पर्श)?... छह इंद्रियां?... मन-शरीर रूप (नामरूप)? किसके समाप्त होने से मन-शरीर रूप (नामरूप) का अंत होता है? तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व ज्ञान प्राप्त हुआ: 'जब चेतना नहीं होती (विन्नान संस. विज्ञान), तो मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में नहीं आता; चेतना के समाप्त होने से मन-शरीर रूप (नामरूप) का अंत होता है।'

मुझे यह विचार आया: "जब जो अस्तित्व में नहीं है, क्या चेतना अस्तित्व में नहीं आती? किसके समाप्त होने से चेतना का अंत होता है?" तब, भिक्षुओं, ध्यान (योनिसो) और मानसिक एकाग्रता (मानसिकारा) के माध्यम से, मुझे प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा एक अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई: 'जब मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) नहीं होता, तब चेतना का अस्तित्व नहीं होता; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने से चेतना का भी अंत हो जाता है।'

तब, भिक्षुओं, मुझे यह विचार आया: 'मैंने ज्ञानोदय का यह मार्ग खोज लिया है, अर्थात् मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने से चेतना का अंत हो जाता है; चेतना के समाप्त होने से मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) का अंत हो जाता है; मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप) के समाप्त होने से छह इंद्रियों का अंत हो जाता है; छह इंद्रियों के समाप्त होने से स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) का अंत हो जाता है... यही इस संपूर्ण दुख का अंत है।' 179

"'समाप्ति, समाप्ति' - इस प्रकार, भिक्षुओं, उन चीजों के संबंध में जो पहले कभी नहीं सुनी गई थीं, मुझमें दृष्टि, ज्ञान, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना), सच्चा ज्ञान और प्रकाश (आलोक) उत्पन्न हुआ।"

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति जंगल में घूमते हुए एक प्राचीन मार्ग, एक प्राचीन सड़क देखता है जिस पर अतीत में लोग चलते थे। वह उस मार्ग का अनुसरण करता है और उसे एक प्राचीन नगर, एक प्राचीन राजधानी दिखाई देती है जो अतीत में लोगों द्वारा बसाई गई थी, जिसमें उद्यान, उपवन, तालाब और प्राचीरें थीं, एक रमणीय स्थान। तब वह व्यक्ति राजा या किसी राजमंत्री को सूचित करता है: 'हे प्रभु, जान लीजिए कि जंगल में घूमते हुए मैंने एक प्राचीन मार्ग, एक प्राचीन सड़क देखी जिस पर अतीत में लोग चलते थे। मैंने उसका अनुसरण किया और मुझे एक प्राचीन नगर, एक प्राचीन राजधानी दिखाई दी जो अतीत में लोगों द्वारा बसाई गई थी, जिसमें उद्यान, उपवन, तालाब और प्राचीरें थीं, एक रमणीय स्थान। हे प्रभु, उस नगर का जीर्णोद्धार कीजिए!' फिर राजा या राजमंत्री नगर का जीर्णोद्धार करते, और कुछ समय बाद वह नगर सफल और समृद्ध हो जाता, घनी आबादी वाला, लोगों से भरा हुआ, विकास और विस्तार प्राप्त कर लेता।

“इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, मैंने अतीत के पूर्णतः प्रबुद्धों द्वारा अपनाए गए प्राचीन मार्ग, प्राचीन राह को देखा। 180 और वह प्राचीन मार्ग, वह प्राचीन राह क्या है? वह केवल यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही ध्यान (सती), सही समाधि (सम्मोहन) अवस्था। मैंने उस मार्ग का अनुसरण किया और ऐसा करने से मुझे वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्‌भव, उसके निवारण और उसके निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ। मैंने जन्म, अस्तित्व का कारक (भावो), आसक्ति (उपादान संस्कृतः आसक्ति), तृष्णा (तन्हा संस्कृतः तृष्णा), संवेदना (वेदना), स्पर्श (फस्सा/स्पर्श), छह इंद्रियों, मन और शरीर के स्वरूप (नामरूप), चेतना, संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार), उनके उद्‌गम, उनके निवारण और उनके निवारण के मार्ग को प्रत्यक्ष रूप से जाना है। 181 इन्हें प्रत्यक्ष रूप से जानकर, मैंने भिक्षुओं, भिक्षुणियों, पुरुष गृहस्थ अनुयायियों और स्त्री गृहस्थ अनुयायियों को इनकी व्याख्या की है। हे भिक्षुओं, यह पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन सफल और समृद्ध हुआ है, विस्तारित हुआ है, लोकप्रिय हुआ है, व्यापक हुआ है और देवताओं (देवदूतों) और मनुष्यों के बीच अच्छी तरह से प्रचारित हुआ है। 182

---

66. Exploration (Sammasa)

(बुद्ध का मार्ग अंतर्मुखी अन्वेषण का मार्ग है, जो चेतना की सर्वोच्च अवस्था (विन्नान संस्कृत विज्ञान) की खोज है।) मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) कुरुओं के बीच निवास कर रहे थे, जहाँ कम्मसदम्मा नामक कुरुओं का एक नगर था। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!" 183

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"क्या तुम अंतर्मुखी अन्वेषण में लगे हो, भिक्षुओं?" 184

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से कहा:
"आदरणीय महोदय, मैं अंतर्मुखी अन्वेषण में लगा हुआ हूँ।"

"तुम अंतर्मुखी अन्वेषण कैसे करते हो, भिक्षु?"

तब भिक्षु ने व्याख्या की, परन्तु उसकी व्याख्या से भगवान (बुद्ध) संतुष्ट नहीं हुए। 185 तब पूज्य आनंद ने कहा:
"अब यही समय है, हे भगवान! अब यही समय है, हे सौभाग्यशाली (सुगतो)! भगवान (बुद्ध) अंतर्मुखी अन्वेषण का उपदेश दें। भगवान (बुद्ध) से सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।" "

तो सुनो और ध्यान करो (मानसिकरो), आनंद, मैं बोलूंगा।"

"जी, पूज्यवर," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"हे भिक्षुओं, अंतर्मुखी अन्वेषण में लीन रहते हुए भिक्षु इस प्रकार अन्वेषण करते हैं: 'संसार में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुख, जिनमें वृद्धावस्था और मृत्यु प्रमुख हैं: इस दुख का स्रोत क्या है, इसकी उत्पत्ति क्या है, यह किससे उत्पन्न और पैदा होता है? जब विद्यमान होता है तो वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है? जब विद्यमान नहीं होता तो वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न नहीं होती?'" 186

"जैसे-जैसे वह अन्वेषण करता है, वह इस प्रकार समझता है: 'संसार में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुख, जिनमें वृद्धावस्था और मृत्यु प्रमुख हैं: इस दुख का स्रोत (उपधि) है, इसका उद्‌गम है; यह अधिग्रहण से उत्पन्न होता है। 187 जब अधिग्रहण होता है, तो वृद्धावस्था और मृत्यु होती है; जब अधिग्रहण नहीं होता, तो वृद्धावस्था और मृत्यु नहीं होती।'

"वह वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्‌भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के अनुरूप मार्ग को समझता है। 188 वह इसी प्रकार अभ्यास करता है और तदनुसार आचरण करता है। इसे वह भिक्षु कहा जाता है जो दुख के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण के लिए अभ्यास कर रहा है।

"फिर, अंतर्मुखी अन्वेषण में संलग्न होकर, वह इस प्रकार खोज करता है: 'इस प्राप्ति (उपाधि) का स्रोत क्या है, इसका उद्‌भव क्या है, यह किससे उत्पन्न और निर्मित होती है? जब कोई चीज विद्यमान होती है तो क्या प्राप्ति होती है? जब कोई चीज अनुपस्थित होती है तो क्या प्राप्ति नहीं होती?'

"जैसे-जैसे वह खोज करता है, वह इस प्रकार समझता है: 'प्राप्ति (उपाधि) का स्रोत (तन्हा सं. तृष्णा) है, इसका उद्भव है; यह लालसा से उत्पन्न और निर्मित होती है। जब लालसा होती है, जब लालसा नहीं होती, तब प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न होती है।

वह प्राप्ति, उसके उद्गम, उसके निवारण और निवारण के अनुरूप मार्ग को समझता है। वह उसी मार्ग का अभ्यास करता है और तदनुसार आचरण करता है। इसे वह भिक्षु कहते हैं जो दुखों के पूर्ण विनाश (खया/क्षय) और प्राप्ति के निवारण के लिए अभ्यास कर रहा है।

फिर, अंतर्मुखी होकर वह यह खोज करता है: 'जब यह लालसा उत्पन्न होती है, तो कहाँ से उत्पन्न होती है? जब यह स्थिर होती है, तो किस पर स्थिर होती है?'

खोज करते हुए वह यह समझता है: 'संसार में जो कुछ भी सुखद और मनभावन है, यहीं से यह लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) उत्पन्न होती है; यहीं पर स्थिर होती है।' 189 और संसार में कौन सी वस्तु सुखद और मनभावन है? संसार में आँख सुखद और मनभावन है: जब यह लालसा उत्पन्न होती है, तो यहीं उत्पन्न होती है; और जब यह शांत होती है, तो यहीं शांत हो जाती है। इसी प्रकार कान, नाक, जीभ, शरीर और मन सुखद और मनभावन हैं: जब यह लालसा उत्पन्न होती है, तो यहीं उत्पन्न होती है; और जब यह शांत होती है, तो यहीं शांत हो जाती है।

"भिक्षुओं, अतीत में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने संसार में सुखद और मनभावन प्रकृति वाली वस्तुओं को स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित माना, उन्होंने लालसा का पोषण किया। लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) का पोषण करने में उन्होंने प्राप्ति (उपाधि) का पोषण किया। प्राप्ति (उपाधि) का पोषण करने में उन्होंने दुख का पोषण किया। दुख का पोषण करने में वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं हुए; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं हुए; मैं कहता हूँ, वे दुख से मुक्त नहीं हुए।

भविष्य में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण संसार में सुखद और मनभावन वस्तु को स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित मानेंगे, वे तृप्ति को पोषित करेंगे। तृप्ति को पोषित करने से वे संचय को पोषित करेंगे। संचय को पोषित करने से वे दुख को पोषित करेंगे। दुख को पोषित करने से वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होंगे; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होंगे; मैं कहता हूँ, वे दुख से मुक्त नहीं होंगे।

वर्तमान में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण संसार में सुखद और मनभावन वस्तु को स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित मानेंगे, वे तृप्ति को पोषित कर रहे हैं (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)। तृप्ति को पोषित करने से वे संचय को पोषित कर रहे हैं। संचय को पोषित करने से वे दुख को पोषित कर रहे हैं। दुख को पोषित करने से वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त नहीं होते; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त नहीं होते; वे पीड़ा से मुक्त नहीं होते, मैं कहता हूँ।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक पीतल के प्याले में एक उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला पेय है, परन्तु उसमें विष मिला हुआ है। फिर एक व्यक्ति आता है, जो गर्मी से व्याकुल, थका हुआ, प्यासा और प्यासा है। वे उससे कहते हैं: 'हे प्रभु, पीतल के प्याले में रखा यह पेय उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला है, परन्तु इसमें विष मिला हुआ है। यदि आप चाहें तो इसे पी लें। यदि आप इसे पीते हैं, तो यह आपको अपने रंग, सुगंध और स्वाद से प्रसन्न करेगा, परन्तु इसे पीने से आपकी मृत्यु हो जाएगी या आपको घातक कष्ट सहना पड़ेगा।' अचानक, बिना सोचे-समझे, वह पेय पी लेता है - वह उसे अस्वीकार नहीं करता - और इस प्रकार उसकी मृत्यु हो जाती है या उसे घातक कष्ट सहना पड़ता है। 190

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, अतीत में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण हैं... भविष्य में... वर्तमान में जो भी संसार में सुखद और मनभावन है, उसे स्थायी, सुख, आत्म, स्वस्थ और सुरक्षित मानते हैं: वे तृप्ति को पोषित कर रहे हैं। तृप्ति को पोषित करने से... वे कष्टों से मुक्त नहीं होते, मैं कहता हूँ।" 191

“भिक्षुओं, अतीत में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने संसार में सुखदायक और मनभावन प्रकृति वाली किसी भी वस्तु को अनित्य, दुखदायी, अनात्म, रोग और भययोग्य समझा, उन्होंने तृष्णा का त्याग किया। तृष्णा का त्याग करके उन्होंने प्राप्ति (उपाधि) का त्याग किया। प्राप्ति का त्याग करके उन्होंने दुख का त्याग किया। दुख का त्याग करके वे पुनर्जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हुए; वे शोक, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा से मुक्त हुए; वे दुख से मुक्त हुए,” मैं कहता हूँ।

“भविष्य में जिन तपस्वियों और ब्राह्मणों ने संसार में सुखदायक और मनभावन प्रकृति वाली किसी भी वस्तु को अनित्य, दुखदायी, अनात्म, रोग और भययोग्य समझा, वे तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) का त्याग करेंगे। तृष्णा का त्याग करके वे दुख से मुक्त होंगे,” मैं कहता हूँ।

"संन्यासी और ब्राह्मण वर्तमान में संसार में जो कुछ भी सुखद और मनभावन है, उसे अनित्य, दुखदायी, अनात्म, रोग या भययोग्य मानते हैं: वे तृष्णा का त्याग कर रहे हैं। तृष्णा का त्याग करने से वे दुखों से मुक्त हो जाते हैं, मैं कहता हूँ।

मान लीजिए, भिक्षुओं, एक पीतल के प्याले में एक उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला पेय है, परन्तु उसमें विष मिला हुआ है। फिर एक व्यक्ति आता है, जो गर्मी से पीड़ित, थका हुआ, प्यासा और प्यासा है। वे उससे कहते हैं:
'हे प्रभु, पीतल के प्याले में रखा यह पेय उत्तम रंग, सुगंध और स्वाद वाला है, परन्तु इसमें विष मिला हुआ है। यदि आप चाहें तो इसे पी सकते हैं। यदि आप इसे पीते हैं, तो यह आपको अपने रंग, सुगंध और स्वाद से प्रसन्न करेगा, परन्तु इसे पीने से आपकी मृत्यु हो जाएगी या आपको घातक कष्ट सहना पड़ेगा।'" तब वह व्यक्ति सोचेगा: 'मैं पानी, मट्ठा, दलिया या सूप से अपनी प्यास बुझा सकता हूँ, लेकिन मुझे वह पेय नहीं पीना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से मुझे हानि होगी और लंबे समय तक कष्ट सहना पड़ेगा।' ऐसा सोचने के बाद, वह पेय नहीं पिएगा बल्कि उसे अस्वीकार कर देगा, और इस प्रकार वह मृत्यु या जानलेवा पीड़ा से बच जाएगा।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, अतीत में जो भी तपस्वी और ब्राह्मण रहे हों... भविष्य में... वर्तमान में संसार में जो भी सुखदायक और मनभावन है, उसे अनित्य, दुखदायी, अनात्मदायी, रोगदायी, भयभीत करने वाला मानते हों: वे तृष्णा का त्याग कर रहे हैं। तृष्णा का त्याग करने से... वे दुख से मुक्त हो जाते हैं, मैं कहता हूँ।" 192

---

67. नरकट के गट्ठे (नालाकलापी)
एक बार पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महाकोत्थिता इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। 193 फिर, शाम को, पूज्य महाकोत्थिता एकांतवास से बाहर आए और पूज्य सारिपुत्त के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य सारिपुत्त का अभिवादन किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"हे मित्र सारिपुत्त, क्या ऐसा है: क्या वृद्धावस्था और मृत्यु स्वयं द्वारा उत्पन्न होती है, या किसी और द्वारा, या स्वयं और किसी और दोनों द्वारा, या यह संयोगवश उत्पन्न हुई है, न तो स्वयं द्वारा और न ही किसी और द्वारा?" 194

"मित्र कोत्थिता, वृद्धावस्था और मृत्यु स्वयं द्वारा उत्पन्न नहीं होती, न ही किसी अन्य द्वारा, न ही स्वयं और किसी अन्य द्वारा, और न ही संयोगवश उत्पन्न होती है, क्योंकि यह स्वयं और किसी अन्य द्वारा उत्पन्न नहीं होती। बल्कि, जन्म के कारण वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है।"

"मित्र सारिपुत्त, यह कैसे होता है: क्या जन्म स्वयं द्वारा उत्पन्न होता है... क्या अस्तित्व का कारक (भावो)... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)... तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)... संवेदना (वेदना)... स्पर्श (फस/स्पर्श)... छह इंद्रियां... मन और शरीर (नामरूप) स्वयं द्वारा उत्पन्न होते हैं, या किसी अन्य द्वारा उत्पन्न होते हैं, या स्वयं और किसी अन्य द्वारा उत्पन्न होते हैं, या संयोगवश उत्पन्न होते हैं, क्योंकि यह स्वयं और किसी अन्य द्वारा उत्पन्न नहीं होती?"

"हे मित्र कोत्थिता, मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) न तो स्वयं द्वारा सृजित होता है, न ही किसी अन्य द्वारा, न ही स्वयं और किसी अन्य द्वारा, और न ही संयोगवश उत्पन्न होता है; बल्कि चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) के कारण मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) उत्पन्न होता है।" "हे

मित्र सारिपुत्त, यह कैसे संभव है: क्या चेतना स्वयं द्वारा सृजित होती है, या किसी अन्य द्वारा, या स्वयं और किसी अन्य द्वारा, या संयोगवश उत्पन्न होती है, न स्वयं द्वारा और न ही किसी अन्य द्वारा?"

"हे मित्र कोत्थिता, चेतना न तो स्वयं द्वारा सृजित होती है, न ही किसी अन्य द्वारा, न ही स्वयं और किसी अन्य द्वारा, और न ही संयोगवश उत्पन्न होती है; बल्कि मन और शरीर का स्वरूप (नामरूप) के कारण चेतना उत्पन्न होती है।" 195

"अब हम पूज्य सारिपुत्त के कथन को इस प्रकार समझते हैं: 'हे मित्र कोत्थिता, मन-शरीर रूप (नामरूप) स्वयं द्वारा सृजित नहीं होता... बल्कि चेतना के कारण मन-शरीर रूप (नामरूप) अस्तित्व में आता है।' अब हम पूज्य सारिपुत्त के [दूसरे] कथन को भी इस प्रकार समझते हैं: 'हे मित्र कोत्थिता, चेतना स्वयं द्वारा सृजित नहीं होती... बल्कि मन-शरीर रूप (नामरूप) के कारण चेतना अस्तित्व में आती है।' परन्तु हे मित्र सारिपुत्त, इस कथन का अर्थ कैसे समझा जाए?"

"तो फिर, मित्र, मैं तुम्हारे लिए एक उपमा बनाता हूँ, क्योंकि यहाँ कुछ बुद्धिमान लोग उपमा के माध्यम से कथन का अर्थ समझते हैं। जैसे दो सरकंडों के गट्ठे एक दूसरे के सहारे टिके रहते हैं, वैसे ही, मन और शरीर के रूप (नामरूप) के कारण चेतना उत्पन्न होती है; चेतना के कारण मन और शरीर के रूप (नामरूप) उत्पन्न होते हैं; मन और शरीर के रूप (नामरूप) के कारण छह इंद्रियाँ उत्पन्न होती हैं; छह इंद्रियों के कारण स्पर्श (फस/स्पर्श) उत्पन्न होते हैं। ... यही इस संपूर्ण दुख का मूल है।

"मित्र, यदि कोई सरकंडों के उन गट्ठों में से एक को हटा दे, तो दूसरा गिर जाएगा, और यदि कोई दूसरे गट्ठे को हटा दे, तो पहला गिर जाएगा। ठीक उसी प्रकार, मन और शरीर के रूप (नामरूप) के समाप्त होने (निरोध) से चेतना का अंत हो जाता है; चेतना के समाप्त होने से मन और शरीर (नामरूप) का अंत हो जाता है। मन और शरीर (नामरूप) के समाप्त होने से छह इंद्रियों का अंत हो जाता है; छह इंद्रियों के समाप्त होने से स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) का अंत हो जाता है... इस प्रकार इस संपूर्ण दुख का अंत होता है। "

यह अद्भुत है, मित्र सारिपुत्त! यह आश्चर्यजनक है, मित्र सारिपुत्त! पूज्य सारिपुत्त ने इसे कितनी अच्छी तरह से कहा है। हम पूज्य सारिपुत्त के इन छत्तीस आधारों पर दिए गए कथन से प्रसन्न हैं; 196 यदि, मित्र, कोई भिक्षु वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा (निब्बिद) उत्पन्न करने, उसके लुप्त होने और समाप्त होने के उद्देश्य से धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देता है, तो उसे धम्म का वक्ता भिक्षु कहा जा सकता है। यदि कोई भिक्षु वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा उत्पन्न करने, उसके निवारण और समाप्ति के उद्देश्य से साधना कर रहा है, तो उसे धम्म के अनुसार साधना करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। यदि वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति घृणा के माध्यम से, उसके निवारण और समाप्ति के द्वारा, कोई भिक्षु अनासक्ति से मुक्त हो जाता है, तो उसे इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है।

"अगर, दोस्त, कोई भिक्षु पुनर्जन्म के प्रति घृणा (निब्बिदा) के मकसद से धम्म सिखाता है ... अस्तित्व का कारक (भावो) ... आसक्ति (उपादान बिना. आसक्ति) ... तरस (तन्हा बिना. तृष्णा) ... संवेदना (वेदना) ... स्पर्श (फस्सा/स्पर्श) ... छह इंद्रियां ... मन और शरीर का रूप (नामरूप) ... चेतना ... संखारा (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग) ... अज्ञान (अविज्जा बिना. अविद्या), इसके खत्म होने और समाप्ति के लिए, उसे धम्म का वक्ता भिक्षु कहा जा सकता है। अगर कोई भिक्षु अज्ञान के प्रति घृणा, इसके खत्म होने और समाप्ति के मकसद से अभ्यास कर रहा है, तो उसे धम्म के अनुसार अभ्यास करने वाला भिक्षु कहा जा सकता है। अगर अज्ञान के प्रति घृणा, इसके खत्म होने और समाप्ति के ज़रिए, जो भिक्षु आसक्ति न रखने से मुक्त हो जाता है, उसे भिक्षु कहा जा सकता है जिसने इसी जीवन में निर्वाण प्राप्त कर लिया है।"

---

68. कोसंबी
एक बार पूज्य मुसिला, पूज्य पवित्रा, पूज्य नारद और पूज्य आनंद, घोसीता उद्यान के कोसंबी में रह रहे थे। 197

तब पूज्य पवित्रा ने पूज्य मुसिला से कहा:
“मित्र मुसिला, आस्था, व्यक्तिगत पसंद, मौखिक परंपरा, तर्कपूर्ण विचार और किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने के अलावा, 198 क्या पूज्य मुसिला को यह व्यक्तिगत ज्ञान है कि ‘जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है’?”

"मित्र पवित्रा, आस्था से परे, व्यक्तिगत पसंद से परे, मौखिक परंपरा से परे, तर्कपूर्ण विचार से परे, किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'जन्म को कारण मानकर, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है।'

"मित्र मुसिला, आस्था से परे... किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे, क्या पूज्य मुसिला को इस प्रकार व्यक्तिगत ज्ञान है: 'अस्तित्व के कारक (भावो) को कारण मानकर, जन्म होता है'?... 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत अविद्या) को कारण मानकर, संस्कार (बाध्यकारी व्यवहार) होता है'?"

"मित्र पवित्रा, आस्था के अलावा... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'अज्ञान को कारण मानकर संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) उत्पन्न होते हैं।' "

मित्र मुसिला, आस्था के अलावा... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, क्या पूज्य मुसिला को यह प्रत्यक्ष ज्ञान है: 'पुनर्जन्म के निरोध के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु का भी अंत हो जाता है'?... 'अज्ञान के अंत के साथ संस्कार (व्यवहार-निर्धारण) का भी अंत हो जाता है'?"

"मित्र पवित्रा, आस्था के अलावा... किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'पुनर्जन्म के अंत के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु का अंत हो जाता है।'... 'अज्ञान के अंत के साथ ही संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का अंत हो जाता है।' "

"मित्र मुसिला, आस्था के अलावा, व्यक्तिगत पसंद के अलावा, मौखिक परंपरा के अलावा, तर्कपूर्ण विचार के अलावा, किसी मत पर मनन करने के बाद उसे स्वीकार करने के अलावा, क्या पूज्य मुसिला को व्यक्तिगत रूप से यह ज्ञान है कि: 'निर्वाण अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत है'?" 199

“मित्र पवित्र, आस्था से परे, व्यक्तिगत पसंद से परे, मौखिक परंपरा से परे, तर्कपूर्ण विचार से परे, किसी मत को मनन करने के बाद स्वीकार करने से परे, मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ: 'निर्वाण अस्तित्व के कारक (भावो) का अंत है।'” “

तब पूज्य मुसिला एक अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो गए हैं।"

यह सुनकर पूज्य मुसिला चुप रहे। 200

तब पूज्य नारद ने पूज्य पवित्र से कहा:
"मित्र पवित्र, अच्छा होगा यदि मुझसे प्रश्नों की वह श्रृंखला पूछी जाए। मुझसे प्रश्नों की वह श्रृंखला पूछिए और मैं आपको उत्तर दूंगा। 201

"तो फिर पूज्य नारद को उन प्रश्नों की श्रृंखला का उत्तर देने दीजिए। मैं पूज्य नारद से वही प्रश्न पूछूंगा, और वे मुझे उत्तर देंगे।"

(यहाँ पूज्य पवित्र, पूज्य नारद से वही प्रश्न पूछते हैं जो पूज्य मुसिला से पूछे गए थे, और वे ठीक उसी तरह उत्तर देते हैं।)

"तो पूज्य नारद एक अरहंत हैं, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं।"

"मित्र, यद्यपि मैंने सही अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि 'निर्वाण, पुनर्जन्म के लिए अस्तित्व के कारक का निरोध (निरोध) है,' फिर भी मैं अरहंत नहीं हूँ, जिसके दोष नष्ट हो जाते हैं। 202 मान लीजिए, मित्र, किसी रेगिस्तानी सड़क पर एक कुआँ है, लेकिन उसमें न तो रस्सी है और न ही बाल्टी। फिर एक आदमी आता है, जो गर्मी से परेशान, थका हुआ, प्यासा और प्यासा है। वह कुएँ में देखता है और उसे यह ज्ञान होता है कि 'पानी है,' लेकिन वह उससे शारीरिक संपर्क (फस/स्पर्श) नहीं कर पाता। 203 इसी प्रकार, मित्र, यद्यपि मैंने सही अंतर्दृष्टि (भावो) से स्पष्ट रूप से देखा है कि 'निर्वाण, भावो के लिए अस्तित्व के कारक का निरोध (निरोध) है, फिर भी मैं अरहंत नहीं हूँ, जिसके दोष नष्ट हो जाते हैं।" 204

यह सुनकर पूज्य आनंद ने पूज्य पवित्र से पूछा: "हे मित्र पवित्र, जब वह इस प्रकार बोलते हैं, तो आप पूज्य नारद के बारे में क्या कहेंगे?"

"हे मित्र आनंद, जब वह इस प्रकार बोलते हैं, तो मैं पूज्य नारद के बारे में केवल अच्छी और अनुकूल बातें ही कहूंगा।" 205

---

69. द सर्ज (उपायंती)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, सागर के उफान से नदियाँ उफान पर आती हैं; नदियों के उफान से धाराएँ उफान पर आती हैं; धाराओं के उफान से झीलें उफान पर आती हैं; झीलों के उफान से तालाब उफान पर आते हैं। उसी प्रकार, अज्ञान (अविज्जा, संस्कृत: अविद्या) के उफान से संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उफान पर आता है; संस्कार (व्यवहार) के उफान से चेतना (विन्नाना, संस्कृत: विज्ञान) उफान पर आती है; चेतना के उफान से मन और शरीर (नामरूप) उफान पर आता है; मन और शरीर (नामरूप) के उफान से छह इंद्रियाँ उफान पर आती हैं; छह इंद्रियाँ उफान पर आने से संपर्क (इंद्रियों का विषय से स्पर्श) उफान पर आता है; संपर्क (स्पर्श) उफान पर आने से संवेदना (वेदना) उफान पर आती है; संवेदना (वेदना) उफान पर आने से लालसा (तन्हा) उत्पन्न होती है। संस्कृत: तृष्णा का बढ़ना; तृष्णा का बढ़ना आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) को बढ़ाता है; आसक्ति का बढ़ना अस्तित्व के कारक (भावो) को बढ़ाता है; अस्तित्व के कारक (भावो) का बढ़ना जन्म को बढ़ाता है; जन्म का बढ़ना वृद्धावस्था और मृत्यु को बढ़ाता है।

"भिक्षुओं, सागर के पीछे हटने से नदियाँ पीछे हटती हैं; नदियों के पीछे हटने से धाराएँ पीछे हटती हैं; धाराओं के पीछे हटने से झीलें पीछे हटती हैं; झीलों के पीछे हटने से तालाब पीछे हटते हैं। उसी प्रकार, समाधि की अवस्था के अनुभव से अज्ञान का पीछे हटना संस्कार (व्यवहार-आदत) को पीछे हटाता है; संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-आदत) के पीछे हटने से चेतना पीछे हटती है... पुनर्जन्म के पीछे हटने से वृद्धावस्था और मृत्यु पीछे हटती है।"

---

70. सुसीमा
मैंने भगवान बुद्ध से यही सुना है (आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे।

(i)
उस समय भगवान (बुद्ध) का आदर, सम्मान, आदर और श्रद्धा की गई, और उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त हुईं। भिक्षु संघ का भी आदर, सम्मान, आदर और श्रद्धा की गई, और भिक्षुओं को भी वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त हुईं। परन्तु अन्य संप्रदायों के तपस्वियों का आदर, सम्मान, आदर, श्रद्धा और श्रद्धा नहीं की गई, और उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त नहीं हुईं।

उस समय तपस्वी सुसीमा राजगृह में कई तपस्वियों के साथ निवास कर रहे थे। उनके साथियों ने सुसीमा से कहा, "हे मित्र सुसीमा, आओ और तपस्वी गौतम के मार्गदर्शन में ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करो। उनके धर्म का ज्ञान प्राप्त करो और हमें सिखाओ। हम भी उनके धर्म का ज्ञान प्राप्त करेंगे और उसका प्रचार करेंगे। इस प्रकार हम भी आदरणीय, सम्मानित और पूजनीय होंगे, और हमें भी वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त होंगी।"

"ठीक है मित्रों," तपस्वी सुसीमा ने उत्तर दिया। फिर वे पूज्य आनंद के पास गए और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "मित्र आनंद, मैं इस धर्म और अनुशासन में ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ।"

तब पूज्य आनंद ने तपस्वी सुसीमा को अपने साथ लिया और भगवान (बुद्ध) के पास गए। उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,
"पूज्यवर, यह तपस्वी सुसीमा कहते हैं कि वे इस धम्म और अनुशासन में ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करना चाहते हैं।"

"तो फिर, आनंद, उन्हें दीक्षा दीजिए।" तब तपस्वी सुसीमा ने भगवान (बुद्ध) के मार्गदर्शन में दीक्षा और उपसंपदा प्राप्त की। 206

(ii)
उस अवसर पर कई भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा करते हुए कहा, "हम समझते हैं: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत कर लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस अवस्था में अब और कुछ नहीं है।" पूज्य सुसीमा ने यह सुनकर उन भिक्षुओं के पास जाकर उनसे अभिवादन किया और फिर एक तरफ बैठकर उनसे कहा: "क्या यह सच है कि आप पूज्य भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा करते हुए कहा है: 'हम समझते हैं: पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई अर्थ नहीं है'?" 207

"हाँ, मित्र।"

तो क्या आप इस प्रकार जानकर और देखकर विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों (इद्धि/रिद्धि) का प्रयोग कर सकते हैं, जैसे कि: एक होकर आप अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर आप एक हो जाते हैं; आप प्रकट होते हैं और विलीन हो जाते हैं; आप बिना किसी अवरोध के दीवार, प्राचीर, पर्वत के आर-पार ऐसे चले जाते हैं मानो अंतरिक्ष में; आप पृथ्वी में ऐसे समा जाते हैं मानो वह जल हो; आप जल पर ऐसे चलते हैं मानो वह पृथ्वी हो, बिना डूबे; पालथी मारकर आप पक्षी की तरह अंतरिक्ष में विचरण करते हैं; आप अपने हाथों से इतने शक्तिशाली और बलवान चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श करते हैं और सहलाते हैं; आप ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) लोक तक शरीर पर महारत हासिल कर लेते हैं? "

नहीं, मित्र।"

"तो क्या आप इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप, शुद्ध और मानवीय से परे दिव्य श्रवण शक्ति (धातु) से, दिव्य और मानवीय, दूर और निकट दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुन सकते हैं?"

"नहीं, मित्र।"

तो इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप आदरणीय लोग अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को, उन्हें अपने मन से घेरकर, समझ पाते हैं? क्या आप कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त मन के रूप में समझते हैं; कामवासना रहित मन को कामवासना रहित मन के रूप में समझते हैं; घृणा से ग्रस्त मन को घृणा से ग्रस्त मन के रूप में समझते हैं; घृणा रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में समझते हैं; मोह से ग्रस्त मन को मोह से ग्रस्त मन के रूप में समझते हैं; मोह रहित मन को मोह रहित मन के रूप में समझते हैं; संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित समझते हैं; उच्च मन को उच्च और निम्न मन को निम्न समझते हैं; श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और अतुलनीय मन को अतुलनीय समझते हैं; समाधि अवस्था में स्थित मन को समाधि अवस्था में और एक समाधि (सम्मोहन) अवस्था में न रहने वाले मन को समाधि (सम्मोहन) अवस्था में न रहने वाला मन; मुक्त (विमुक्त संस्कृत विमुक्त) मन को मुक्त और अमुक्त मन को अमुक्त? "

नहीं, मित्र।"

तो इस प्रकार जानकर और देखकर, हे पूजनीय, क्या आप अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करते हैं, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, अनेक युगों तक संसार का संकुचन,

अनेक युगों तक संसार का विस्तार, अनेक युगों तक संसार के संकुचन और विस्तार के क्रम में: वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से मेरा पुनर्जन्म कहीं और हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से मेरा पुनर्जन्म हुआ। क्या तुम यहाँ पुनर्जन्म लेकर आए हो? क्या तुम्हें अपने अनेक अतीत के निवास स्थान, उनके तौर-तरीके और विवरण याद हैं? "

नहीं, मित्र।"

तो फिर, हे पूजनीय, क्या आप अपने पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, जन्म लेने और मरने वाले प्राणियों को, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, इस प्रकार देखते और समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे फलते-फूलते हैं: 'वे प्राणी जिन्होंने देह, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने देह, वाणी और मन से अच्छा आचरण किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही मत रखा और सही मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्य (सुगती) में, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं? इस प्रकार, हे पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, क्या आप अपने पवित्र और मानवीय दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से, जन्म लेने और मरने वाले प्राणियों को देखते हैं? पुनर्जन्म, हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और यह समझना कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे चलते हैं? "

नहीं, मित्र।"

"तो इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप पूज्यवर उन शांतिपूर्ण मुक्ति (विमोक्खो) में निवास करते हैं जो रूपों से परे हैं, निराकार उपलब्धियों में, जिन्हें आपने शरीर से स्पर्श किया है?" 208 "किसी भी प्रकार की वेदना... किसी भी प्रकार की धारणा... किसी भी प्रकार का संस्कार... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, हीन हो या श्रेष्ठ, दूर हो या निकट, सभी चेतना को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से वैसे ही देखना चाहिए जैसे वह वास्तव में है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'" "इस प्रकार देखकर, हे सुसीमा, उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य को रूप के प्रति घृणा (निबिद्धा), वेदना के प्रति घृणा, बोध के प्रति घृणा, संस्कार (व्यवहार-आधार) के प्रति घृणा और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त (विमुक्त संस्कृत: विमुक्त) हो जाता है। मुक्त होने पर उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और समय नहीं है।' "क्या तुम समझते हो, सुसीमा: 'पुनर्जन्म के कारण ही वृद्धावस्था और मृत्यु होती है'?" "जी, पूज्यवर।" "सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'अस्तित्व के कारक (भावो) के कारण जन्म होता है'?... 'आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति) के कारण अस्तित्व का कारक (भावो) होता है'?... 'लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) के कारण आसक्ति होती है'?... 'वेदना (वेदना) के कारण लालसा होती है'?..."
"नहीं, दोस्त।"

"अब, आदरणीय लोगों: यह जवाब और उन अवस्थाओं का न मिलना, यह कैसे हो सकता है, दोस्तों?" 209

"हम ज्ञान की समझ (पन्ना) से मुक्त (विमुत्त बिना विमुक्त) हो जाते हैं, दोस्त सुसीमा।" 210

"दोस्तों, मुझे विस्तार से समझ नहीं आ रहा है कि आदरणीय लोगों ने जो संक्षेप में कहा है, उसका मतलब क्या है। अच्छा होगा अगर आदरणीय लोग मुझे इस तरह समझाएँ कि मैं विस्तार से समझ सकूँ कि संक्षेप में क्या कहा गया है।"

"चाहे आप समझें या नहीं, दोस्त सुसीमा, हम ज्ञान की समझ (पन्ना) से मुक्त (विमुत्त) हो जाते हैं।"

(iii)

फिर आदरणीय सुसीमा अपनी सीट से उठे और भगवान (बुद्ध) के पास गए। पास जाकर, उसने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया, और भगवान (बुद्ध) को उन भिक्षुओं के साथ हुई पूरी बातचीत बताई।

[भगवान (बुद्ध) ने कहा:]
"सुसीमा, पहले धम्म (पथ, कानून) की स्थिरता का ज्ञान आता है, उसके बाद निब्बान का ज्ञान।" 211

"आदरणीय महोदय, मैं भगवान (बुद्ध) द्वारा संक्षेप में कही गई बातों का मतलब विस्तार से नहीं समझ पाया। अच्छा होगा अगर भगवान (बुद्ध) मुझे इस तरह समझाएं कि मैं संक्षेप में कही गई बातों को विस्तार से समझ सकूं।"

"सुसीमा, तुम समझो या न समझो, पहले धम्म की स्थिरता का ज्ञान आता है, उसके बाद निब्बान का ज्ञान। 212

"सुसीमा, तुम्हें क्या लगता है, रूप परमानेंट है या कुछ समय के लिए?" - "कुछ समय के लिए, आदरणीय महोदय।" 213 - "जो कुछ समय के लिए है, वह दुख है या सुख?" - "दुख, आदरणीय महोदय।"

"जो कुछ भी समय के लिए है, दुख है, और बदलने वाला है, उसे इस तरह माना जाना चाहिए: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्व है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"क्या सेंसेशन (वेदना) परमानेंट है या कुछ समय के लिए?... क्या परसेप्शन (सन्ना संस. संज्ञा) परमानेंट है या कुछ समय के लिए?... क्या संखारा (कंपल्सिव-बिहेवियर-कंडीशनिंग) परमानेंट है या कुछ समय के लिए?... क्या कॉन्शसनेस (विन्ना संस. विज्ञान) परमानेंट है या कुछ समय के लिए?" ; - "कुछ समय के लिए, आदरणीय सर।" - "जो कुछ समय का है, वह दुख है या खुशी?" - "दुख, आदरणीय सर।" - "क्या जो कुछ समय का नहीं है, दुख है, और बदलने वाला है, उसे इस तरह देखना चाहिए: 'यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरा खुद है'?" - "नहीं, आदरणीय सर।"

"इसलिए, सुसीमा, किसी भी तरह का रूप, चाहे वह भूतकाल का हो, भविष्य का हो, या वर्तमान का, अंदरूनी हो या बाहरी, स्थूल हो या सूक्ष्म, छोटा हो या बड़ा, दूर हो या पास, सभी रूपों को सही रोशनी वाली समझ (पन्ना) के साथ वैसा ही देखना चाहिए जैसा वह असल में है, इस तरह: यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूं, यह मेरा खुद नहीं है।"

'क्या इंद्रियों के संपर्क (विषय से इंद्रियों का स्पर्श) के कारण वेदना उत्पन्न होती है?'... 'क्या छह इंद्रियों के संपर्क (स्पर्श) के कारण छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं?'... 'क्या नामरूप (मन और शरीर का स्वरूप) के कारण छह इंद्रियां उत्पन्न होती हैं?'... 'क्या चेतना नामरूप (मन और शरीर का स्वरूप) के कारण होती है?'... 'क्या व्यवहार (आचरण-निर्धारण) के कारण चेतना उत्पन्न होती है?' ... 'अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) के कारण संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) उत्पन्न होते हैं'? "

जी हां, पूज्यवर।"

"सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'पुनर्जन्म के निरोध के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु का भी अंत हो जाता है'?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"सुसीमा, क्या तुम समझती हो: 'भाव के अंत के साथ पुनर्जन्म का अंत हो जाता है'?... 'आसक्ति के अंत के साथ भाव का अंत हो जाता है'?... 'अज्ञान के अंत के साथ संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) का अंत हो जाता है'?" "

जी हां, पूज्यवर।"

"सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या तुम विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) का उपयोग करती हो, इस प्रकार कि: एक होकर तुम अनेक बन जाती हो ... और उसका अभ्यास करती हो क्या आप ब्रह्म जगत तक शारीरिक प्रभुत्व प्राप्त कर सकते हैं? 214

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो हे सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप अपने दिव्य श्रवण तत्व से, जो शुद्ध और मानवीय श्रवण से परे है, दिव्य और मानवीय दोनों प्रकार की ध्वनियाँ, दूर और निकट दोनों, सुन सकते हैं?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो हे सुसीमा, इस प्रकार जानकर और देखकर, क्या आप अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को, उन्हें अपने मन से समाहित करके, समझ सकते हैं?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"तो ऐसा जानकर और देखकर, सुसीमा, क्या तुम अपने कई पिछले घरों को उनके तरीकों और डिटेल्स के साथ याद करते हो?"

"नहीं, आदरणीय सर।"

"तो ऐसा जानकर और देखकर, सुसीमा, क्या तुम उस दिव्य आँख से, जो शुद्ध है और इंसान से भी बेहतर है, जीवों को गुज़रते और दोबारा जन्म लेते हुए देखते हो और समझते हो कि जीव अपने कर्म के अनुसार कैसे चलते हैं?"

"नहीं, आदरणीय सर।"

"तो ऐसा जानकर और देखकर, सुसीमा, क्या तुम उन शांतिपूर्ण मुक्ति (विमोक्खो) में रहते हो जो रूपों से परे हैं, निराकार उपलब्धियों को, शरीर से छूकर?"

"नहीं, आदरणीय सर।"

"अब यहाँ, सुसीमा: यह जवाब और उन अवस्थाओं का न मिलना, यह कैसे हो सकता है, सुसीमा?"

(iv)

फिर आदरणीय सुसीमा ने भगवान (बुद्ध) के पैरों में सिर रखकर प्रणाम किया और कहा: "आदरणीय महोदय, मैंने एक गलती की है कि मैं इतना बचकाना (नासमझ), इतना कन्फ्यूज्ड, इतना नाकाबिल था कि मैं इतने अच्छे से समझाए गए धम्म और अनुशासन के धम्म (पथ, कानून) का चोर बनकर आगे बढ़ा। आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मेरी इस गलती के लिए मुझे माफ करें, जिसे भविष्य में संयम के लिए गलती माना गया है।"

"ज़रूर, सुसीमा, तुमने एक गुनाह किया है कि तुम इतने बचकाने (नासमझ), इतने कन्फ्यूज्ड, इतने नाकाबिल थे कि तुम इतने अच्छे से समझाए गए धम्म और डिसिप्लिन में धम्म के चोर की तरह आगे बढ़े। 215 मान लो, सुसीमा, वे एक डाकू, एक क्रिमिनल को पकड़कर राजा के सामने लाते और कहते: 'हे प्रभु, यह आदमी एक डाकू है, एक क्रिमिनल है। इसे जो सज़ा चाहिए वो दो।' राजा उनसे कहता: 'आओ, आदमियों, इस आदमी के हाथ उसकी पीठ के पीछे एक मज़बूत रस्सी से कसकर बांध दो, उसका सिर मुंडवा दो, और उसे ढोल बजाते हुए एक गली से दूसरी गली और एक चौक से दूसरे चौक तक घुमाओ। फिर उसे दक्षिणी गेट से बाहर ले जाओ और शहर के दक्षिण में उसका सिर काट दो।' तुम्हें क्या लगता है, सुसीमा, उस आदमी को इस वजह से क्या दर्द और नाराज़गी होगी?"

"हाँ, आदरणीय सर।"

"हालांकि उस आदमी को इस वजह से दर्द और नाराज़गी होगी, लेकिन इतने अच्छे से समझाए गए धम्म और अनुशासन में धम्म के चोर की तरह आगे बढ़ने (दीक्षा, पबज्जा) के नतीजे कहीं ज़्यादा दर्दनाक, कहीं ज़्यादा कड़वे होते हैं, और आगे चलकर यह पाताल लोक की ओर ले जाता है। लेकिन क्योंकि आप अपने गुनाह को गुनाह समझते हैं और धम्म के हिसाब से उसे सुधारते हैं, इसलिए हम आपको इसके लिए माफ़ करते हैं। क्योंकि जब कोई अपने गुनाह को गुनाह समझता है, धम्म के हिसाब से उसे सुधारता है, और भविष्य में संयम बरतता है, तो यह महात्मा के अनुशासन में बढ़ोतरी है।"

(viii) तपस्वी और ब्राह्मण (समनब्रह्मण)
71. वृद्धावस्था और मृत्यु (जरमरणा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण (निरोध) और उसके निवारण के मार्ग को नहीं समझते: मैं उन्हें तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं कर सकते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो वृद्धावस्था और मृत्यु, उसके उद्भव, उसके निवारण और उसके निवारण के मार्ग को समझते हैं: मैं उन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य में प्रवेश कर सकते हैं और उसमें निवास कर सकते हैं।" और ब्राह्मणत्व का लक्ष्य।"

---

72. जन्म, आदि (जाति आदि)
"भिक्षु, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो नहीं समझते (पहले की तरह 71 में, हर एक के लिए और 1 और 2 के समान)
जन्म ...
भावो ...
चिपकना (उपादान संस. आसक्ति) ...
लालसा (तन्हा संस. तृष्णा) ...
वेदना ...
संपर्क (पहसा/स्पर्श) ...
छह इंद्रियां ...
मन-और-शरीर का रूप (नामरूप) ...
चेतना (विन्नान संस. विज्ञान) ...
संखारा (बाध्यकारी-व्यवहार-कंडीशनिंग), उनका मूल, उनका अंत (निरोध), और उनके अंत तक ले जाने वाला रास्ता: इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये आदरणीय लोग, दिव्य-ज्ञान (अभिन्ना) से खुद इसे महसूस करके, इसी में नहीं करते। जीवन में तप या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करें और उसमें रहें।

"लेकिन, भिक्षुओं, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन बातों को समझते हैं: मैं उन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये आदरणीय लोग, दिव्य-ज्ञान (अभिन्ना) से इसे स्वयं महसूस करके, इसी जीवन में तप और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और उसमें रहते हैं।"

(ix) अंतर्निर्मित पुनरावृत्ति श्रृंखला (अंतरापेय्यलम) के साथ
73. एक शिक्षक (सत्थु)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो वृद्धावस्था और मृत्यु, इसके उद्भव, इसके निवारण (निरोध) और इसके निवारण के मार्ग को यथावत नहीं जानते और नहीं देखते, उन्हें इसे यथावत जानने के लिए एक गुरु की खोज करनी चाहिए। 217

"भिक्षुओं, जो
जन्म...
अस्तित्व का कारक (भावो)... आसक्ति (उपादान संस्कृत: आसक्ति)...
तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा)...
संवेदना (वेदना)
...
स्पर्श (फस/स्पर्श)...
छह इंद्रियां...
नामरूप...
चेतना (विन्नान संस्कृत: विज्ञान)...
संशय (बाध्यकारी व्यवहार),

इनके उद्‌भव, इनके निवारण और इनके निवारण के मार्ग को यथावत जानने और देखने वाले नहीं
हैं, उन्हें एक गुरु की खोज करनी चाहिए।" इसे
यथार्थ रूप में जानने के लिए।

"भिक्षुओं, जो वृद्धावस्था और मृत्यु को यथार्थ रूप में नहीं जानते और न ही देखते हैं... संस्कार (व्यवहार-अनुकूलन), उनकी उत्पत्ति, उनका अंत और उनके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं जानते, उन्हें इसे यथार्थ रूप में जानने के लिए प्रशिक्षण का अभ्यास करना चाहिए।"

"भिक्षुओं, जो वृद्धावस्था और मृत्यु को यथार्थ रूप में नहीं जानते और न ही देखते हैं... संस्कार (बाध्यकारी-व्यवहार-अनुकूलन), उनकी उत्पत्ति, उनका अंत और उनके अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं जानते, उन्हें प्रयास करना चाहिए... इच्छा जागृत करनी चाहिए... उत्साह जगाना चाहिए... निरंतर प्रयास करना चाहिए... जोश जगाना चाहिए... ऊर्जा (वीर्य) का प्रयोग करना चाहिए... दृढ़ता का अभ्यास करना चाहिए... ध्यान (सती) का अभ्यास करना चाहिए... पूर्ण बोध (संपजन्न) का अभ्यास करना चाहिए... जागरूकता (अप्पमदा) का अभ्यास करना चाहिए ताकि इसे यथार्थ रूप में जान सकें।"

अध्याय 2 : सफलता पर जुड़े हुए प्रवचन (अभिसमयसंयुत्त) {संयुत्त-13}74. नाखून (नखसिखा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी उठाई और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, कौन अधिक है: मेरे नाखून में उठाई गई थोड़ी सी मिट्टी या यह विशाल पृथ्वी?"

"आदरणीय महोदय, विशाल पृथ्वी अधिक है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी उठाई है, वह नगण्य है। यह विशाल पृथ्वी का सौवां भाग, हजारवां भाग या एक लाखवां भाग भी नहीं है।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, उस सिद्ध दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए जिसने धर्म की राह में सफलता प्राप्त कर ली है, जो दुख नष्ट और समाप्त हो गया है वह कहीं अधिक है, जबकि शेष दुख नगण्य है। 218 बाद वाला दुख नष्ट और समाप्त हुए पहले दुख के समूह का सौवां भाग, हजारवां भाग या एक लाखवां भाग भी नहीं है, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म हैं। हे भिक्षुओं, धर्म (मार्ग, नियम) की राह में सफलता प्राप्त करना इतना बड़ा लाभ है, धर्म के दर्शन प्राप्त करना इतना बड़ा लाभ है।" 219

---

75. तालाब (पोक्खरानी)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए एक तालाब है जो पचास योजन लंबा, पचास योजन चौड़ा और पचास योजन गहरा है, पानी से भरा हुआ है, इतना कि एक कौआ भी उसमें से पानी पी सकता है, और एक आदमी कुश घास की नोक पर उसमें से थोड़ा पानी निकालता है। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी या तालाब का पानी?" 220

"आदरणीय महोदय, तालाब का पानी अधिक है। कुश घास की नोक पर निकाला गया पानी नगण्य है। यह तालाब के पानी का सौवां हिस्सा, हजारवां हिस्सा या एक लाखवां हिस्सा भी नहीं है।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, एक सिद्ध दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए जिसने धर्म की राह में सफलता प्राप्त कर ली है, उसका नाश और निवारण अधिक होता है, जबकि शेष दुख नगण्य होता है (जैसा कि 74 में है)। भिक्षुओं, धर्म (मार्ग, नियम) की राह में सफलता प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है, धर्म के दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है।"

---

76. संगम पर जल (1) (संभेज्जौदक1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि जहाँ ये महान नदियाँ मिलती और समाहित होती हैं - अर्थात् गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभु और माही - वहाँ से कोई व्यक्ति दो या तीन बूँद पानी निकालता है। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: निकाली गई ये दो या तीन बूँदें या संगम का जल?"

"आदरणीय, संगम का जल अधिक है। निकाली गई दो या तीन बूँदें नगण्य हैं। वे संगम के जल के सौवें भाग, हजारवें भाग या लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

77. संगम पर जल (2) (संभेज्जौदक2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लो कि जिस जगह ये बड़ी नदियाँ मिलती हैं और मिलती हैं - यानी गंगा, यमुना, अचिरावती, सरभू और माही - उनका पानी खत्म हो जाएगा और दो या तीन बूँदें ही बचेंगी। तुम क्या सोचते हो, भिक्षुओं, क्या ज़्यादा है: संगम का पानी जो खत्म हो गया है और खत्म हो गया है या जो दो या तीन बूँदें बची हैं?"

"आदरणीय महोदय, संगम का पानी जो खत्म हो गया है और खत्म हो गया है, वह ज़्यादा है। जो दो या तीन बूँदें बची हैं, वे मामूली हैं। वे उस पानी का सौवाँ हिस्सा, हज़ारवाँ हिस्सा, या लाखवाँ हिस्सा भी नहीं हैं जो खत्म हो गया है और खत्म हो गया है।"

"इसी तरह, भिक्षुओं, एक महान शिष्य के लिए ..(जैसा कि 74 में है).. धम्म (पथ, कानून) का दर्शन पाना बहुत बड़ा फ़ायदा है।"

---

78. पृथ्वी (1) (पथवी 1)
श्रावस्ती में, भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक व्यक्ति विशाल पृथ्वी पर बेर के दाने के आकार की मिट्टी की सात छोटी-छोटी गेंदें रख दे। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन अधिक महत्वपूर्ण है: वहाँ रखी गई बेर के दाने के आकार की मिट्टी की सात छोटी-छोटी गेंदें या विशाल पृथ्वी?"

"आदरणीय महोदय, विशाल पृथ्वी अधिक महत्वपूर्ण है। बेर के दाने के आकार की मिट्टी की सात छोटी-छोटी गेंदें तुच्छ हैं। वे विशाल पृथ्वी के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।" "

इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

79. पृथ्वी (2) (पथवी 2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि सात छोटी बेर के दानों के आकार की मिट्टी की गोलियों को छोड़कर, पूरी पृथ्वी नष्ट हो जाए। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन अधिक महत्वपूर्ण है: नष्ट और समाप्त हो चुकी पूरी पृथ्वी या शेष बची सात छोटी बेर के दानों के आकार की मिट्टी की गोलियां?"

"आदरणीय महोदय, नष्ट और समाप्त हो चुकी पूरी पृथ्वी अधिक महत्वपूर्ण है। शेष बची सात छोटी बेर के दानों के आकार की मिट्टी की गोलियां नगण्य हैं। वे नष्ट और समाप्त हो चुकी पूरी पृथ्वी का सौवां, हजारवां या एक लाखवां भाग भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

80. सागर (1) (समुद्र संस्कृत)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति विशाल सागर से दो या तीन बूँदें पानी निकालता है। आप क्या सोचते हैं, भिक्षुओं, कौन अधिक है: निकाली गई दो या तीन बूँदें या विशाल सागर का जल?"
"आदरणीय महोदय, विशाल सागर का जल अधिक है। निकाली गई दो या तीन बूँदें नगण्य हैं। वे विशाल सागर के जल के सौवें भाग, हजारवें भाग या लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभकारी है।"

---

81. सागर (2) (समुद्र संस्कृत)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लो कि समुद्र दो या तीन बूंद पानी के अलावा खत्म हो जाएगा। भिक्षुओं, तुम क्या सोचते हो, क्या ज़्यादा है: समुद्र का पानी जो खत्म हो गया है और खत्म हो गया है या पानी की दो या तीन बूंदें जो बची हैं?"

"आदरणीय महोदय, समुद्र का पानी जो खत्म हो गया है और खत्म हो गया है, वह ज़्यादा है। बची हुई दो या तीन बूंदें बहुत कम हैं। वे समुद्र के पानी के सौवें हिस्से, हज़ारवें हिस्से, या लाखवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं जो खत्म हो गया है।"

"इसी तरह, भिक्षुओं, एक अच्छे शिष्य के लिए ..(जैसा कि 74 में है).. धम्म (पथ, कानून) का दर्शन पाना बहुत बड़ा फ़ायदा है।"

---

82. पर्वत (1) (पब्बता1 संस्कृत पर्वत)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, पर सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ रख दे। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन अधिक है: वहाँ रखे गए सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ या हिमालय, जो पर्वतों का राजा है?"

"आदरणीय महोदय, हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, अधिक है। सरसों के दाने के आकार के सात कंकड़ तुच्छ हैं। वे हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, के सौवें भाग, हजारवें भाग या लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए (जैसा कि 74 में है) धम्म (मार्ग, नियम) का दर्शन प्राप्त करना इतना बड़ा लाभ है।"

---

83. पर्वत (2) (पब्बता2 संस्कृत पर्वत)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि हिमालय, जो पर्वतों का राजा है, सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ को छोड़कर नष्ट हो जाए। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन सा अधिक है: नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय का भाग या शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़?"

"आदरणीय महोदय, नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय का भाग अधिक है। शेष बचे सात सरसों के दाने के आकार के कंकड़ नगण्य हैं। वे नष्ट और समाप्त हो चुके हिमालय के भाग के सौवें, हजारवें या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, एक श्रेष्ठ शिष्य के लिए, उस सिद्ध दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए जिसने धर्म की राह में सफलता प्राप्त कर ली है, उसका नाश और निवारण अधिक होता है, जबकि शेष दुख नगण्य होता है। बाद वाला दुख, नाश और निवारण किए गए पहले दुख के समूह का सौवां भाग, हजारवां भाग या एक लाखवां भाग भी नहीं होता, क्योंकि अधिकतम सात और जन्म होते हैं। हे भिक्षुओं, धर्म के मार्ग में सफलता प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है, धर्म के दर्शन प्राप्त करना अत्यंत लाभदायी है।"

---

84. पर्वत (3) (पब्बत3 सं. पर्वत)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति पर्वतों के राजा सिनेरु पर मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ रख दे। भिक्षुओं, आपके विचार से कौन बड़ा है: वहाँ रखे गए मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ या पर्वतों के राजा सिनेरु?"

"आदरणीय महोदय, पर्वतों के राजा सिनेरु बड़े हैं। मूंग के दाने के आकार के सात कंकड़ तुच्छ हैं। वे पर्वतों के राजा सिनेरु के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, तपस्वियों, ब्राह्मणों और अन्य संप्रदायों के तपस्वियों की उपलब्धियाँ एक श्रेष्ठ शिष्य, एक सिद्ध दृष्टि वाले और पारलौकिक व्यक्ति की उपलब्धियों के सौवें भाग, हजारवें भाग या एक लाखवें भाग के बराबर भी नहीं हैं। भिक्षुओं, सिद्ध दृष्टि वाला व्यक्ति अपनी उपलब्धियों में इतना महान है, दिव्य ज्ञान (अभिन्न) में इतना महान है।"

अध्याय 3: तत्वों पर संबंधित प्रवचन (धातुसम्यूत्त) {सम्यूत्त-14}
(i) विविधता अनुभाग (नानत्तवग्गो संस्कृत: नानत्व-वर्ग)
(Internal Pentad)
85. तत्वों की विविधता (धातुनानत्त सं. धातु-नानत्व)
(18 धातु/तत्व)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें (आंतरिक) तत्वों की विविधता सिखाऊंगा। 223 इसे सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), मैं बोलूंगा।"

"जी, आदरणीय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है?
आँख तत्व (धातु), रूप तत्व, आँख-चेतना तत्व;
कान तत्व, ध्वनि तत्व, कान-चेतना तत्व;
नाक तत्व, गंध तत्व, नाक-चेतना तत्व;
जीभ तत्व, स्वाद तत्व, जीभ-चेतना तत्व;
शरीर तत्व, स्पर्श-वस्तु तत्व, शरीर-चेतना तत्व;
मन तत्व, मानसिक-घटना तत्व, मन-चेतना तत्व।
हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।" 224

---

86. संपर्कों की विविधता (फस्सानत्ता संस्कृत. स्पर्श-नानत्व)
(6 प्रकार के संपर्क (फस्सा/स्पर्श; इंद्रियों का वस्तु से संपर्क))

श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है। और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख (धातु), कान (नाक), जीभ (जीभ), शरीर (शरीर), मन (मन)। इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।

" और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण संपर्कों की विविधता कैसे उत्पन्न होती है? आँख के कारण आँख का संपर्क (फस्सा/स्पर्श) होता है; कान के कारण कान का संपर्क होता है; नाक के कारण नाक का संपर्क होता है; जीभ के कारण जीभ का संपर्क होता है; शरीर के कारण शरीर का संपर्क होता है; मन के कारण मन का संपर्क होता है। 225 भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है।

---

87. संपर्कों की विविधता नहीं
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों से संपर्क की विविधता उत्पन्न होती है। तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के कारण उत्पन्न नहीं होती।

और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख तत्व (धातु)... (जैसा कि 85 में है)... मन तत्व। इसे तत्वों की विविधता कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, यह कैसे होता है कि तत्वों की विविधता के कारण संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; कि तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के कारण उत्पन्न नहीं होती?

आँख तत्व के कारण आँख संपर्क (स्पर्श) उत्पन्न होता है; आँख तत्व आँख संपर्क के कारण उत्पन्न नहीं होता... मन तत्व के कारण मन संपर्क उत्पन्न होता है; मन तत्व मन संपर्क के कारण उत्पन्न नहीं होता।" 226 भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती।

---

88. Diversity of Sensations(vedana) (1) (Vedanananatta1 sans Vedana-nanatv)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों से संपर्क की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्क की विविधता के कारण ही वेदना की विविधता उत्पन्न होती है।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख तत्व (धातु)... (जैसा कि अनुच्छेद 85 में है)... मन तत्व। इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता के आधार पर संवेदनाओं (वेदनाओं) की विविधता उत्पन्न होती है? नेत्र तत्व के आधार पर नेत्र संपर्क (इंद्रियों का विषय से संपर्क; स्पर्श/स्पर्श) उत्पन्न होता है; नेत्र संपर्क के आधार पर नेत्र संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। कान तत्व के आधार पर कान संपर्क उत्पन्न होता है; कान संपर्क के आधार पर कान संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। नाक तत्व के आधार पर नाक संपर्क उत्पन्न होता है; नाक संपर्क के आधार पर नाक संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। जीभ तत्व के आधार पर जीभ संपर्क उत्पन्न होता है; जीभ संपर्क के आधार पर जीभ संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। शरीर तत्व के आधार पर शरीर संपर्क उत्पन्न होता है; शरीर संपर्क के आधार पर शरीर संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। मन तत्व पर निर्भरता से मन-संपर्क उत्पन्न होता है; मन-संपर्क पर निर्भरता से मन-संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है।

"इस प्रकार, हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भरता से संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता पर निर्भरता से संवेदनाओं (वेदना) की विविधता उत्पन्न होती है।"

---

89. संवेदनाओं की विविधता (वेदना) (2) (वेदनानात्त2 संस वेदना-नानात्व)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही इंद्रिय विषयों से संपर्क की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्क की विविधता के कारण ही वेदनाओं की विविधता उत्पन्न होती है। संपर्क की विविधता वेदनाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती; तत्वों की विविधता संपर्क की विविधता पर निर्भर नहीं करती।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? आँख तत्व (धातु)... (जैसा कि 85 में है)... मन तत्व। इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है; संपर्कों की विविधता के आधार पर संवेदनाओं (वेदना) की विविधता उत्पन्न होती है? क्या संपर्कों की विविधता संवेदनाओं (वेदना) की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती; क्या तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती?

नेत्र तत्व के आधार पर नेत्र संपर्क (फस्सा/स्पर्श) उत्पन्न होता है; नेत्र संपर्क के आधार पर नेत्र संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। नेत्र संपर्क नेत्र संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) के आधार पर उत्पन्न नहीं होता; नेत्र तत्व नेत्र संपर्क के आधार पर उत्पन्न नहीं होता... मन तत्व के आधार पर मन संपर्क उत्पन्न होता है; मन संपर्क के आधार पर मन संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) उत्पन्न होती है। मन संपर्क मन संपर्क से उत्पन्न संवेदना (वेदना) के आधार पर उत्पन्न नहीं होता; मन का तत्व मन के संपर्क पर निर्भर नहीं होता।

"भिक्षुओं, इसी प्रकार तत्वों की विविधता के आधार पर संपर्कों की विविधता उत्पन्न होती है... तत्वों की विविधता संपर्कों की विविधता पर निर्भर नहीं होती।"

(बाह्य पंचक)

---

90. बाह्य तत्वों की विविधता (बहिरधातुनानत्ता संस्कृत: बहिरा-धातु-नानत्व)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं तुम्हें (बाह्य) तत्वों की विविधता सिखाऊँगा। इसे सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), मैं बोलूँगा....

"और, भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु), ध्वनि तत्व, गंध तत्व, स्वाद तत्व, स्पर्श-वस्तु तत्व, मानसिक-घटना (धम्म) तत्व। भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

---

91. धारणाओं की विविधता (सन्नाननत्ता संस. संज्ञा-नानात्व)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, एलिमेंट्स की अलग-अलग तरह की चीज़ों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की समझ (सन्ना संस. संज्ञा) पैदा होती है; अलग-अलग तरह की चीज़ों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह के इरादे पैदा होते हैं; अलग-अलग तरह के इरादों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की इच्छाएँ पैदा होती हैं; अलग-अलग तरह की इच्छाओं पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह के जुनून पैदा होते हैं; अलग-अलग तरह के जुनून पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की खोज पैदा होती है।

"और, भिक्षुओं, एलिमेंट्स की अलग-अलग तरह क्या है? रूप एलिमेंट (धातु) ..(जैसा कि 90 में है).. मानसिक-घटना (धम्म) एलिमेंट। इसे, भिक्षुओं, एलिमेंट्स की अलग-अलग तरह कहा जाता है।

"और यह कैसे है, भिक्षुओं, कि एलिमेंट्स की अलग-अलग तरह की चीज़ों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की समझ पैदा होती है ... कि अलग-अलग तरह की चीज़ों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की खोज पैदा होती है?

"रूप एलिमेंट पर निर्भर करता है कि रूप की समझ पैदा होती है; रूप की समझ पर निर्भर करते हुए, रूप के बारे में इरादा पैदा होता है; रूप के बारे में इरादे पर निर्भर करते हुए, रूप की इच्छा पैदा होती है; रूप की इच्छा पर निर्भर करते हुए, रूप के लिए जुनून पैदा होता है; रूप के लिए जुनून पर निर्भर करते हुए, रूप की खोज पैदा होती है.... 227

"मानसिक-घटना (धम्म) तत्व पर निर्भर करते हुए, मानसिक घटनाओं (धम्म) की समझ पैदा होती है; मानसिक घटनाओं (धम्म) की समझ पर निर्भर करते हुए, मानसिक घटनाओं (धम्म) के बारे में इरादा पैदा होता है; मानसिक घटनाओं (धम्म) के बारे में इरादे पर निर्भर करते हुए, मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा पैदा होती है; मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा पर निर्भर करते हुए, मानसिक घटनाओं (धम्म) के लिए जुनून पैदा होता है; मानसिक घटनाओं (धम्म) के लिए जुनून पर निर्भर करते हुए, मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज पैदा होती है।

"इस तरह, भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भर करते हुए, समझ की विविधता पैदा होती है ... कि जुनून की विविधता पर निर्भर करते हुए, खोज की विविधता पैदा होती है।"

---

92. खोजों की विविधता नहीं
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के कारण ही धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है... (जैसा कि पिछले सूत्र में है)... भावनाओं की विविधता के कारण ही खोजों की विविधता उत्पन्न होती है। भावनाओं की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भर नहीं करती; इच्छाओं की विविधता भावनाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती; इरादों की विविधता इच्छाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती; धारणाओं की विविधता इरादों की विविधता पर निर्भर नहीं करती; तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती। 228

"और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु)... (जैसा कि 90 में है)... मानसिक घटना (धम्म) तत्व। हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

और यह कैसे संभव है, भिक्षुओं, कि तत्वों की विविधता पर निर्भरता से धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है (जैसा कि 91 में है)... कि भावनाओं की विविधता पर निर्भरता से खोजों की विविधता उत्पन्न होती है? क्या भावनाओं की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती... क्या तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती?

रूप तत्व पर निर्भरता से रूप की धारणा (सन्ना संस. संग्या) उत्पन्न होती है; [...रूप के प्रति जुनून पर निर्भरता से रूप की खोज उत्पन्न होती है। रूप के प्रति जुनून रूप की खोज पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होता; रूप की इच्छा रूप के प्रति जुनून पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती; रूप के संबंध में इरादा रूप की इच्छा पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होता; रूप की धारणा रूप के संबंध में इरादे पर निर्भरता से उत्पन्न नहीं होती; रूप तत्व रूप की धारणा पर निर्भर नहीं होता।] ...229

"मानसिक-घटना (धम्म) तत्व पर निर्भर होकर मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा उत्पन्न होती है; ... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति पर निर्भर होकर मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज उत्पन्न होती है। मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होती ... मानसिक-घटना (धम्म) तत्व मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होता।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भर होकर धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है ... आसक्ति की विविधता पर निर्भर होकर खोजों की विविधता उत्पन्न होती है। आसक्ति की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होती ... तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भर होकर उत्पन्न नहीं होती।"

---

93. बाह्य संपर्कों की विविधता (1) (बहिरफस्सानत्ता1 संस्कृत बहिर-स्पर्श-ननतव)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, एलिमेंट्स की अलग-अलग तरह पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की समझ (सन्ना संस. संज्ञा) पैदा होती है; अलग-अलग तरह की समझ पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह के इरादे पैदा होते हैं; अलग-अलग तरह के इरादों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह के कॉन्टैक्ट्स (सेंस ऑब्जेक्ट्स के साथ; स्पर्श) पैदा होते हैं; अलग-अलग तरह के कॉन्टैक्ट्स (वेदना) पैदा होते हैं; अलग-अलग तरह की समझ (वेदना) पैदा होती है, अलग-अलग तरह की इच्छाएँ पैदा होती हैं; अलग-अलग तरह की इच्छाओं पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह के जुनून पैदा होते हैं; अलग-अलग तरह की इच्छाओं पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह की खोज पैदा होती है; अलग-अलग तरह की खोजों पर निर्भर करता है कि अलग-अलग तरह के फ़ायदे पैदा होते हैं। 230

"और, भिक्षुओं, एलिमेंट्स की अलग-अलग तरह क्या है? रूप एलिमेंट (धातु) ..(जैसा कि 90 में है).. मानसिक-घटना (धम्म) एलिमेंट। भिक्षुओं, इसे तत्वों की विविधता कहते हैं।

"और भिक्षुओं, यह कैसे है कि तत्वों की विविधता पर निर्भर करते हुए अनुभूतियों की विविधता (सन्ना संस. संज्ञा) पैदा होती है ... कि खोजों की विविधता पर निर्भर करते हुए लाभ की विविधता पैदा होती है?

"रूप तत्व पर निर्भर करते हुए रूप की अनुभूति होती है; रूप की अनुभूति पर निर्भर करते हुए रूप के बारे में इरादा पैदा होता है; रूप के बारे में इरादे पर निर्भर करते हुए रूप के साथ संपर्क (इंद्रिय का वस्तु से स्पर्श) पैदा होता है; रूप के संपर्क पर निर्भर करते हुए रूप के संपर्क से पैदा होने वाली संवेदना (वेदना) पैदा होती है; रूप के संपर्क से पैदा होने वाली संवेदना (वेदना) पर निर्भर करते हुए रूप की इच्छा पैदा होती है; रूप की इच्छा पर निर्भर करते हुए रूप के लिए जुनून पैदा होता है; रूप के लिए जुनून पर निर्भर करते हुए रूप की खोज पैदा होती है; रूप की खोज पर निर्भर करते हुए रूप का लाभ होता है....

"मानसिक-घटना (धम्म) तत्व पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) की समझ पैदा होती है; मानसिक घटनाओं (धम्म) की समझ पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) के बारे में इरादा पैदा होता है ... मानसिक घटनाओं (धम्म) के साथ संपर्क (फस्सा/स्पर्श) ... मानसिक घटनाओं (धम्म) के संपर्क से पैदा होने वाली अनुभूति (वेदना) . . . मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा ... मानसिक घटनाओं (धम्म) के लिए जुनून ... मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज; मानसिक घटनाओं (धम्म) की खोज पर निर्भर करते हुए मानसिक घटनाओं (धम्म) का लाभ होता है।

"इस तरह, भिक्षुओं, तत्वों की विविधता पर निर्भर करते हुए धारणाओं की विविधता पैदा होती है . . . कि खोज की विविधता पर निर्भर करते हुए, लाभ की विविधता भी उत्पन्न होती है।"

---

94. बाहरी संपर्कों की विविधता (2) (बहिरापहसनानट्टा2 बिना बहिरा-स्पर्श-नानत्व)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्वों (धातु) की विविधता के कारण ही धारणाओं (सन्न संस. संज्ञा) की विविधता उत्पन्न होती है... (जैसा कि पिछले सूत्र में है)... खोजों की विविधता के कारण ही लाभों की विविधता उत्पन्न होती है। खोजों की विविधता लाभों की विविधता पर निर्भर नहीं करती; मनोभावों की विविधता खोजों की विविधता पर निर्भर नहीं करती... तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता पर निर्भर नहीं करती।

" "और हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता क्या है? रूप तत्व (धातु)... (जैसा कि 85 में है)... मानसिक घटना (धम्म) तत्व। हे भिक्षुओं, इसे ही तत्वों की विविधता कहते हैं।"

भिक्षुओं, यह कैसे संभव है कि तत्वों की विविधता के आधार पर धारणाओं की विविधता उत्पन्न होती है (जैसा कि अनुच्छेद 91 में है)... कि खोजों की विविधता के आधार पर लाभों की विविधता उत्पन्न होती है? कि खोजों की विविधता लाभों की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती... कि तत्वों की विविधता धारणाओं की विविधता के आधार पर उत्पन्न नहीं होती?

रूप तत्व के आधार पर रूप की धारणा (सन्ना संस. संग्या) उत्पन्न होती है... धम्म तत्व के आधार पर मानसिक घटनाओं (धम्म) की धारणा उत्पन्न होती है... धम्म की खोज के आधार पर मानसिक घटनाओं (धम्म) का लाभ उत्पन्न होता है। धम्म की खोज मानसिक घटनाओं (धम्म) के लाभ के आधार पर उत्पन्न नहीं होती; धम्म की खोज के आधार पर मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति उत्पन्न नहीं होती; धम्म की इच्छा मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति आसक्ति के आधार पर उत्पन्न नहीं होती; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संपर्क (फस्सा/स्पर्श) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) मानसिक घटनाओं (धम्म) की इच्छा पर निर्भर नहीं होती; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संपर्क से उत्पन्न वेदना (संवेदना) पर निर्भर नहीं होती; मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में इरादा मानसिक घटनाओं (धम्म) के संपर्क पर निर्भर नहीं होता; मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति मानसिक घटनाओं (धम्म) के संबंध में इरादे पर निर्भर नहीं होती; मानसिक घटना (धम्म) तत्व मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति पर निर्भर नहीं होता।

"इस प्रकार, हे भिक्षुओं, तत्वों की विविधता के आधार पर अनुभूतियों की विविधता उत्पन्न होती है... खोजों की विविधता के आधार पर लाभों की विविधता उत्पन्न होती है; खोजों की विविधता लाभों की विविधता पर निर्भर नहीं होती... तत्वों की विविधता अनुभूतियों की विविधता पर निर्भर नहीं होती।"

(ii) The Second Subchapter
95. सात तत्व
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये सात तत्व (धातु) हैं। कौन से सात? आभा तत्व (धातु), पवित्र तत्व (शुभ तत्व), अनंत आकाश का बोध, चेतना का बोध (विन्नान संस्कृत विज्ञान) तत्व, शून्यता का बोध, न-बोध-न-बोध का बोध, और बोध-संवेदना का अंत। ये सात तत्व हैं।" 231

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान (बुद्ध) से पूछा:
"हे आदरणीय महोदय, आभा तत्व और बोध-संवेदना के अंत (वेदना) के बारे में: ये तत्व किसके आधार पर ज्ञात किए जाते हैं?"

"भिक्षु, अंधकार पर निर्भर होकर आभा तत्व (धातु) का ज्ञान होता है। अपवित्रता पर निर्भर होकर पवित्र तत्व का ज्ञान होता है। रूप पर निर्भर होकर अनंत आकाश तत्व का ज्ञान होता है। अनंत चेतना तत्व का ज्ञान अनंत आकाश तत्व के ज्ञान पर निर्भर होकर होता है। शून्यता तत्व का ज्ञान अनंत चेतना तत्व के ज्ञान पर निर्भर होकर होता है। न-बोध-न-बोध तत्व का ज्ञान शून्यता के ज्ञान पर निर्भर होकर होता है। वेदना और बोध के निरोध का ज्ञान निरोध पर निर्भर होकर होता है।" 232

"परन्तु, आभा तत्व... बोध (संज्ञा) और वेदना के निरोध के विषय में: इन तत्वों की प्राप्ति कैसे की जा सकती है?"

"आभा तत्व, पवित्र तत्व, अनंत अंतरिक्ष का बोध, अनंत चेतना का बोध और शून्यता का बोध: इन तत्वों को बोध सहित प्राप्त करना है। न बोध और न अबोध का बोध: इस तत्व को संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) के अवशेष सहित प्राप्त करना है। 233 बोध और संवेदना का अंत: इस तत्व को अंत की प्राप्ति के रूप में प्राप्त करना है।"

---

96. स्रोत के साथ (सा-निदान)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, कामुक विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होते हैं, स्रोत के बिना नहीं; दुर्भावना के विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होते हैं, स्रोत के बिना नहीं; हानि पहुँचाने के विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होते हैं, स्रोत के बिना नहीं। और ऐसा क्यों है?

"धातु (इंद्रिय तत्व) पर निर्भर होकर कामुक बोध (सन्ना संस. संज्ञा) उत्पन्न होता है; 234 कामुक बोध पर निर्भर होकर कामुक अभिलाषा उत्पन्न होती है; कामुक अभिलाषा पर निर्भर होकर कामुक वासना उत्पन्न होती है; कामुक वासना पर निर्भर होकर कामुक खोज उत्पन्न होती है। कामुक खोज में लगे अज्ञानी सांसारिक व्यक्ति तीन प्रकार से गलत आचरण करता है - शरीर, वाणी और मन से।"

द्वेष तत्व के आधार पर द्वेष की अनुभूति उत्पन्न होती है; द्वेष की अनुभूति के आधार पर द्वेष का इरादा उत्पन्न होता है; द्वेष के इरादे के आधार पर द्वेष से प्रेरित इच्छा उत्पन्न होती है; द्वेष से प्रेरित इच्छा के आधार पर द्वेष से प्रेरित जुनून उत्पन्न होता है; द्वेष से प्रेरित जुनून के आधार पर द्वेष से प्रेरित खोज उत्पन्न होती है। द्वेष से प्रेरित खोज में लगे रहने पर, अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से तीन प्रकार से गलत आचरण करता है। हानि

पहुँचाने के तत्व के आधार पर हानि पहुँचाने की अनुभूति उत्पन्न होती है; हानि पहुँचाने की अनुभूति के आधार पर हानि पहुँचाने का इरादा उत्पन्न होता है; हानि पहुँचाने के इरादे के आधार पर हानि पहुँचाने की इच्छा उत्पन्न होती है; हानि पहुँचाने की इच्छा के आधार पर हानि पहुँचाने का जुनून उत्पन्न होता है; हानि पहुँचाने के जुनून के आधार पर हानि पहुँचाने की खोज उत्पन्न होती है। हानि पहुँचाने की खोज में लगे रहने पर, अशिक्षित सांसारिक व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से तीन प्रकार से गलत आचरण करता है।

भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई व्यक्ति जलती हुई मशाल को सूखी घास के घने जंगल में गिरा दे। यदि वह उसे तुरंत अपने हाथों और पैरों से न बुझाए, तो घास और जंगल में रहने वाले जीव विपत्ति और आपदा का शिकार हो जाएँगे। ठीक इसी प्रकार, यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण अपने भीतर उत्पन्न अधार्मिक धारणाओं को शीघ्रता से त्यागकर, दूर करके, मिटाकर और नष्ट न कर दे, तो वह इसी जीवन में कष्ट, व्यथा, निराशा और बुखार में लीन रहता है; और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, उसका बुरा अंजाम निश्चित है।

भिक्षुओं, त्याग का विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होता है, बिना स्रोत के नहीं; द्वेष न करने का विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होता है, बिना स्रोत के नहीं; अहिंसा का विचार किसी स्रोत से उत्पन्न होता है, बिना स्रोत के नहीं। और ऐसा क्यों है?

"त्याग तत्व (धातु) पर निर्भर होकर त्याग की अनुभूति (सन्ना संस. संग्य) उत्पन्न होती है; 237 त्याग की अनुभूति पर निर्भर होकर त्याग का इरादा उत्पन्न होता है; त्याग के इरादे पर निर्भर होकर त्याग की इच्छा उत्पन्न होती है; त्याग की इच्छा पर निर्भर होकर त्याग की अभिलाषा उत्पन्न होती है; त्याग की अभिलाषा पर निर्भर होकर त्याग की खोज उत्पन्न होती है। त्याग की खोज में लगे हुए, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य शरीर, वाणी और मन से तीन प्रकार से सही आचरण करता है।

"अहिंसा तत्व पर निर्भर होकर अहिंसा की अनुभूति उत्पन्न होती है; 238 अहिंसा की अनुभूति पर निर्भर होकर अहिंसा का इरादा उत्पन्न होता है; अहिंसा के इरादे पर निर्भर होकर अहिंसा द्वारा निर्देशित इच्छा उत्पन्न होती है; अहिंसा द्वारा निर्देशित इच्छा पर निर्भर होकर अहिंसा द्वारा निर्देशित

अभिलाषा उत्पन्न होती है; अहित की भावना से प्रेरित होकर, अहित की भावना से प्रेरित होकर एक खोज उत्पन्न होती है। अहित की भावना से प्रेरित होकर, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य शरीर, वाणी और मन - तीनों प्रकार से सही आचरण करता है।

"अहिंसा के तत्व पर निर्भर होकर अहिंसा की अनुभूति उत्पन्न होती है; अहिंसा की अनुभूति पर निर्भर होकर अहिंसा का इरादा उत्पन्न होता है; अहिंसा के इरादे पर निर्भर होकर अहिंसा की इच्छा उत्पन्न होती है; अहिंसा की इच्छा पर निर्भर होकर अहिंसा की भावना उत्पन्न होती है; अहिंसा की भावना पर निर्भर होकर अहिंसा की खोज उत्पन्न होती है। अहिंसा की खोज में लगे रहकर, शिक्षित श्रेष्ठ शिष्य शरीर, वाणी और मन - तीनों प्रकार से सही आचरण करता है।

"मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति जलती हुई मशाल को सूखी घास के झुरमुट में गिरा दे। यदि वह उसे अपने हाथों और पैरों से तुरंत बुझा दे, तो घास और लकड़ी में रहने वाले प्राणियों पर कोई विपत्ति या विपत्ति नहीं आएगी। इसी प्रकार, यदि कोई तपस्वी या ब्राह्मण अपने भीतर उत्पन्न हुई अधार्मिक धारणाओं को शीघ्र ही त्याग दे, उनका निवारण कर, उन्हें मिटा दे और उनका नाश कर दे, तो वह इसी जीवन में सुखपूर्वक, बिना किसी कष्ट, निराशा और व्याकुलता के निवास करता है; और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, उसके लिए एक शुभ गंतव्य (सुगति) की अपेक्षा की जा सकती है।

---

97. ईंटों का हॉल (गिंजकवासथा)
एक बार भगवान (बुद्ध) नाटिका में ईंटों से बने हॉल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने जवाब दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा;

"भिक्षुओं, किसी तत्व (धातु) पर निर्भर होने पर एक समझ (सन्ना संस. संज्ञा) पैदा होती है, एक नज़रिया पैदा होता है, एक विचार पैदा होता है।" 240

जब यह कहा गया, तो आदरणीय सद्दा काचयान ने भगवान (बुद्ध) से कहा: "आदरणीय महोदय, जब, उन लोगों के संबंध में जो पूरी तरह से प्रबुद्ध नहीं हैं, नज़रिया पैदा होता है। ये पूरी तरह से प्रबुद्ध लोग हैं, यह नज़रिया किस पर निर्भर करता है?" 241

"महान है, काच्चायन, यह तत्व, अज्ञान का तत्व (अविज्जा बिना अविद्या)। एक घटिया तत्व, काच्चायन पर निर्भर होने पर, एक घटिया समझ, एक घटिया नज़रिया, घटिया सोच, घटिया कॉग्निटिव-अवेयरनेस, घटिया चाहत, घटिया इच्छा, एक घटिया इंसान, घटिया बोली पैदा होती है। वह समझाता है, सिखाता है, घोषणा करता है, स्थापित करता है, बताता है, एनालाइज़ करता है, और घटिया को समझाता है। मैं कहता हूँ, उसका पुनर्जन्म घटिया है।

"एक मध्यम तत्व, काच्चायन पर निर्भर होने पर, एक मध्यम समझ, एक मध्यम नज़रिया, मध्यम सोच, मध्यम कॉग्निटिव-अवेयरनेस, मध्यम चाहत, मध्यम इच्छा, एक मध्यम इंसान, मध्यम बोली पैदा होती है। वह समझाता है, सिखाता है, घोषणा करता है, स्थापित करता है, बताता है, एनालाइज़ करता है, और मध्यम को समझाता है। मैं कहता हूँ, उसका पुनर्जन्म मध्यम है।

"एक बेहतर तत्व पर निर्भर होकर, काकयान, एक बेहतर समझ, एक बेहतर नज़रिया, बेहतर विचार, बेहतर कॉग्निटिव-अवेयरनेस, बेहतर चाहत, एक बेहतर इच्छा, एक बेहतर इंसान, बेहतर वाणी पैदा होती है। वह बेहतर को समझाता है, सिखाता है, घोषित करता है, स्थापित करता है, बताता है, एनालाइज़ करता है, और समझाता है। मैं कहता हूँ, उसका पुनर्जन्म बेहतर है।"

---

98. हीन प्रवृत्ति (हीनधिमुक्तिका)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं; अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। 242 अतीत में, तत्वों के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते थे और एक होते थे... भविष्य में भी, तत्वों के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं... वर्तमान में भी, तत्वों के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं; अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक होते हैं।"

---

99. आगे-पीछे चलना (चंकमा संस्कृत: चंकरामन)

एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। उस समय, भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर, पूज्य सारिपुत्त कई भिक्षुओं के साथ टहल रहे थे; पूज्य महामोग्गलाना, पूज्य महाकस्सपा, पूज्य अनुरुद्ध, पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त, पूज्य उपली और पूज्य आनंद भी कई भिक्षुओं के साथ टहल रहे थे। और भगवान (बुद्ध) से कुछ ही दूरी पर, देवदत्त भी कई भिक्षुओं के साथ टहल रहे थे।

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं से कहा,
"भिक्षुओं, क्या आप सारिपुत्त को कई भिक्षुओं के साथ टहलते हुए देख रहे हैं?" 243

"जी, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु महान प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से परिपूर्ण हैं। क्या आप मोग्गलाना को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"उन सभी भिक्षुओं में महान आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) है। क्या आप कस्सपा को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु तपस्वी प्रथाओं के समर्थक हैं। क्या आप अनुराधा को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"उन सभी भिक्षुओं के पास दिव्य दृष्टि है। क्या आप पूर्ण मंतानिपुत्त को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु धर्म (मार्ग, नियम) के वक्ता हैं। क्या आप उपली को कई भिक्षुओं के साथ आगे-पीछे चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु अनुशासन के पालनकर्ता हैं। क्या आप आनंद को कई भिक्षुओं के साथ इधर-उधर चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"वे सभी भिक्षु अत्यंत विद्वान हैं। क्या आप देवदत्त को कई भिक्षुओं के साथ इधर-उधर चलते हुए देख रहे हैं?"

"जी हां, पूज्यवर।"

"उन सभी भिक्षुओं के मन में बुरी इच्छाएं हैं।

" "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। निम्न स्वभाव वाले निम्न स्वभाव वालों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं; अच्छे स्वभाव वाले अच्छे स्वभाव वालों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।"

---

100. Suttas With Verses
सावत्थी, 244 में लिखा है, "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।

जिस प्रकार मल मल से, मूत्र मूत्र से, थूक थूक से, मवाद मवाद से और रक्त रक्त से जुड़ता है, उसी प्रकार, भिक्षुओं, यह तत्वों के माध्यम से होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: निम्न स्वभाव वाले प्राणी निम्न स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।"

भिक्षुओं, तत्व के माध्यम से ही प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।

जैसे दूध दूध से, तेल तेल से, घी घी से, शहद शहद से और गुड़ गुड़ से मिलता है, वैसे ही, भिक्षुओं, तत्व के माध्यम से ही प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं: अच्छे स्वभाव वाले प्राणी अच्छे स्वभाव वाले प्राणियों के साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा हुआ, भविष्य में भी ऐसा होगा, और वर्तमान में भी ऐसा ही होता है।

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"संगति से कामवासना का जंगल (राग) उत्पन्न होता है, 245 अनासक्ति से जंगल कट जाता है।"

जैसे कोई लकड़ी के तख्ते पर चढ़कर
विशाल समुद्र में डूब जाता है, वैसे

ही सद्‌गुणी व्यक्ति
आलसी व्यक्ति की संगति में रहने से डूब जाता है।

इसलिए ऐसे व्यक्ति से बचना चाहिए -

जो आलसी हो, ऊर्जाहीन हो (वीर्य से रहित हो)।

बुद्धिमानों की संगति में रहो।

दृढ़ ध्यानियों के साथ रहो,

एकांत में रहने वाले श्रेष्ठ पुरुषों के साथ रहो।

उनकी ऊर्जा निरंतर जागृत रहती है।

---

101. आस्था का अभाव (असद्ध-संसंदन)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तत्व (धातु) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। जिनमें आस्था नहीं होती, वे आस्थाहीनों के साथ एकत्रित होते हैं, निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, जो कर्म से नहीं डरते, वे कर्म से नहीं डरते, अज्ञानी अज्ञानीों के साथ, आलसी आलसीओं के साथ, भ्रमित मन भ्रमितों के साथ, अज्ञानी अज्ञानियों के साथ, नासमझ आलसीओं के साथ, अज्ञानी आलसीओं के साथ, अज्ञानी भ्रमित मन के साथ, और अज्ञानी अज्ञानी के साथ। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

"भिक्षुओं, तत्व (धार्मिक) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक होते हैं। आस्थावान आस्थावानों के साथ एकत्रित होते हैं, लज्जावान लज्जावानों के साथ, कर्म से डरने वाले कर्म से डरने वालों के साथ, विद्वान विद्वानों के साथ, ऊर्जावान ऊर्जावानों के साथ, ध्यानमग्न सतिमा ध्यानमग्नों के साथ, और बुद्धिमान बुद्धिमानों के साथ। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी यही स्थिति है।"

---

102. आस्थाहीन लोगों में निहित (अश्द्ध-मूलक संस्कृत: अश्रद्ध-मूलक)
(i)

"भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। जिनमें आस्था नहीं होती, वे आस्थाहीन लोगों के साथ, निर्लज्ज लोगों के साथ, मूर्ख लोगों के साथ। जिनमें आस्था होती है, वे आस्थावान लोगों के साथ, लज्जावान लोगों के साथ, और बुद्धिमान लोगों के साथ। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।"

(इस सूत्र के अगले चार भागों में "निर्लज्ज" और "लज्जावान" के स्थान पर दूसरे स्थान पर निम्नलिखित शब्द प्रतिस्थापित किए गए हैं:)

(ii) कुकर्म से भयभीत न होने वाले, कुकर्म से भयभीत होने वाले;...

(iii) अनपढ़, विद्वान; ...

(iv) आलसी, ऊर्जावान;...

(v) the muddle-minded, the meditative(satima)...

---

103. निर्लज्ज में निहित (अहिरिका-मूलक)
(i)
भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। निर्लज्ज निर्लज्जों के साथ, कुकर्म से निर्भय कुकर्म से, मूर्ख मूर्खों के साथ, लज्जित लोग लज्जित लोगों के साथ, लज्जित लोग लज्जित लोगों के साथ, लज्जित लोग कुकर्म से भयभीत लोगों के साथ, बुद्धिमान बुद्धिमानों के साथ। [अतीत में ऐसा था; भविष्य में ऐसा होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।]

(इस सूत्र के अगले तीन भागों में, दूसरे स्थान पर "कुकर्म से निर्भय" और "कुकर्म से भयभीत" के स्थान पर निम्नलिखित प्रतिस्थापित किया गया है:)

(ii) अनपढ़, विद्वान;...

(iii) आलसी, ऊर्जावान;...

(iv) भ्रमित मन, ध्यानमग्न (सतिमा)...

---

104. जो लोग गलत काम करने से नहीं डरते (अनोत्तप्पा-मूलक) उनमें निहित।
(i)

"भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और एकजुट होते हैं। जो कुकर्म से भयभीत नहीं होते, वे कुकर्म से भयभीत न होने वालों के साथ, अज्ञानी अज्ञानी के साथ, और मूर्ख मूर्ख के साथ एकजुट होते हैं। जो कुकर्म से भयभीत होते हैं, वे कुकर्म से भयभीत होने वालों के साथ, विद्वान विद्वान के साथ, और बुद्धिमान बुद्धिमान के साथ एकजुट होते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।"

(इस सूत्र के अगले दो भागों में "अज्ञानी" और "विद्वान" के स्थान पर निम्नलिखित को प्रतिस्थापित किया गया है:)

(ii) आलसी, ऊर्जावान;

(iii) भ्रमित, ध्यानमग्न (सतिमा)।

---

105. अनपढ़ों में निहित (अप्पस्सुत-मूलक)
(i)

भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। अज्ञानी अज्ञानी से, आलसी आलसी से, और अज्ञानी अज्ञानी से जुड़ते हैं। विद्वान विद्वान से, ऊर्जावान ऊर्जावान से, और बुद्धिमान बुद्धिमान से जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

(ii)

अज्ञानी अज्ञानी से, भ्रमित मन भ्रमित मन से, और अज्ञानी अज्ञानी से जुड़ते हैं। विद्वान विद्वान से, ध्यानमग्न ध्यानमग्न से, और बुद्धिमान बुद्धिमान से जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

---

106. आलस्य में निहित (कुसितामूलका)
भिक्षुओं, हे तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एक साथ आते हैं और जुड़ते हैं। आलसी आलसी से, भ्रमित मन भ्रमित मन से, और अज्ञानी अज्ञानी से जुड़ते हैं। ऊर्जावान ऊर्जावान से, ध्यानमग्न सतीम ध्यानमग्न से, और बुद्धिमान बुद्धिमान से जुड़ते हैं। अतीत में भी ऐसा ही था; भविष्य में भी ऐसा ही होगा; और वर्तमान में भी ऐसा ही है।

(iii) कम्मा अनुभाग के पाठ्यक्रम (कम्मपथवग्गो संस्कृत कर्म-पथ-वर्ग)
107. समाधि में नहीं (असमहिता)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जिनमें आस्था नहीं होती वे आस्थाहीन लोगों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं, निर्लज्ज लोग निर्लज्ज लोगों के साथ, जो कुकर्म से नहीं डरते वे कुकर्म से नहीं डरते, जो समाधि अवस्था में नहीं होते वे समाधि अवस्था में नहीं होते, और जो अज्ञानी होते हैं वे अज्ञानी लोगों के साथ

एकत्रित और एकजुट होते हैं। आस्थावान लोग आस्थावान लोगों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं, लज्जा का भाव रखने वाले लोग लज्जा का भाव रखने वालों के साथ, कुकर्म से डरने वाले लोग कुकर्म से डरने वालों के साथ, समाधि अवस्था में रहने वाले समाधि अवस्था में रहने वालों के साथ, और बुद्धिमान लोग बुद्धिमानों के साथ।"

---

108. अनैतिक (दुस्शील)
(ऊपर दिए गए विवरण के अनुसार, सिवाय इसके कि "समाधि अवस्था में न होने वाली अवस्था" और "समाधि अवस्था में होने वाली अवस्था" को क्रमशः "अनैतिक" और "सद्गुणी" से प्रतिस्थापित किया गया है।)

---

109. पाँच प्रशिक्षण नियम (पंचसिक्खपद संस्कृत: पंच-शिक्षा-पद)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जीवन का नाश करने वाले जीवन का नाश करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं; जो बिना दी हुई वस्तुएँ लेते हैं... जो यौन दुराचार में लिप्त होते हैं... जो झूठ बोलते हैं... जो शराब, मदिरा और आलस्य उत्पन्न करने वाले मादक पदार्थों का सेवन करते हैं,

वे उन लोगों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं जो ऐसा करते हैं। जीवन के नाश (खयाल/क्षय) से दूर रहने वाले जीवन के नाश (खयाल/क्षय) से दूर रहने वाले जीवन के नाश (खयाल/क्षय) से दूर रहने वाले जीवन के नाश (खयाल) से दूर रहने वाले जीवन ...

---

110. कम्म के सात पाठ्यक्रम (सत्तकमपथ बिना सप्त-कर्म-पथ)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जीवन का संहार करने वाले जीवन का संहार करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं; जो बिना दिए वस्तुएँ लेते हैं... जो यौन दुराचार में लिप्त होते हैं... जो झूठ बोलते हैं... जो फूट डालने वाली बातें करते हैं... जो कठोर बातें करते हैं... जो व्यर्थ की बातों में लिप्त होते हैं, वे भी ऐसा करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।

जो जीवन के संहार (खयाल/क्षय) से दूर रहते हैं... बिना दिए वस्तुएँ लेने से... यौन दुराचार से... झूठे वाणी से... फूट डालने वाली वाणी से... कठोर वाणी से... व्यर्थ की बातों से दूर रहते हैं, वे भी ऐसा करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।"

---

111. कर्म के दस पाठ्यक्रम (दशकम्मपथ संस्कृत: दश-कर्म-पथ)
सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित और एकजुट होते हैं। जीवन का संहार करने वाले जीवन का संहार करने वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं; वे ... (जैसा कि ऊपर 110 में जारी है:) ... जो लोभी हैं ... जो द्वेष रखते हैं ... गलत दृष्टिकोण वाले हैं, वे गलत दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।

जो जीवन के संहार (खयाल/क्षय) से दूर रहते हैं ... (जैसा कि ऊपर है) जो लोभी नहीं हैं ... द्वेष रहित हैं ... सही दृष्टिकोण वाले हैं, वे सही दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित और एकजुट होते हैं।"

---

112. अष्टांगिक मार्ग (अष्टांगिक संस्कृत)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातुओं) के माध्यम से ही प्राणी एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं। गलत दृष्टिकोण वाले गलत दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं; गलत इरादे वाले... गलत वाणी वाले... गलत कर्म करने वाले... गलत आजीविका वाले... गलत प्रयास करने वाले... गलत ध्यान (सती) वाले... गलत समाधि (संत) वाले गलत समाधि (संत) वाले गलत समाधि (संत) वाले लोगों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।

सही दृष्टिकोण वाले सही दृष्टिकोण वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं; सही इरादे वाले... सही वाणी वाले... सही कर्म करने वाले... सही आजीविका वाले... सही प्रयास करने वाले... सही ध्यान (सती) वाले... सही समाधि (संत) वाले सही समाधि (संत) वाले सही समाधि (संत) वाले लोगों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।"

---

113. दस कारक (दसंग सं. दश-अंग)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह तत्वों (धातु) के माध्यम से ही होता है कि प्राणी एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं। गलत दृष्टिकोण वाले ... (ऊपर दिए गए 8 + 2) गलत समाधि अवस्था ... गलत ज्ञान ... गलत मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) गलत मुक्ति वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।

सही दृष्टिकोण वाले ... (ऊपर दिए गए अनुसार) सही समाधि अवस्था ... सही ज्ञान ... सही मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) सही मुक्ति वालों के साथ एकत्रित होते हैं और एक हो जाते हैं।" 246

(iv) चार तत्वों पर चौथा खंड (चतुर्थवग्गो संस्कृत: चतुर्थ-वर्ग)
114. चार तत्व (चतुधातु)
एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे...

"भिक्षुओं, ये चार तत्व (धातु) हैं। कौन से चार? पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व (धातु), ऊष्मा तत्व (धातु), वायु तत्व (धातु)। ये चार तत्व हैं।" 247

---

115. मेरे ज्ञानोदय से पहले (पुब्बेसंबोध संस्कृत: पूर्व-संबोधि)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी बोधिसत्व था, पूर्णतः प्रबुद्ध नहीं हुआ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'पृथ्वी तत्व (धातु) के संदर्भ में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, इससे कैसे बचा जा सकता है? जल तत्व, ऊष्मा तत्व, वायु तत्व के संदर्भ में सांसारिक सुख

(असदो संस्कृत: असवाद) क्या है, इसमें क्या खतरा है, इससे कैसे बचा जा सकता है?' "तब, भिक्षुओं, मेरे मन में यह विचार आया: पृथ्वी तत्व पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख (सुख) और सोमनस्सा: यही पृथ्वी तत्व में सांसारिक सुख है। पृथ्वी तत्व अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही पृथ्वी तत्व में खतरा है। पृथ्वी तत्व के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) का त्याग और निवारण: यही पृथ्वी तत्व से मुक्ति है।" 248

"जल तत्व, ऊष्मा तत्व और वायु तत्व पर निर्भरता से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद: यही वायु तत्व में सांसारिक सुख है। वायु तत्व अनित्य, दुखदायी और परिवर्तनशील है: यही वायु तत्व में खतरा है। वायु तत्व के प्रति इच्छा और कामवासना का त्याग करना ही वायु तत्व से मुक्ति है।" 249

"हे भिक्षुओं, जब तक मैं इन चारों तत्वों के सांसारिक सुख, खतरे और मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान पाया, तब तक मैंने इस संसार में, जिसमें देव, शैतान और ब्रह्मा विराजमान हैं, इस पीढ़ी में, जिसमें तपस्वी और ब्राह्मण, देव और मनुष्य हैं, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का दावा नहीं

किया।" लेकिन जब मुझे इन सब बातों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया, तब मैंने दावा किया कि मैंने इस संसार में, इसके देवताओं और मनुष्यों सहित, अद्वितीय पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

"मेरे भीतर यह ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति) अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया जन्म नहीं होगा।'"

---

116. मैं निकल पड़ा (अकारिम)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व (धातु) में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) की खोज में निकला। पृथ्वी तत्व में जो भी सांसारिक सुख है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व में सांसारिक सुख कितना व्यापक है।

"भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व में खतरे की खोज में निकला। पृथ्वी तत्व में जो भी खतरा है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व में खतरा कितना व्यापक है।

"भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व से मुक्ति की खोज में निकला। पृथ्वी तत्व से जो भी मुक्ति है, मैंने उसे खोज लिया है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व से मुक्ति कितनी व्यापक है।

"भिक्षुओं, मैं पृथ्वी तत्व में सांसारिक सुख की खोज में निकला..." जल तत्व से मुक्ति, ऊष्मा तत्व से मुक्ति, वायु तत्व से मुक्ति का खतरा। वायु तत्व से जो भी मुक्ति संभव है, वह मैंने खोज ली है। मैंने प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से स्पष्ट रूप से देखा है कि पृथ्वी तत्व से मुक्ति कितनी दूर तक फैली हुई है।

"अब तक, भिक्षुओं, क्योंकि मैं इन चार तत्वों (जैसा कि ऊपर बताया गया है) के मामले में सांसारिक सुख, खतरे और मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जानता था... देवों और मनुष्यों के मामले में।

मुझे यह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'मेरी मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) अविचल है; यह मेरा अंतिम पुनर्जन्म है; अब कोई नया अस्तित्व (पुनर्जन्म का कारण) नहीं है।'"

---

117. यदि कोई नहीं होता (नोसेडम)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यदि पृथ्वी तत्व (धातु) में सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद) न होता, तो प्राणी उससे मोहित न होते; परन्तु पृथ्वी तत्व में सांसारिक भोग होने के कारण प्राणी उससे मोहित हो जाते हैं। यदि पृथ्वी तत्व में भय न होता, तो प्राणी उससे घृणा (निब्बिद) न करते; परन्तु पृथ्वी तत्व में भय होने के कारण प्राणी उससे घृणा करते हैं। यदि पृथ्वी तत्व से कोई मुक्ति न होती, तो प्राणी उससे मुक्त न होते; परन्तु पृथ्वी तत्व से मुक्ति होने के कारण प्राणी उससे मुक्त हो जाते हैं।

भिक्षुओं, यदि जल तत्व में सांसारिक भोग न होता... ऊष्मा तत्व में... वायु तत्व में, तो प्राणी उससे मोहित न होते... परन्तु वायु तत्व से मुक्ति होने के कारण प्राणी उससे मुक्त हो जाते हैं।"

"हे भिक्षुओं, जब तक प्राणी इन चारों तत्वों के मामले में सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद) को सांसारिक सुख के रूप में, संकट को संकट के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से नहीं जान लेते, तब तक वे इस संसार से, इसके देवों, मार (शैतान) और ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के साथ, इस पीढ़ी से, इसके तपस्वियों और ब्राह्मणों के साथ, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुक्त नहीं हो पाते; वे इससे विरक्त नहीं हो पाते, इससे मुक्त नहीं हो पाते, और न ही वे विवशता रहित मन से निवास करते हैं। परन्तु जब प्राणी इन सब को प्रत्यक्ष रूप से जान लेते हैं, तब वे इस संसार से, इसके देवों और मनुष्यों के साथ, मुक्त हो जाते हैं... वे इससे विरक्त हो जाते हैं, इससे मुक्त हो जाते हैं, और वे विवशता रहित मन से निवास करते हैं।" 251

---

118. केवल एकांतदुक्खा (एक्सक्लूसिवली पसरिंग)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यदि यह पृथ्वी तत्व (धातु) केवल दुखमय होता, दुख में डूबा रहता, दुख में ही सराबोर होता, और आनंद में भी सराबोर न होता, तो प्राणी इससे मोहित नहीं होते। परन्तु क्योंकि पृथ्वी तत्व सुखमय है, सुख में सराबोर है, आनंद में सराबोर है, और केवल दुख में ही सराबोर नहीं है, इसलिए प्राणी इससे मोहित हो जाते हैं।

"भिक्षुओं, यदि यह जल तत्व केवल दुखमय होता... यदि यह ऊष्मा तत्व केवल दुखमय होता... यदि यह वायु तत्व केवल दुखमय होता, दुख में डूबा रहता, दुख में ही सराबोर होता, और आनंद में भी सराबोर न होता, तो प्राणी इससे मोहित नहीं होते। परन्तु क्योंकि वायु तत्व सुखमय है, सुख में सराबोर है, आनंद में सराबोर है, और केवल दुख में ही सराबोर नहीं है, इसलिए प्राणी इससे मोहित हो जाते हैं।

भिक्षुओं, यदि यह पृथ्वी तत्व केवल सुखदायी होता, आनंद में डूबा रहता, और दुख में भी न डूबा रहता, तो प्राणियों को इससे घृणा (निब्बिद) नहीं होती। परन्तु क्योंकि पृथ्वी तत्व दुखदायी है, दुख में डूबा रहता है, और केवल आनंद में ही नहीं डूबा रहता, इसलिए प्राणियों को इससे घृणा होती है।

भिक्षुओं, यदि यह जल तत्व केवल सुखदायी होता... यदि यह ऊष्मा तत्व केवल सुखदायी होता... यदि यह वायु तत्व केवल सुखदायी होता, आनंद में डूबा रहता, और दुख में भी न डूबा रहता, तो प्राणियों को इससे घृणा नहीं होती। परन्तु क्योंकि वायु तत्व दुखदायी है, दुख में डूबा रहता है, और केवल आनंद में ही नहीं डूबा रहता, इसलिए प्राणियों को इससे घृणा होती है।

---

119. आनंद (अभिनंदन)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, जो पृथ्वी तत्व (धातु) में आनंद लेता है, वह दुख में आनंद लेता है। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद लेता है, वह दुख से मुक्त नहीं होता। जो जल तत्व... ऊष्मा तत्व... वायु तत्व में आनंद लेता है, वह दुख में आनंद लेता है। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद लेता है, वह दुख से मुक्त नहीं होता।

जो पृथ्वी तत्व... वायु तत्व में आनंद नहीं लेता, वह दुख में आनंद नहीं लेता। मैं कहता हूँ, जो दुख में आनंद नहीं लेता, वह दुख से मुक्त होता है।"

---

120. उत्पत्ति (उप्पद संस्कृत. उत्पत्ति)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, पृथ्वी तत्व (धातु) का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है। 253 जल तत्व (धातु) ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व का उद्भव, निरंतरता, उत्पादन और प्रकटीकरण दुख का उद्भव, रोग की निरंतरता और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का प्रकटीकरण है।

पृथ्वी तत्व ... वायु तत्व का निरोध, शांत होना और देहांत दुख का निरोध, रोग का शांत होना और वृद्धावस्था एवं मृत्यु का देहांत है।"

---

121. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये चार तत्व (धातु) हैं। कौन से चार? पृथ्वी तत्व, जल तत्व, ऊष्मा तत्व और वायु तत्व।

जो तपस्वी या ब्राह्मण भिक्षु इन चारों तत्वों के सांसारिक सुख (असदो संस्कृत: असवाद), खतरे और उनसे बचने के तरीके को यथावत नहीं समझते, उन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और उसमें निवास नहीं करते।"

"लेकिन, भिक्षुओ, जो तपस्वी और ब्राह्मण इन चार चीज़ों के मामले में दुनियावी सुख, खतरे और बचने को असल में समझते हैं, उन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये आदरणीय काबिल लोग, दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से इसे खुद महसूस करके, इसी जीवन में तप और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और उसमें रहते हैं।"

---

122. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, ये चार तत्व हैं। कौन से चार? पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व, ऊष्मा तत्व, वायु तत्व।

वे तपस्वी या ब्राह्मण, भिक्षु, जो इन चार तत्वों के उद्भव और क्षय, सांसारिक सुख, संकट और उससे मुक्ति को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझते; मैं इन्हें तपस्वियों में भी तपस्वी नहीं मानता...

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन चारों तत्वों के उद्भव और अपव्यय, सांसारिक भोग, भय और उससे मुक्ति को यथार्थ रूप में समझते हैं; मैं इन्हें तपस्वियों में भी तपस्वी और ब्राह्मणों में भी ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश कर जाते हैं और निवास करते हैं।

---

123. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो पृथ्वी तत्व (धातु), उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते; जो जल तत्व ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व, उसकी उत्पत्ति, उसका निरोध और उसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी नहीं मानता।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में श्रेष्ठ तपस्वी और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

अध्याय 4: बिना खोजे जा सकने वाले आरंभ के (अनामत्तग्गसम्युत) {सम्युत-15}
(i) पहला उप-अध्याय (घास और लकड़ी)
124. घास और लकड़ी (तिनकत्थ संस्कृत: तृण-कष्ठ)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। 254 अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। मान लीजिए, भिक्षुओं, एक व्यक्ति इस जंबूद्वीप में जो भी घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्ते हैं, उन्हें काटकर एक ढेर में इकट्ठा कर ले। ऐसा करने के बाद, वह उन्हें नीचे रखते हुए (प्रत्येक के लिए) कहे: 'यह मेरी माता है, यह मेरी माता की माता है।' उस व्यक्ति की माता-पिता और दादी-नानी का क्रम कभी समाप्त नहीं होगा, फिर भी इस जंबूद्वीप की घास, लकड़ी, शाखाएँ और पत्तियाँ सब समाप्त हो जाएँगी। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, इस संसार का कोई आरंभ नहीं है। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, इतने लंबे समय से आपने दुख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव किया है और श्मशान को बढ़ाया है। सभी संस्कारों के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना, उनके प्रति वैराग्य होना और उनसे मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त करना ही पर्याप्त है।

---

125. पृथ्वी (पथवी संस्कृत: पृथ्वी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा सं. अविद्या) और तृष्णा (तन्हा सं. तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई प्रथम बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, मान लीजिए कि कोई मनुष्य इस विशाल पृथ्वी को बेर के बीज के आकार की मिट्टी की गेंदों में तोड़कर नीचे रख दे और प्रत्येक गेंद के लिए कहे: 'यह मेरे पिता हैं, यह मेरे दादा हैं।' उस व्यक्ति के पूर्वजों और दादाओं का क्रम कभी समाप्त नहीं होगा, फिर भी यह विशाल पृथ्वी समाप्त हो जाएगी। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, इस संसार का कोई आरंभ नहीं है। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, आपने इतने लंबे समय तक दुख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव किया है और श्मशान को बढ़ाया है। सभी संस्कारों के प्रति घृणा का भाव रखना, उनके प्रति वैराग्य का भाव रखना और उनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।

---

126. आँसू (आशु संस्कृत: अश्रु)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई प्रथम बिंदु ज्ञात नहीं है। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, कौन सा अधिक है: इस दीर्घ मार्ग पर भटकते हुए, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से वियोग के कारण विलाप करते हुए बहाए गए आँसुओं की धारा - यह या चारों महामहासागरों का जल?" 255

"हे पूज्यवर, जैसा कि हम भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धर्म (मार्ग, नियम) को समझते हैं, इस दीर्घ मार्ग पर भटकते हुए, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से वियोग के कारण विलाप करते हुए बहाए गए आँसुओं की धारा - केवल यही चारों महामहासागरों के जल से अधिक है।"

"अच्छे, अच्छे, भिक्षुओं! यह अच्छा है कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को इस प्रकार समझते हैं। इस लंबे मार्ग पर विचरण करते हुए, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से अलग होकर रोते-बिलखते हुए आपने जो आँसुओं की धारा बहाई है, वह अकेले ही चारों महामहासागरों के जल से अधिक है।

भिक्षुओं, आपने लंबे समय तक माता की मृत्यु का अनुभव किया है; अप्रिय से जुड़कर और सुखद से अलग होकर रोते-बिलखते हुए आपने जो आँसुओं की धारा बहाई है, वह चारों महामहासागरों के जल से अधिक है।

भिक्षुओं, आपने लंबे समय तक पिता की मृत्यु... भाई की मृत्यु... बहन की मृत्यु... पुत्र की मृत्यु... पुत्री की मृत्यु... रिश्तेदारों की हानि... धन की हानि... बीमारी से हानि का अनुभव किया है; जैसा कि आपने अनुभव किया है, अप्रिय से जुड़कर और सुखद से अलग होकर रोने-धोने से, आपके द्वारा बहाए गए आँसुओं की धारा चारों महामहासागरों के जल से भी अधिक है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है) है... सभी संस्कारों (कर्म संस्कार, बाध्यकारी व्यवहार) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, और उनसे मुक्त (विमुक्त) होना ही पर्याप्त है।

---

127. माँ का दूध (खीरा संस क्षीरा)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, आपके विचार में क्या श्रेष्ठ है: वह माता का दूध जो आपने इस दीर्घकालीन यात्रा में पान किया है - यह या चारों महामहासागरों का जल?"

"हे पूज्यवर, भगवान (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धर्म (मार्ग, नियम) के अनुसार, इस दीर्घकालीन यात्रा में हमने जो माता का दूध पान किया है - वह अकेले ही चारों महामहाराजों के जल से श्रेष्ठ है।"

"अच्छे, अच्छे, भिक्षुओं! यह अच्छी बात है कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को इस प्रकार समझते हैं। इस लंबी यात्रा में आपने जो माता का दूध पिया है, वह अकेले ही चारों महामहासागरों के जल से कहीं अधिक है। इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि है (जैसा कि 124 में है)... इससे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

128. पर्वत (पब्बत संस पर्वत)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"आदरणीय गुरुदेव, एक युग (कप्प/कल्प) कितना लंबा होता है?" 256

"एक युग (कप्प/कल्प) लंबा होता है, भिक्षु। इसे गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि यह इतने वर्ष है, या इतने सौ वर्ष है, या इतने हजार वर्ष है, या इतने लाख वर्ष है।" "

तो क्या कोई उपमा देना संभव है, आदरणीय गुरुदेव?"

"हाँ, भिक्षु," भगवान (बुद्ध) ने कहा। हे भिक्षु, मान लीजिए एक विशाल पत्थर का पर्वत है जो एक योजन लंबा, एक योजन चौड़ा और एक योजन ऊंचा है, जिसमें कोई छेद या दरार नहीं है, वह चट्टान का एक ठोस पिंड है। हर सौ वर्ष के अंत में एक मनुष्य उसे कशम के कपड़े से एक बार रगड़ता है। 257 इस प्रयास से वह विशाल पत्थर का पर्वत घिसकर नष्ट हो सकता है, परन्तु युग का अंत नहीं होगा। हे भिक्षु, युग इतना लंबा होता है। और ऐसे ही लंबे युगों में हम अनेक युगों, अनेक सैकड़ों युगों, अनेक हजार युगों, अनेक लाखों युगों में भटक चुके हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षु, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।

---

129. सरसों का बीज (सासपा)
सावत्थी में, एक भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आया, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और उनसे कहा,
"हे पूज्यवर, एक युग (कप्प कल्प) कितना लंबा होता है?"

"भिक्षु, एक युग लंबा होता है। इसे गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि यह इतने वर्ष हैं, या इतने सौ वर्ष हैं, या इतने हजार वर्ष हैं, या इतने लाख वर्ष हैं।" "

तो क्या कोई उपमा देना संभव है, हे पूज्यवर?"

"हाँ, संभव है," भगवान (बुद्ध) ने कहा। हे भिक्षु, मान लीजिए एक नगर है जिसकी लोहे की दीवारें एक योजन लंबी, एक योजन चौड़ी और एक योजन ऊंची हैं, और वह सरसों के दानों से भरा हुआ है जो चोटी के समान घने हैं। हर सौ वर्ष के अंत में एक व्यक्ति वहां से एक सरसों का दाना निकालता

है। इस प्रयास से सरसों के दानों का विशाल ढेर भले ही समाप्त हो जाए, परन्तु युग का अंत न हो। हे भिक्षु, युग इतना ही लंबा होता है। और ऐसे ही लंबे युगों में हम अनेक युगों, अनेक सौ युगों, अनेक हजार युगों, अनेक लाख युगों तक विचरण कर चुके हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि हे भिक्षु, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है (विमुक्ति)।

---

130. शिष्य (सावक संस्कृत श्रावक)
सावत्थी में। [183] तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, "हे पूज्यवर, कितने युग (कल्प/कल्प) बीत चुके हैं?"

"भिक्षुओं, कई युग बीत चुके हैं। उन्हें गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि वे इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हजार युग हैं, या इतने लाख युग हैं।" "

परन्तु क्या कोई उपमा देना संभव है, हे पूज्यवर?"

"हाँ, भिक्षुओं," भगवान (बुद्ध) ने कहा। भिक्षुओं, मान लीजिए कि यहाँ चार शिष्य हैं, जिनमें से प्रत्येक का जीवनकाल सौ वर्ष है, और वे सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं, और प्रत्येक दिन उन्हें एक लाख युगों का स्मरण करना है। सौ वर्ष पूरे होने पर जब वे चारों शिष्य, जिनका जीवनकाल सौ वर्ष है, इस जीवन के अंत में इस दुनिया से विदा हो जाएँगे, तब भी उनके द्वारा स्मरण न किए गए युग शेष रहेंगे। 258 उनका गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि वे इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हज़ार युग हैं, या इतने लाख युग हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि भिक्षुओं, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि 124 में है)। इससे मुक्त होना ही पर्याप्त है (विमुक्ति)।

---

131. गंगा नदी
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तभी एक ब्राह्मण भगवान (बुद्ध) के पास आया और उनसे अभिवादन किया। अभिवादन और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वह एक तरफ बैठ गया और उनसे बोला, “गुरु गौतम, कितने युग बीत चुके हैं?”

“ब्राह्मण, अनेक युग बीत चुके हैं। उन्हें गिनना और यह कहना आसान नहीं है कि वे इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हजार युग हैं, या इतने लाख युग हैं।” “

परन्तु क्या इसकी कोई उपमा दी जा सकती है, गुरु गौतम?”

“हाँ, संभव है,” भगवान (बुद्ध) ने कहा। "मान लीजिए, ब्राह्मण, गंगा नदी के उद्‌गम स्थल और सागर में उसके प्रवेश स्थल के बीच रेत के कण हैं: इन्हें गिनकर यह कहना आसान नहीं है कि इतने कण हैं, या इतने सौ कण हैं, या इतने हज़ार कण हैं, या इतने लाख कण हैं। ब्राह्मण, बीते हुए युग तो इससे भी कहीं अधिक हैं। इन्हें गिनकर यह कहना आसान नहीं है कि इतने युग हैं, या इतने सौ युग हैं, या इतने हज़ार युग हैं, या इतने लाख युग हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि, ब्राह्मण, इस संसार का कोई ज्ञात आरंभ नहीं है (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है)। इससे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

जब यह कहा गया, तो उस ब्राह्मण ने भगवान (बुद्ध) से कहा:

"हे भगवान गौतम! हे भगवान गौतम!... आज से भगवान गौतम मुझे एक ऐसे आम अनुयायी के रूप में याद रखें जो जीवन के लिए शरण में गया है।"

---

132. डंडा
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल का है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। जैसे हवा में उछाली गई छड़ी कभी अपने तल पर, कभी अपने किनारे पर और कभी अपने शीर्ष पर गिरती है, वैसे ही प्राणी अज्ञान (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों की तरह ही इस लोक से परलोक जाते हैं, कभी परलोक से इस लोक में आते हैं। 259 इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल का है (जैसा कि 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

133. व्यक्ति (पुग्गला)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं!"
260

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने कहा:

"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। यदि कोई उन्हें एकत्रित करे, तो एक व्यक्ति जो अज्ञान (संज्ञान) और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से विवश होकर भटकता रहे, वह अपने पीछे वेपुल्ला पर्वत के समान अस्थि-ढेर छोड़ जाएगा, और एकत्रित अस्थि-ढेर नष्ट नहीं होगा। 261 इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है... इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"एक व्यक्ति द्वारा छोड़ी गई हड्डियों का ढेर; एक युग (कप्प/कल्प) बीतने पर
पर्वत के समान ऊँचा ढेर बन जाएगा; ऐसा महान ऋषि ने कहा है।

यह इतना विशाल है; जितना
मगध पर्वत श्रृंखला में गिद्ध शिखर के उत्तर में स्थित ऊँचा वेपुल्ला पर्वत।

परन्तु जब कोई सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से (ध्यान में, पस्सति) देखता है; तो वह व्यक्ति, अधिक से अधिक सात बार और विचरण करके; सभी बंधनों को तोड़कर
दुख का अंत करता है।"

(ii) दूसरा उप-अध्याय (दुर्भाग्यशाली)

134. दुर्भाग्यशाली (दुग्गता संस्कृत: दुर्गति)

एक बार, जब वे सावत्थी में निवास कर रहे थे, भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, यह संसार अनादि है। अज्ञान (अविज्या संस्कृत: अविद्या) से विवश और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से जकड़े प्राणियों का कोई आरंभ बिंदु ज्ञात नहीं है। जब भी आप किसी को दुर्भाग्य या कष्ट में देखें, तो आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं: 'हमने भी इस दीर्घ चक्र में यही अनुभव किया है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि है (जैसा कि अनुच्छेद 124 में है)। इनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

135. सुखी (सुखी संस्कृत: सुखी)

सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है... जब भी आप किसी को सुखी और भाग्यशाली देखें, तो आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं: 'हमने भी इस दीर्घ चक्र में यही अनुभव किया है।' इसका कारण क्या है? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है... उनसे मुक्त होना ही पर्याप्त है।"

---

136. तीस भिक्षु (तिम्समत्ता)

राजगृह में बांस के बाग (वेलुवन) में। फिर पावा से तीस भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए - सभी जंगल में रहने वाले, भिक्षाटन करने वाले, चीथड़े पहनने वाले, तीन वस्त्र पहनने वाले, फिर भी सभी बेड़ियों में जकड़े हुए थे। 262 पास आकर, उन्होंने भगवान (बुद्ध) को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। फिर भगवान (बुद्ध) के मन में आया:

"पावा से आए ये तीस भिक्षु सभी जंगल में रहने वाले, भिक्षाटन करने वाले, चीथड़े पहनने वाले, तीन वस्त्र पहनने वाले हैं, फिर भी सभी बेड़ियों में जकड़े हुए हैं। मैं उन्हें धम्म (पथ, कानून) इस तरह सिखाऊँ कि जब वे इन्हीं आसनों पर बैठे रहेंगे तो उनके मन आसक्ति न रखने से गंदगी से मुक्त (विमुत्त रहित विमुक्त) हो जाएँगे।"

फिर भगवान (बुद्ध) ने उन भिक्षुओं से इस तरह कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने जवाब दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, इस संसार की कोई शुरुआत नहीं है। पहली बात तो यह समझ में नहीं आती कि जीव अज्ञान (अविद्या रहित) और लालसा (तृष्णा रहित) से बंधे हुए भटकते और भटकते रहते हैं। भिक्षुओं, तुम क्या सोचते हो, क्या ज़्यादा है: जब तुम्हारा सिर काटा गया था और तुम इस लंबे रास्ते पर घूमते और भटकते रहे, तो तुम्हारे खून की जो धार बही - यह या चार महासागरों का पानी?"

"जैसा कि हम भगवान (बुद्ध) के सिखाए धम्म को समझते हैं, आदरणीय महोदय, जब हमारे सिर काटे गए थे और हम इस लंबे रास्ते पर घूमते और भटकते रहे, तो हमारे खून की जो धार बही - यह अकेली चार महासागरों के पानी से ज़्यादा है।"

"बहुत बढ़िया, बहुत बढ़िया, भिक्षुओं! यह अच्छी बात है कि तुम मेरे सिखाए धम्म को इस तरह समझते हो। इस लंबे रास्ते पर घूमते-फिरते तुमने जो खून की धार बहाई है - वह अकेले ही चार बड़े समुद्रों के पानी से ज़्यादा है। भिक्षुओं, बहुत समय तक तुम गाय रहे हो, और जब गाय के रूप में तुम्हारा सिर काटा गया, तो तुमने जो खून की धार बहाई वह चार बड़े समुद्रों के पानी से ज़्यादा है। बहुत समय तक तुम भैंस, भेड़, बकरी, हिरण, मुर्गियाँ और सूअर रहे हो.... बहुत समय तक तुम्हें चोर, लुटेरे और व्यभिचारी के तौर पर पकड़ा गया है, और जब तुम्हारा सिर काटा गया, तो तुमने जो खून की धार बहाई वह चार बड़े समुद्रों के पानी से ज़्यादा है। किस वजह से? क्योंकि, भिक्षुओं, यह संसार बिना खोजे शुरू होने वाला है..(जैसा कि 124 में है).. इनसे आज़ाद होने के लिए यह काफ़ी है।"

यही भगवान (बुद्ध) ने कहा था। भगवान (बुद्ध) की बात सुनकर वे भिक्षु बहुत खुश हुए। और जब यह बात कही जा रही थी, तो पावा के तीस भिक्षुओं के मन अनासक्ति से सारी बुराइयों से आज़ाद हो गए।

137-142. माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री (मातु, पितु, भतु, भगिनी, पुत्त, धितु)
मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान (बुद्ध) श्रावस्ती में जेतवन (जेतवन) में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में रह रहे थे।

वहीं से भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा,

"भिक्षुओं, संसार (पुनर्जन्म का चक्र) का कोई अंत नहीं है, अज्ञान (अविज्ज संस्कृत: अविद्या) में डूबे और तृष्णा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) से बंधे प्राणियों का कोई आरंभ नहीं बताया जा सकता, जो एक जन्म से दूसरे जन्म तक दौड़ते रहते हैं।

भिक्षुओं, इस लंबे पुनर्जन्म के चक्र में आपको ऐसा कोई प्राणी नहीं मिलेगा जो पहले आपकी माता...आपके पिता...आपके भाई...आपकी बहन...आपका पुत्र...आपकी पुत्री न रहा हो।"

इसका कारण क्या है? हे भिक्षुओं, पुनर्जन्मों का यह चक्र अंतहीन है, इसका कोई आरंभिक बिंदु नहीं बताया जा सकता। अज्ञान से विवश और तृष्णा से जकड़े प्राणियों का कोई प्रथम बिंदु नहीं देखा जा सकता। हे भिक्षुओं, आपने इतने लंबे समय तक दुख, पीड़ा और विपत्ति का अनुभव किया है और श्मशान को बढ़ाया है। सभी
संस्कारों के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, और उनसे मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त करना ही पर्याप्त है।

---

143. वेपुल्ला पर्वत (वेपुल्लापब्बत संस्कृत: वेपुल्ला-पर्वत)
एक बार भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:
"भिक्षुओं, यह संसार अनादि काल से विद्यमान है। अज्ञान (अविज्जा संस. अविद्या) और तृष्णा (तन्हा संस. तृष्णा) से विवश होकर भटकते प्राणियों का कोई आरंभिक बिंदु ज्ञात नहीं है। हे भिक्षुओं, अतीत में इस वेपुल्ला पर्वत को पचिनवंश कहा जाता था, और उस समय इन लोगों को तिवर कहा जाता था। तिवरों का जीवनकाल 40,000 वर्ष था। वे चार दिनों में पचिनवंश पर्वत पर चढ़ सकते थे और चार दिनों में उतर सकते थे। उस समय पूर्णतः प्रबुद्ध अरहंत भगवान (बुद्ध) ककुसंध संसार में अवतरित हुए थे। उनके दो प्रमुख शिष्य विदुर और संजीव थे, जो एक उत्तम जोड़ी थे। देखो, भिक्षुओं! इस पर्वत का वह नाम लुप्त हो गया है, वे लोग मर चुके हैं, और उस भगवान (पूर्व बुद्ध) ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है। भिक्षुओं, संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) क्षणभंगुर होते हैं, वे इतने अस्थिर और अविश्वसनीय होते हैं। भिक्षुओं, सभी संस्कारों (व्यवहार) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्य होना ही पर्याप्त है, उनसे मुक्ति (विमुक्ति) प्राप्त करना ही पर्याप्त है।

"[एक अन्य समय में] अतीत में, भिक्षुओं, इस वेपुल्ला पर्वत को वंकाका कहा जाता था, और उस समय इन लोगों को रोहितास कहा जाता था। रोहितासों का जीवनकाल 30,000 वर्ष था। 264 वे तीन दिनों में वंकाका पर्वत पर चढ़ सकते थे और तीन दिनों में उतर सकते थे। उस समय भगवान (बुद्ध) कोनागमना, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, संसार में अवतरित हुए थे। उनके दो प्रमुख शिष्यों के नाम भिय्योसा और उत्तरा थे, जो एक उत्कृष्ट जोड़ी थे। देखो, भिक्षुओं! इस पर्वत का वह नाम लुप्त हो गया है, वे लोग मर चुके हैं, और उस भगवान (बुद्ध) ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है। संस्कार (व्यवहार संबंधी आदतें) इतने क्षणभंगुर हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है)। इनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।

"[एक और समय पहले], हे भिक्षुओं, इस वेपुल्ला पर्वत को सुपस्सा कहा जाता था, और उस समय इन लोगों को सुप्पिया कहा जाता था। सुप्पियों का जीवनकाल 20,000 वर्ष था। वे दो दिनों में सुपस्सा पर्वत पर चढ़ सकते थे और दो दिनों में उतर सकते थे। उस समय भगवान (बुद्ध) कस्सपा, एक अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध, संसार में अवतरित हुए थे। उनके दो प्रमुख शिष्य तिस्सा और भारद्वाज थे, जो एक उत्तम जोड़ी थे। देखो, हे भिक्षुओं! इस पर्वत का वह नाम लुप्त हो गया है, वे लोग मर चुके हैं, और उस भगवान (बुद्ध) ने परम निर्वाण प्राप्त कर लिया है। संस्कार (व्यवहार-आदतों) इतने क्षणभंगुर हैं (जैसा कि ऊपर बताया गया है)। उनसे मुक्ति पाना ही पर्याप्त है।"

भिक्षुओं, वर्तमान में इस वेपुल्ला पर्वत को वेपुल्ला कहा जाता है, और वर्तमान में इन लोगों को मगधवासी कहा जाता है। मगधवासियों का जीवनकाल अल्प, सीमित और क्षणभंगुर होता है; जो दीर्घ जीवन जीता है वह सौ वर्ष या उससे थोड़ा अधिक जीता है। मगधवासी एक घंटे में वेपुल्ला पर्वत पर चढ़ते हैं और एक घंटे में उतर जाते हैं। वर्तमान में मैं संसार में अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध पुरुष के रूप में अवतरित हुआ हूँ।
मेरे दो प्रमुख शिष्य सारिपुत्त और मोग्गलाना हैं, जो एक उत्तम जोड़ी हैं। भिक्षुओं, एक समय आएगा जब इस पर्वत का नाम लुप्त हो जाएगा, जब ये लोग मर जाएंगे, और मैं अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लूंगा। भिक्षुओं, संस्कार (व्यवहार-आदतें) इतने क्षणभंगुर, इतने अस्थिर, इतने अविश्वसनीय होते हैं। भिक्षुओं, सभी संस्कारों (व्यवहार-आदतों) के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करना ही पर्याप्त है, उनके प्रति वैराग्यवान होना ही पर्याप्त है, और उनके प्रति उदासीन रहना ही पर्याप्त है। उनसे मुक्त हो जाओ।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्थ) ने आगे कहा:

"तिवारों ने इसे पचिनवंस कहा; रोहितासों ने वंकाका,
सुप्पिया लोगों ने सुपस्सा और मगध के लोगों ने वेपुल्ला कहा।

"अफ़सोस, संस्कार (कर्म, बाध्यकारी व्यवहार) अनित्य हैं; वे उत्पन्न और नष्ट होते हैं।
एक बार उत्पन्न होने पर वे समाप्त हो जाते हैं; उनका निवारण आनंददायक है।" 265

अध्याय 5: कस्सप (कस्सापससंयुत्त) के साथ संबंधित प्रवचन {संयुत्त-16}
144. संतोष (संतुष्ट संस्कृत: संतुष्ट)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यह कस्सपा किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट रहता है, और वह किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्टि की प्रशंसा करता है, और वह वस्त्र के लिए अनुचित खोज में संलग्न नहीं होता। 266 यदि उसे वस्त्र न मिले तो वह विचलित नहीं होता, और यदि उसे वस्त्र मिल जाए तो वह उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति रहित, उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उसका उपयोग करता है, उसमें निहित खतरे को देखकर, उससे बचने का मार्ग समझता है। 267

"भिक्षुओं, यह कस्सपा किसी भी प्रकार के भिक्षा भोजन से... किसी भी प्रकार के आवास से... किसी भी प्रकार की औषधीय सामग्री से संतुष्ट रहता है... और यदि उसे ये सब मिल जाएं तो वह उनसे बंधे बिना, उनके प्रति आसक्ति रहित, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनका उपयोग करता है, उनमें निहित खतरे को देखकर, उससे बचने का मार्ग समझता है।"

अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्ट रहेंगे, और किसी भी प्रकार के वस्त्र से संतुष्टि की प्रशंसा करेंगे, और वस्त्र की प्राप्ति के लिए अनुचित खोज में संलग्न नहीं होंगे। यदि हमें वस्त्र न मिले तो हम विचलित नहीं होंगे, और यदि हमें वस्त्र मिल जाए तो हम उसका उपयोग उससे बंधे बिना, उसके प्रति आसक्ति रहित, उसमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उसमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करेंगे।

' 'हम किसी भी प्रकार के भिक्षा भोजन से... किसी भी प्रकार के आवास से... किसी भी प्रकार की औषधीय सामग्री से संतुष्ट रहेंगे... और यदि हमें वे प्राप्त हों तो हम उनका उपयोग उनसे बंधे बिना, उनके प्रति आसक्ति रहित, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करेंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें कश्यप या कश्यप के समान किसी व्यक्ति के उदाहरण से शिक्षा दूंगा। 268 शिक्षा प्राप्त करके, तुम तदनुसार अभ्यास करो।" 269

---

145. गलत काम से बेखौफ (अनोत्ताप्पी)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकस्सपा और पूज्य सारिपुत्त इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बनारसी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महाकस्सपा के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महाकस्सपा को प्रणाम किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

“मित्र, ऐसा कहा जाता है कि जो उत्साही नहीं है और जो कुकर्म से भयभीत नहीं है, वह ज्ञान प्राप्ति के योग्य नहीं है, निर्वाण के योग्य नहीं है, बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने के योग्य नहीं है; परन्तु जो उत्साही है और कुकर्म से भयभीत है, वह ज्ञान प्राप्ति के योग्य है, निर्वाण के योग्य है, बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने के योग्य है। 270 यह किस प्रकार सच है, मित्र?”

"यहाँ, मित्र, एक भिक्षु यह सोचकर उत्साह उत्पन्न नहीं करता:
'यदि मुझमें अजन्मे बुरे और हानिकारक भाव उत्पन्न हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न हुए बुरे और हानिकारक भावों का त्याग न किया जाए, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें अजन्मे लाभकारी (कुशल संस्कृत) भाव उत्पन्न न हों, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न हुए लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।' इस प्रकार वह उत्साही नहीं होता। 271

"और मित्र, वह कुकर्म से कैसे भयभीत नहीं होता? यहाँ, मित्र, एक भिक्षु यह सोचकर भयभीत नहीं होता: 'यदि मुझमें अजन्मे बुरे और हानिकारक भाव उत्पन्न हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है' ... न ही यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न हुए लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।" इस प्रकार वह कुकर्म से भयभीत नहीं होता।

"मित्र, इसी प्रकार जो उत्साही नहीं है और कुकर्म से भयभीत नहीं है, वह ज्ञान प्राप्ति के योग्य नहीं है, निर्वाण के योग्य नहीं है, बंधन से अतुलनीय सुरक्षा प्राप्त करने के योग्य नहीं है।

" "और मित्र, उत्साही कैसे होता है? मित्र, यहाँ एक भिक्षु यह सोचकर उत्साह उत्पन्न करता है: 'यदि मुझमें अजन्मे हानिकारक बुरे भाव उत्पन्न हों, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'... और यह सोचकर: 'यदि मुझमें उत्पन्न लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।' इस प्रकार वह उत्साही होता है।

" "और मित्र, वह कुकर्म से कैसे भयभीत होता है? मित्र, यहाँ एक भिक्षु इस विचार से भयभीत हो जाता है: 'यदि मुझमें अजन्मे हानिकारक भाव उत्पन्न हों, तो इससे मुझे हानि हो सकती है'; और इस विचार से: 'यदि मुझमें उत्पन्न लाभकारी (कुशल) भाव समाप्त हो जाएँ, तो इससे मुझे हानि हो सकती है।" इसलिए वह कुकर्म से डरता है।

"हे मित्र, इसी प्रकार जो व्यक्ति कुकर्म से डरता है और उसके प्रति सजग रहता है, वह ज्ञान प्राप्त करने, निर्वाण प्राप्त करने और बंधन से अद्वितीय मुक्ति प्राप्त करने में सक्षम होता है।"

---

146. चंद्रमा के समान (चंडुपमा, संस्कृत: चंद्र-उपमा)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, तुम्हें परिवारों के पास चंद्रमा की तरह जाना चाहिए - शरीर और मन को समेटे हुए, हमेशा नवोदित व्यक्ति की तरह व्यवहार करते हुए, परिवारों के प्रति अभद्रता न करते हुए। 272 जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी पुराने कुएँ, खाई या नदी के किनारे को देखते समय अपने शरीर और मन को समेट लेता है, उसी प्रकार, भिक्षुओं, तुम्हें परिवारों के पास जाना चाहिए।

" "भिक्षुओं, कस्सपा परिवारों के पास चंद्रमा की तरह जाते हैं - शरीर और मन को समेटे हुए, हमेशा नवोदित व्यक्ति की तरह व्यवहार करते हुए, परिवारों के प्रति अभद्रता न करते हुए। भिक्षुओं, आपके विचार में किस प्रकार का भिक्षु परिवारों के पास जाने योग्य है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं, भगवान (बुद्ध) द्वारा निर्देशित हैं, भगवान (बुद्ध) की शरण लो। यदि भगवान (बुद्ध) इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा।" उससे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।

फिर भगवान (बुद्ध) ने अंतरिक्ष में अपना हाथ हिलाया और कहा:
"भिक्षुओं, जिस प्रकार यह हाथ अंतरिक्ष में नहीं फंसता, न ही उससे बंधा रहता है, न ही उससे बंधता है, उसी प्रकार जब कोई भिक्षु परिवारों के पास जाता है तो उसका मन परिवारों में नहीं फंसता, न ही उनसे बंधा रहता है, न ही यह सोचकर कि 'लाभ चाहने वालों को लाभ मिले, पुण्य चाहने वालों को पुण्य मिले!' 274 वह दूसरों के लाभों पर उतना ही प्रसन्न और आनंदित होता है जितना अपने लाभों पर। ऐसा भिक्षु परिवारों के पास जाने योग्य है।

"भिक्षुओं, जब कस्सपा परिवारों के पास जाता है तो उसका मन परिवारों में नहीं फंसता, न ही उनसे बंधा रहता है, न ही यह सोचकर कि
'लाभ चाहने वालों को लाभ मिले, पुण्य चाहने वालों को पुण्य मिले!' वह दूसरों की उपलब्धियों पर उतना ही प्रसन्न और प्रसन्न होता है जितना अपनी उपलब्धियों पर।

"भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं कि भिक्षु द्वारा धम्म (मार्ग, नियम) का उपदेश देना अशुद्ध कैसे है और धम्म का उपदेश देना शुद्ध कैसे है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

"तो सुनो और ध्यान रखो (मानसिकरो), भिक्षुओं, मैं बोलूँगा।"

"जी, आदरणीय महोदय," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"एक भिक्षु दूसरों को धम्म का उपदेश इस विचार से देता है:
'हे, वे मुझसे धम्म सुनें! सुनकर, वे धम्म में विश्वास प्राप्त करें! विश्वास प्राप्त करके, वे अपना विश्वास मुझ पर प्रकट करें!' 275 ऐसे भिक्षु द्वारा धम्म का उपदेश देना अशुद्ध है।"

लेकिन एक भिक्षु दूसरों को धम्म का उपदेश इस विचार से देता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म की अच्छी व्याख्या की गई है, यह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, तत्काल है, देखने के लिए आमंत्रित करता है, व्यावहारिक है, बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया जाना है। हे, वे मुझसे धम्म सुनें! सुनकर वे धम्म को समझें! समझकर वे तदनुसार अभ्यास करें!' इस प्रकार वह धम्म की अंतर्निहित उत्कृष्टता के कारण दूसरों को धम्म का उपदेश देता है; वह करुणा और सहानुभूति से, कोमल चिंता से दूसरों को धम्म का उपदेश देता है। 276 ऐसे भिक्षु का धम्म का उपदेश शुद्ध है।

भिक्षुओं, कस्सपा दूसरों को धम्म का उपदेश इस विचार से देता है: 'भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म (मार्ग, नियम) की अच्छी व्याख्या की गई है... हे, वे मुझसे धम्म सुनें! सुनकर वे धम्म को समझें! समझकर वे तदनुसार अभ्यास करें!' वह धम्म की अंतर्निहित श्रेष्ठता के कारण दूसरों को धम्म का उपदेश देते हैं; वे करुणा और सहानुभूति से, कोमल प्रेम से दूसरों को धम्म का उपदेश देते हैं।

"भिक्षुओं, मैं आपको कश्यप या कश्यप के समान किसी व्यक्ति के उदाहरण से उपदेश दूंगा। उपदेश प्राप्त करके, आप तदनुसार अभ्यास करें।"

---

147. परिवारों का एक आगंतुक (कुलुपका)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, किस प्रकार का भिक्षु परिवारों का अतिथि बनने के योग्य है, और किस प्रकार का भिक्षु परिवारों का अतिथि बनने के योग्य नहीं है?"

"आदरणीय महोदय, हमारी शिक्षाएँ भगवान (बुद्ध) में निहित हैं...."

भगवान (बुद्ध) ने यह कहा: "भिक्षुओं, एक भिक्षु को परिवारों के पास इस विचार के साथ जाना चाहिए: 'वे मुझे दान दें, संकोच न करें! वे मुझे भरपूर दान दें, थोड़ा नहीं! वे मुझे उत्तम वस्तुएँ दान करें, घटिया वस्तुएँ नहीं! वे मुझे शीघ्र दान दें, विलंब न करें! वे मुझे विचारपूर्वक दान दें, लापरवाही से नहीं!' जब कोई भिक्षु इस विचार से परिवारों के पास जाता है, और यदि वे दान नहीं देते, तो उसे दुख होता है; इस कारण उसे पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव होता है। यदि वे अधिक के बजाय थोड़ा दान देते हैं... यदि वे उत्तम वस्तुओं के बजाय पुरानी वस्तुओं का दान देते हैं... यदि वे शीघ्रता के बजाय विलंब से दान देते हैं... यदि वे विचारशीलता के बजाय लापरवाही से दान देते हैं, तो उसे दुख होता है; इस कारण उसे पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव होता है। ऐसा भिक्षु परिवारों के अतिथि बनने के योग्य नहीं है।

"भिक्षुओं, एक भिक्षु परिवारों के पास इस विचार से जा सकता है:
'जब मैं दूसरों के परिवारों के बीच होता हूँ, तो मैं यह कैसे सोच सकता हूँ: "वे मुझे दान दें, संकोच न करें! ... वे मुझे आदरपूर्वक दान दें, लापरवाही से नहीं!"?' जब कोई भिक्षु इस विचार से परिवारों के पास जाता है, और यदि वे दान नहीं देते... यदि वे विचारशीलता के बजाय लापरवाही से दान देते हैं, तो उसे दुख नहीं होता; इस कारण उसे पीड़ा और अप्रसन्नता का अनुभव नहीं होता। ऐसा भिक्षु परिवारों के अतिथि बनने के योग्य है।

भिक्षुओं, कश्यप परिवारों के पास इसी विचार के साथ जाते हैं... इसलिए यदि वे दान न दें... यदि वे विचारपूर्वक नहीं बल्कि लापरवाही से दान दें, तो उन्हें इससे कोई हानि नहीं होती; उन्हें इससे कोई पीड़ा या अप्रसन्नता नहीं होती।

भिक्षुओं, मैं आपको कश्यप या कश्यप के समान किसी व्यक्ति के उदाहरण से उपदेश दूंगा। उपदेश प्राप्त करके, आप तदनुसार अभ्यास करें।

---

148. पुराना (जिन्ना सं. जीर्ण)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। तब पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे कस्सपा, अब तुम बूढ़े हो गए हो, और तुम्हारे ये पुराने चमड़े के वस्त्र तुम्हारे लिए बोझिल होंगे। इसलिए, हे कस्सपा, गृहस्थों द्वारा दिए गए वस्त्र पहनो, निमंत्रण पर भोजन ग्रहण करो और मेरे निकट निवास करो।" 278

"हे पूज्यवर, मैं बहुत समय से वनवासी रहा हूँ और वनवास की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं भिक्षाभोजन करता रहा हूँ और भिक्षाभोजन की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं चिथड़े वस्त्र पहनता रहा हूँ और चिथड़े वस्त्र पहनने की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं तीन वस्त्र धारण करता रहा हूँ और तीन वस्त्र धारण करने की प्रशंसा करता रहा हूँ; मेरी इच्छाएँ कम रही हैं और इच्छाओं की कमी की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं संतुष्ट रहा हूँ और संतोष की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं एकांत में रहा हूँ और एकांत की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं समाज से विरक्त रहा हूँ और समाज से विरक्त रहने की प्रशंसा करता रहा हूँ; मैं ऊर्जावान रहा हूँ और ऊर्जा (वीर्य) उत्पन्न करने की प्रशंसा करता रहा हूँ।" 279

"हे कस्सपा, आप किस लाभ को ध्यान में रखते हुए इतने समय से वनवासी रहे हैं... (जैसा ऊपर वर्णित है)... और ऊर्जा उत्पन्न करने की प्रशंसा करते रहे हैं?"

"हे पूज्यवर, दो लाभों पर विचार करते हुए। मैं अपने लिए इसी जीवन में एक सुखमय निवास देखता हूँ, और आने वाली पीढ़ियों के लिए करुणा रखता हूँ, यह सोचते हुए कि 'आने वाली पीढ़ियाँ मेरे उदाहरण का अनुसरण करें!' 280 क्योंकि जब वे सुनेंगे, 'बुद्ध के प्रबुद्ध शिष्य लंबे समय तक वनवासी रहे और वनवास की प्रशंसा करते रहे... वे ऊर्जावान थे और ऊर्जा-शक्ति को जागृत करने की प्रशंसा करते रहे,' तो वे तदनुसार अभ्यास करेंगे, और इससे उन्हें लंबे समय तक कल्याण और सुख प्राप्त होगा। हे पूज्यवर, इन दो लाभों पर विचार करते हुए, मैं लंबे समय से वनवासी रहा हूँ... और ऊर्जा-शक्ति (वीर्य) को जागृत करने की प्रशंसा करता रहा हूँ।"

"शाबाश, शाबाश, कस्सपा! तुम संसार के प्रति करुणा से प्रेरित होकर, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण और सुख के लिए साधना कर रहे हो। इसलिए, कस्सपा, पुराने चमड़े के वस्त्र पहनकर भिक्षा मांगने के लिए वन में निवास करो।"

---

149. निर्देश (1) (ओवादा1)
राजगृह में, वेलुवन (बांस के वन) में, पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे कस्सपा, भिक्षुओं को उपदेश दो, उन्हें धर्म का प्रवचन दो। या तो मैं भिक्षुओं को उपदेश दूँ, कस्सपा, या तुम दो। या तो मैं उन्हें धर्म का प्रवचन दूँ या तुम दो।" 281

"हे पूज्यवर, भिक्षुओं को उपदेश देना अब कठिन है और उनमें ऐसे गुण हैं जो उन्हें उपदेश देने में और भी कठिन बनाते हैं। 28 वे अधीर हैं और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण नहीं करते। हे पूज्यवर, मैंने यहाँ आनंद के शिष्य भंडा नामक भिक्षु और अनुराधा के शिष्य अभिंजिका नामक भिक्षु को अपने ज्ञान के विषय में आपस में प्रतिस्पर्धा करते हुए देखा, वे कह रहे थे:
'आओ, भिक्षु, कौन अधिक बोल सकता है? कौन बेहतर बोल सकता है? कौन अधिक देर तक बोल सकता है?'"

तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा:
"आओ, भिक्षु, भंडा और अभिंजिका को मेरे नाम से कहो कि गुरु उन्हें बुला रहे हैं।"

"जी, हे पूज्यवर," उस भिक्षु ने उत्तर दिया, और वह उन भिक्षुओं के पास गया और उनसे कहा: "गुरु पूज्य भिक्षुओं को बुला रहे हैं।"

"जी, मित्र," उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया और भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "क्या यह सच है, भिक्षुओं, कि तुम अपने ज्ञान को लेकर आपस में प्रतिस्पर्धा कर रहे हो, कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक देर तक बोल सकता है?"

"जी, पूज्यवर।"

"क्या तुमने मुझे कभी धर्म (मार्ग, नियम) इस प्रकार सिखाते हुए देखा है: 'आओ, भिक्षुओं, अपने ज्ञान को लेकर आपस में प्रतिस्पर्धा करो और देखो कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक देर तक बोल सकता है'?"

"नहीं, पूज्यवर।"

"यदि तुमने मुझे इस प्रकार धम्म का उपदेश देते हुए कभी नहीं देखा, तो तुम जैसे नासमझों को क्या पता है कि इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षित होकर तुम आपस में अपनी विद्या का प्रदर्शन कर रहे हो कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक समय तक बोल सकता है?"

तब उन भिक्षुओं ने भगवान (बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा: "आदरणीय गुरुदेव, हमने पाप किया है - हम इतने नासमझ, इतने भ्रमित और इतने अयोग्य थे कि इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षित होकर हमने आपस में अपनी विद्या का प्रदर्शन किया कि कौन अधिक बोल सकता है, कौन बेहतर बोल सकता है, कौन अधिक समय तक बोल सकता है। आदरणीय गुरुदेव, भविष्य में संयम के लिए हमारे इस पाप को क्षमा करें।"

"निःसंदेह, भिक्षुओं, आपने एक अपराध किया है - आप कितने बचकाने (नासमझ), कितने भ्रमित और कितने अयोग्य) थे - कि इतने सुस्पष्ट धम्म और अनुशासन में दीक्षा प्राप्त करने के बाद भी आप अपने ज्ञान के मामले में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे थे... लेकिन चूंकि आप अपने अपराध को अपराध मानते हैं और धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करते हैं, इसलिए हम आपको क्षमा करते हैं। क्योंकि जब कोई अपने अपराध को अपराध मानता है, धम्म के अनुसार उसका प्रायश्चित करता है और भविष्य में संयम बरतता है, तो यही गुरु के अनुशासन में वृद्धि है।"

---

150. निर्देश (2) (ओवाडा2)

राजगृह में, वेलुवन (बांस के वन) में, पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: "हे कस्सपा, भिक्षुओं को उपदेश दो, उन्हें धर्म का प्रवचन दो। या तो मैं भिक्षुओं को उपदेश दूँ, कस्सपा, या तुम दो। या तो मैं उन्हें धर्म का प्रवचन दूँ, या तुम दो।"

आदरणीय महोदय, भिक्षुओं को उपदेश देना अब कठिन है, और उनमें ऐसे गुण हैं जो उन्हें उपदेश देने में और भी कठिन बनाते हैं। वे अधीर हैं और आदरपूर्वक उपदेश ग्रहण नहीं करते। आदरणीय महोदय, 283 जो लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) अवस्थाओं के प्रति आस्थाहीन हो, लज्जा का भाव न रखता हो, पाप का भय न हो, ऊर्जा का बल न हो और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि न हो, उसके लिए चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के संबंध में केवल हानि ही अपेक्षित है, वृद्धि नहीं। जैसे कृष्ण पक्ष के दौरान, चाहे दिन हो या रात, चंद्रमा का रंग, वृत्ताकारता, चमक, व्यास और परिधि घटती जाती है, उसी प्रकार, आदरणीय महोदय, जो लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के प्रति आस्थाहीन हो, लज्जा का भाव न रखता हो, पाप का भय न रखता हो, ऊर्जा का बल न हो और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि न हो, उसके लिए चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं के संबंध में केवल हानि ही अपेक्षित है। अवस्थाएँ, विकास नहीं।

"हे आदरणीय महोदय, आस्थाहीन व्यक्ति के लिए हानि का मामला है। लज्जाहीन व्यक्ति... जो कुकर्म से भयभीत नहीं होता... जो आलसी... नासमझ... क्रोधित... द्वेषपूर्ण होता है: उसके लिए हानि का मामला है। जब कोई भिक्षु प्रशिक्षक नहीं होते, तब भी हानि का मामला है।"

आदरणीय महोदय, जिसे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में विश्वास, लज्जा, पाप का भय, ऊर्जा और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) है, चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में केवल वृद्धि ही अपेक्षित है, हानि नहीं। जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में, चाहे दिन हो या रात, चंद्रमा का रंग, वृत्ताकारता, चमक, व्यास और परिधि बढ़ती है, उसी प्रकार, आदरणीय महोदय, जिसे लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में विश्वास, लज्जा, पाप का भय, ऊर्जा और प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) है, चाहे दिन हो या रात, लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में केवल वृद्धि ही अपेक्षित है, हानि नहीं।

आदरणीय महोदय, विश्वास रखने वाले व्यक्ति के लिए यह हानि का मामला नहीं है। लज्जा रखने वाले व्यक्ति के लिए... जो पाप से भयभीत है... ऊर्जावान है... बुद्धिमान है... क्रोध रहित है... द्वेष रहित है: यह हानि का मामला नहीं है। जब भिक्षुओं में से कुछ गुरु भी हों, तो उसे कोई हानि नहीं होगी। "

बहुत खूब, कस्सपा!"

(बुद्ध ने पूज्य महाकस्सपा के पूरे कथन को दोहराया।)

---

151. निर्देश (3) (ओवाडा3)
राजगृह में, वेलुवन (बांस के वन) में, पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे कस्सपा, भिक्षुओं को उपदेश दो, उन्हें धर्म का प्रवचन दो। या तो मैं भिक्षुओं को उपदेश दूँ, कस्सपा, या तुम दो। या तो मैं उन्हें धर्म का प्रवचन दूँ या तुम दो।"

"हे पूज्यवर, भिक्षुओं को उपदेश देना अब कठिन है, और उनमें ऐसे गुण हैं जो उन्हें उपदेश देना कठिन बनाते हैं। वे अधीर हैं और उपदेश को आदरपूर्वक ग्रहण नहीं करते।"

"ठीक इसी प्रकार, कस्सपा, अतीत में वरिष्ठ भिक्षु वनवासी थे और वनवास की प्रशंसा करते थे; वे भिक्षाभोजन करते थे और भिक्षाभोजन की प्रशंसा करते थे; वे चिथड़े वस्त्र पहनते थे और चिथड़े वस्त्र पहनने की प्रशंसा करते थे; वे त्रिव वस्त्र धारण करते थे और त्रिव वस्त्र धारण करने की प्रशंसा करते थे; उनकी इच्छाएँ कम थीं और वे इच्छाओं की कमी की प्रशंसा करते थे; वे संतुष्ट थे और वे संतोष की प्रशंसा करते थे; वे एकांतवासी थे और वे एकांत की प्रशंसा करते थे; वे समाज से विरक्त थे और वे समाज से विरक्तता की प्रशंसा करते थे; वे ऊर्जावान थे और वे ऊर्जा (वीर्य) उत्पन्न करने की प्रशंसा करते थे।

फिर, जब कोई भिक्षु वनवासी होता था और वनवास की प्रशंसा करता था..." जब वे ऊर्जावान होते और ऊर्जा-शक्ति को जागृत करने की प्रशंसा में बोलते, तो वरिष्ठ भिक्षु उन्हें बैठने के लिए आमंत्रित करते हुए कहते: 'आओ, भिक्षु। इस भिक्षु का नाम क्या है? यह एक उत्कृष्ट भिक्षु है। यह भिक्षु साधना में तत्पर है। आओ, भिक्षु, यहाँ एक आसन है, बैठ जाओ।' तब नवदीक्षित भिक्षुओं के मन में यह विचार आता: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जब कोई भिक्षु वनवासी होता है और वनवास की प्रशंसा में बोलता है... जब वह ऊर्जावान होता है और ऊर्जा-शक्ति को जागृत करने की प्रशंसा में बोलता है, तो वरिष्ठ भिक्षु उसे बैठने के लिए आमंत्रित करते हैं...' वे तदनुसार अभ्यास करते, और इससे उन्हें दीर्घकाल तक सुख और सुख प्राप्त होता।

"परन्तु अब, कस्सपा, वरिष्ठ भिक्षु वनवासी नहीं रहे और वनवास की प्रशंसा नहीं करते... वे ऊर्जावान नहीं रहे और वीर शक्ति (वीर्य) जगाने की प्रशंसा नहीं करते। अब वरिष्ठ भिक्षु उस भिक्षु को अपने आसन पर आमंत्रित करते हैं जो सुप्रसिद्ध और प्रसिद्ध है, जो वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त करता है, और कहते हैं: 'आओ, भिक्षु। इस भिक्षु का नाम क्या है? यह एक उत्कृष्ट भिक्षु है। यह भिक्षु ब्रह्मचर्य जीवन में अपने भाइयों की संगति के लिए तत्पर है। आओ, भिक्षु, यहाँ आसन है, बैठो।'" तब नवदीक्षित भिक्षुओं के मन में यह विचार आता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जब कोई भिक्षु प्रसिद्ध और विख्यात हो जाता है, जिसे वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियाँ प्राप्त हो जाती हैं, तो वरिष्ठ भिक्षु उसे अपने आसन पर बैठने के लिए आमंत्रित करते हैं...' वे इसी प्रकार अभ्यास करते हैं, और यही उनके लिए लंबे समय तक हानि और कष्ट का कारण बनता है।

"यदि, कस्सपा, सही ढंग से बोलते हुए यह कह सकता है: 'पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों का पतन ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों के पतन से हुआ है; पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों का पतन ब्रह्मचर्य जीवन जीने वालों के पतन से हुआ है,' 284 तो ठीक इसी प्रकार यह कहना उचित है।"

---

152. ध्यान (स्वयं-अवशोषक समाधि) और दिव्य-शक्तियों का ज्ञान (ध्यान-अभि-ज्ञान)
(महत्वपूर्ण: नौ झाना [ध्यानसमाधि] अवस्थाएं और छह दिव्य-ज्ञान(अभिन्न)\जादुई शक्तियां)

(1) पहला झाना (सांस ध्यान समाधि 1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो चिंतन और परीक्षण से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(2) द्वितीय ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 2)

"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, चिंतन और परीक्षण के शांत होने के साथ, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता (एकोदिभाव) से युक्त है, चिंतन और परीक्षण से रहित है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण है। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, चिंतन और परीक्षण के शांत होने के साथ, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(3) तृतीय ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 3)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, आनंद (पीति/प्रीति) के लुप्त होते हुए भी, समभाव में, ध्यान (सतिमा) करते हुए और पूर्णतः संबोध (संपजनो) करते हुए, शरीर सहित सुख का अनुभव करता हूँ; मैं तृतीय ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं: 'वह समभाव में, ध्यानमग्न और सुखी है।' कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, तृतीय ध्यान में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।

(4) चतुर्थ ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 4)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, सुख और दुःख का त्याग करते हुए, और पहले से ही सुख और दुःख के लुप्त होते हुए, चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो न तो कष्टदायी है और न ही सुखदायी, तथा समभाव (उपेक्खा) द्वारा ध्यान (सति) की शुद्धि को समाहित करता है।" कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, चौथे ध्यान में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं।

(5) पाँचवाँ ध्यान (संस्कृत: ध्यान समाधि 5)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, रूप की पूर्ण अनुभूति (सन्ना संस्कृत: संज्ञा) से परे जाकर, इंद्रियों के प्रभाव (पतिघा) की अनुभूति को त्यागकर, विभिन्न अनुभूतियों में विलीन हुए बिना, यह जानकर कि 'अंतरिक्ष अनंत है', मैं अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, अनंत अंतरिक्ष की अनुभूति में प्रवेश करते हैं और उसमें निवास करते हैं।

(6) छठा ज्ञान (सं. ध्यान समाधि 6)
"भिक्षुओं, मैं जहाँ तक चाहूँ, अंतरिक्ष की अनंतता को पूरी तरह से पार करके, यह जानते हुए कि 'चेतना (विन्नान सं. विज्ञान) अनंत है,' मैं चेतना की अनंतता में प्रवेश करता हूँ और उसमें रहता हूँ। कश्यप भी, जहाँ तक चाहें, चेतना की अनंतता में प्रवेश करते हैं और उसमें रहते हैं।

(7) सातवाँ ज्ञान (सं. ध्यान समाधि 7)
"भिक्षुओं, मैं जहाँ तक चाहूँ, चेतना की अनंतता को पूरी तरह से पार करके, यह जानते हुए कि 'कुछ भी नहीं है,' मैं शून्यता में प्रवेश करता हूँ और उसमें रहता हूँ। कश्यप भी, जहाँ तक चाहें, शून्यता में प्रवेश करते हैं और उसमें रहते हैं।

(8) आठवीं झाना (सं. ध्यान समाधि 8)
"भिक्षुओं, मैं जहाँ तक चाहूँ, शून्यता की क्षमता को पूरी तरह से पार करके, मैं न-बोध-न-अबोध की क्षमता में प्रवेश करता हूँ और रहता हूँ। कश्यप भी, जहाँ तक वह चाहता है, न-बोध-न-अबोध की क्षमता में प्रवेश करता है और रहता है।

(9) नौवीं झाना (सं. ध्यान समाधि 9)
"भिक्षुओं, मैं जहाँ तक चाहूँ, न-बोध-न-अबोध की क्षमता को पूरी तरह से पार करके, मैं बोध (सं. सं. संज्ञा) और संवेदना (वेदना) के निरोध (प्रवेश) में प्रवेश करता हूँ और रहता हूँ। कश्यप भी, जहाँ तक वह चाहता है, बोध और संवेदना (वेदना) के निरोध (प्रवेश) में प्रवेश करता है और रहता है।
छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न)/जादुई शक्तियाँ

1. जादू का दिव्य ज्ञान (इद्धि और रिद्धि)
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करता हूँ: एक होकर मैं अनेक हो जाता हूँ; अनेक होकर मैं एक हो जाता हूँ; मैं प्रकट और लुप्त हो जाता हूँ; मैं दीवार, प्राचीर, पर्वत को अंतरिक्ष की तरह पार कर जाता हूँ; मैं पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता और बाहर निकलता हूँ जैसे वह जल हो; मैं जल पर बिना डूबे ऐसे चलता हूँ जैसे वह पृथ्वी हो; पालथी मारकर मैं पक्षी की तरह अंतरिक्ष में विचरण करता हूँ; मैं अपने हाथों से शक्तिशाली और बलिष्ठ चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श और सहलाता हूँ; मैं ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) जगत तक शरीर पर महारत हासिल करता हूँ। कश्यप भी, अपनी इच्छा अनुसार विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं।

2. दिव्य श्रवण
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार मेरी इच्छा है कि मैं शुद्ध और मानवीय श्रेष्ठ दिव्य श्रवण शक्ति (धातु) से दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुन सकूँ, चाहे वो दिव्य हों या मानवीय, दूर की हों या पास की। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, शुद्ध और मानवीय श्रेष्ठ दिव्य श्रवण शक्ति से दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुन सकते हैं।

3. दूसरों के मन को जानना:

"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से ग्रहण करके समझता हूँ। मैं राग से ग्रस्त मन को राग से ग्रस्त मन के रूप में, राग रहित मन को राग रहित मन के रूप में, दोष से ग्रस्त मन को दोष रहित मन के रूप में, मोह से ग्रस्त मन को मोह रहित मन के रूप में, मोह रहित मन को मोह रहित मन के रूप में, संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित मन के रूप में, उदात्त मन को उदात्त और अधोमुखी मन को अधोमुखी मन के रूप में, पार करने योग्य मन को पार करने योग्य और पार न करने योग्य मन को पार न करने योग्य मन के रूप में, और समाधि अवस्था में स्थित मन को भी उसी रूप में समझता हूँ।" समाधि अवस्था और समाधि अवस्था से इतर मन को समाधि अवस्था से इतर ही माना जाता है; मुक्त मन को मुक्त और अमुक्त मन को अमुक्त ही माना जाता है। कश्यप भी, अपनी इच्छा अनुसार, अन्य प्राणियों और व्यक्तियों के मन को अपने मन से ग्रहण करके समझते हैं।

4. पूर्व जन्मों का ज्ञान
भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करता हूँ, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, अनेक युगों तक संसार का संकुचन, अनेक युगों तक संसार का विस्तार, अनेक युगों तक संसार के संकुचन और विस्तार के दौरान: वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से निकलकर, मैंने कहीं और पुनर्जन्म लिया, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से निकलकर, मेरा कहीं और पुनर्जन्म हुआ, और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा भोजन था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी आयु हुई; वहाँ से दूर, मेरा यहाँ पुनर्जन्म हुआ।' इस प्रकार मैं अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता हूँ। कश्यप भी, अपनी इच्छा अनुसार, अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करते हैं।

5. दिव्य दृष्टि
"भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, शुद्ध और मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि से, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता हूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और मैं समझता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं: 'ये प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से दुराचार किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत मत रखा और गलत मत पर आधारित कर्म किए, शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु वे प्राणी जिन्होंने शरीर, वाणी और मन से सुचारु आचरण किया, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही दृष्टि रखी और सही दृष्टि के आधार पर कर्म किए, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन से एक अच्छे स्थान (सुगति) पर, स्वर्गलोक में पुनर्जन्म लेते हैं। इस प्रकार, मैं अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से परे है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता हूँ, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और मैं समझता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं। कस्सपा भी, अपनी इच्छा अनुसार, अपनी दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से परे है, (ध्यान में, पस्सतो) प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखते हैं, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और वे समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं।

6. विमुक्ति को जानना
"भिक्षुओं, विकारों के विनाश (खाय/क्षय) से, मैं इसी जीवन में मन की विमुक्ति में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मुक्ति, इसे दिव्य-ज्ञान (अभिन्ना) से खुद महसूस करता हूँ। 285 कश्यप भी, विकारों के विनाश से, इसी जीवन में मन की विमुक्ति में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध-अंतर्दृष्टि (पन्ना) से मुक्ति, इसे दिव्य-ज्ञान से खुद महसूस करता हूँ।"

---

153. भिक्षुणियों का निवास (उपासया)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार पूज्य महाकस्सपा सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे।

फिर, सुबह, पूज्य आनंद ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर पूज्य महाकस्सपा के पास गए और कहा: "आइए, पूज्य महाकस्सपा, चलिए भिक्षुणियों के निवास स्थान पर चलते हैं।" 286

"आप जाइए, मित्र आनंद, आप तो बहुत व्यस्त हैं और आपके पास बहुत सारे कर्तव्य हैं।"

दूसरी बार पूज्य आनंद ने पूज्य महाकस्सपा से कहा: "आइए, पूज्य महाकस्सपा, चलिए भिक्षुणियों के निवास स्थान पर चलते हैं।"

"आप जाइए, मित्र आनंद, आप तो बहुत व्यस्त हैं और आपके पास बहुत सारे कर्तव्य हैं।"

तीसरी बार पूज्य आनंद ने पूज्य महाकस्सपा से कहा, "आओ, पूज्य कस्सपा, हम भिक्षुणियों के आश्रम चलें।"

तब, सुबह पूज्य महाकस्सपा ने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर पूज्य आनंद के साथ भिक्षुणियों के आश्रम गए। वहाँ पहुँचकर वे निर्धारित आसन पर बैठ गए। तब कई भिक्षुणियाँ पूज्य महाकस्सपा के पास आईं, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं। जब वे वहाँ बैठी थीं, पूज्य महाकस्सपा ने धर्म प्रवचन देकर उन भिक्षुणियों को उपदेश दिया, प्रेरित किया और प्रसन्न किया, जिसके बाद वे अपने आसन से उठे और चले गए।

तब भिक्षुणी थुल्लतिस्सा नाराज़ होकर इस प्रकार अपनी नाराज़गी व्यक्त करने लगीं: "महाकस्सपा जैसे गुरु, विदेह ऋषि आनंद की उपस्थिति में धर्म पर प्रवचन देने की बात कैसे कर सकते हैं? महाकस्सपा जैसे गुरु, विदेह ऋषि आनंद की उपस्थिति में धर्म पर प्रवचन देने की बात करना तो ऐसा ही है जैसे कोई सुई बेचने वाला सुई बनाने वाले को सुई बेच दे!" पूज्य

महाकस्सपा ने भिक्षुणी थुल्लतिस्सा को यह कहते हुए सुन लिया और पूज्य आनंद से कहा:
"हे मित्र आनंद, क्या मैं सुई बेचने वाला हूँ और आप सुई बनाने वाले, या मैं सुई बनाने वाला हूँ और आप सुई बेचने वाले?"

"धैर्य रखिए, पूज्य कस्सपा, स्त्रियाँ बचकानी (नासमझ) होती हैं।" 289

"रुको, मित्र आनंद! संघ को तुम्हारे बारे में और पूछताछ करने का अवसर मत दो। 290 हे मित्र आनंद, क्या तुम यह सोचते हो कि क्या भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु संघ के समक्ष तुम्हें आगे लाकर कहा था: 'भिक्षुओं, मैं अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो चिंतन और परीक्षा से युक्त है, और एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण है। आनंद भी, अपनी इच्छा अनुसार, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"हे मित्र, मैं ही वह व्यक्ति था जिसे भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु संघ के समक्ष आगे लाया और कहा: 'भिक्षुओं, मैं जितना चाहूँ उतना प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ... कस्सपा भी, जितना चाहूँ उतना प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और निवास करता है।'

(यही आदान-प्रदान शेष ध्यान संबंधी उपलब्धियों और छह दिव्य ज्ञान (अभिन)/जादुई शक्तियों के लिए भी दोहराया जाता है, जैसा कि पिछले सूत्र [2.152] में है।)

"हे मित्र, मैं ही वह था जिसे भगवान (बुद्ध) ने भिक्षु संघ के समक्ष आगे लाया और कहा: 'भिक्षुओं, इसी जीवन में मैं विकारों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा मन की विकारमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, जिसे मैंने स्वयं दिव्य ज्ञान (अभिन) से अनुभव किया है। कस्सपा भी विकारों के नाश (करश) द्वारा इसी जीवन में मन की विकारमुक्त मुक्ति में प्रवेश करता है और निवास करता है, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, जिसे उसने स्वयं दिव्य ज्ञान से अनुभव किया है।'

"मित्र, यह सोचना उतना ही असंभव है जितना कि यह सोचना कि सात या साढ़े सात हाथ ऊँचे हाथी को ताड़ के पत्ते से छिपाया जा सकता है, जितना कि यह सोचना कि मेरे छह दिव्य ज्ञान (अभिन्न) को छिपाया जा सकता है।" 291

परन्तु भिक्षुणी थुलतस्सा ब्रह्मचर्य जीवन से विमुख हो गईं। 292

---

154. वस्त्र (सीवारा)
एक बार पूज्य महाकस्सपा राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य आनंद भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ दक्षिणागिरि में भ्रमण कर रहे थे। 293 उस समय पूज्य आनंद के तीस शिष्य, जिनमें से अधिकतर युवा थे, ने प्रशिक्षण त्याग दिया था और सांसारिक जीवन में लौट गए थे।

जब पूज्य आनंद ने दक्षिणागिरि में अपने इच्छित समय तक भ्रमण कर लिया, तो वे राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) लौट आए। वह पूज्य महाकस्सपा के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। पूज्य महाकस्सपा ने उनसे कहा, "मित्र आनंद, भगवान (बुद्ध) ने यह नियम किन कारणों से बनाया कि भिक्षुओं को परिवारों के साथ तीन से अधिक के समूह में भोजन नहीं करना चाहिए?" 294

“हे पूज्य महाकस्सपा, भगवान (बुद्ध) ने यह नियम तीन कारणों से बनाया: दुराचारी व्यक्तियों को रोकने और सुचारु भिक्षुओं की सुविधा के लिए, [इस उद्देश्य से कि] 'बुरे इरादों वाले लोग गुट बनाकर संघ में फूट न डालें!'; और परिवारों के प्रति सहानुभूति के कारण। 295 हे पूज्य महाकस्सपा, इन्हीं तीन कारणों से भगवान (बुद्ध) ने यह नियम बनाया।”

"तो फिर, हे मित्र आनंद, तुम इन युवा भिक्षुओं के साथ क्यों भटक रहे हो जो अपनी इंद्रियों के प्रति लापरवाह हैं, अत्यधिक भोजन करते हैं और जागृति के प्रति समर्पित नहीं हैं? ऐसा लगता है मानो तुम फसलों को रौंदते हुए भटक रहे हो; ऐसा लगता है मानो तुम परिवारों को नष्ट करते हुए भटक रहे हो। हे मित्र आनंद, तुम्हारा दल बिखर रहा है, तुम्हारे युवा अनुयायी तुमसे दूर होते जा रहे हैं। लेकिन फिर भी यह युवक अपनी सीमा नहीं जानता!"

"मेरे सिर पर सफेद बाल उग रहे हैं। आदरणीय कस्सपा। क्या हम आदरणीय महाकस्सपा द्वारा युवक कहे जाने से बच नहीं सकते?" 296 [219]

"हे मित्र आनंद, यह केवल इसलिए है क्योंकि तुम इन युवा भिक्षुओं के साथ भटक रहे हो जो अपनी इंद्रियों के प्रति लापरवाह हैं... लेकिन फिर भी यह युवक अपनी सीमा नहीं जानता!"

भिक्षुणी थुलनंदा ने सुना: 297 "महाकस्सपा ने विदेह ऋषि, महाकस्सापा, को युवक कहकर उनका अपमान किया है।" तब, इससे नाराज़ होकर, उसने अपनी नाराज़गी इस प्रकार व्यक्त की: "महाकस्सपा, जो पहले एक अन्य संप्रदाय के सदस्य थे, वे विदेहन ऋषि आनंद को एक युवक कहकर उनका अपमान कैसे कर सकते हैं?"

पूज्य महाकस्सपा ने भिक्षुणी थुलनंदा को यह कहते हुए सुन लिया और पूज्य आनंद से कहा:
"निश्चित रूप से, मित्र आनंद, भिक्षुणी थुलानंद ने वह कथन जल्दबाजी में, बिना सोचे-समझे कहा था। क्योंकि जब से मैंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, भगवा वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, तब से मुझे भगवान (बुद्ध), अरहंत, पूर्णतः प्रबुद्ध के अलावा किसी अन्य गुरु को स्वीकार करने का स्मरण नहीं है।

"मित्र, अतीत में, जब मैं गृहस्थ था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'गृहस्थ जीवन बंधन है, धूल का मार्ग है, दीक्षा (पबज्जा) खुले आकाश के समान है। गृहस्थ जीवन जीने वाले के लिए पूर्णतः शुद्ध, पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) जीना आसान नहीं है, जो पॉलिश किए हुए शंख के समान है। इसलिए मुझे अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, भगवा वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करना चाहिए।' कुछ समय बाद मैंने कपड़े के टुकड़ों से एक बाहरी वस्त्र बनवाया; 299 तब, संसार में जो अरहंत थे, उन्हें आदर्श मानकर, मैंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, भगवा वस्त्र धारण किए और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया।

"जब मैंने इस प्रकार संन्यास लिया (दीक्षित हुआ), तो मैं एक सड़क पर यात्रा कर रहा था, तभी मैंने भगवान (बुद्ध) को राजगृह और नालंदा के बीच बहुपुत्त मंदिर के पास बैठे हुए देखा। 300 उन्हें देखकर मैंने सोचा:
'यदि मुझे कभी गुरु के दर्शन हों, तो मैं स्वयं भगवान (बुद्ध) के दर्शन करना चाहूँगा। यदि मुझे कभी सौभाग्यशाली (सुगतो) के दर्शन हों, तो मैं स्वयं भगवान (बुद्ध) के दर्शन करना चाहूँगा। यदि मुझे कभी पूर्णतः प्रबुद्ध के दर्शन हों, तो मैं स्वयं भगवान (बुद्ध) के दर्शन करना चाहूँगा।' तब मैंने वहीं भगवान (बुद्ध) के चरणों में प्रणाम किया और उनसे कहा: 'आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ। आदरणीय महोदय, भगवान (बुद्ध) मेरे गुरु हैं, मैं उनका शिष्य हूँ।' 301

"जब मैंने यह कहा, तो भगवान (बुद्ध) ने मुझसे कहा: 'कस्सपा, यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो न जानता हो और न देखता हो, तुम्हारे जैसे एकाग्रचित्त शिष्य से कहे: "मैं जानता हूँ, मैं देखता हूँ," तो उसका सिर फट जाएगा। परन्तु कस्सपा, मैं जानता हूँ, "मैं जानता हूँ"; देखता हूँ, मैं कहता हूँ, "मैं देखता हूँ।" 302

"अतः, कस्सपा, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: "मैं बड़ों, नवदीक्षितों और मध्यम वर्ग के लोगों के प्रति लज्जा और कुकर्म के भय की तीव्र भावना उत्पन्न करूँगा।" तुम्हें स्वयं को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए।

"अतः, कस्सपा, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए:
"जब भी मैं लाभकारी (कुशल संस्कृत: कुशल) से संबंधित किसी धर्म (मार्ग, नियम) को सुनूँ, तो मैं उसे उत्सुकतापूर्वक सुनूँगा, उसे अत्यंत महत्वपूर्ण मानकर उस पर अपना पूरा ध्यान लगाऊँगा।" 303 तुम्हें स्वयं को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए।

"अतः, कस्सपा, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: "मैं आनंद से संबंधित शरीर पर केंद्रित ध्यान (सती) का कभी त्याग नहीं करूँगा।" तुम्हें स्वयं को इसी प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए। 304

"तब, मुझे यह निर्देश देकर, भगवान (बुद्ध) अपने आसन से उठे और चले गए। [221] हे मित्र, मैंने सात दिनों तक देश का भिक्षाभोजन ऋणी के रूप में खाया, परन्तु आठवें दिन मुझे अंतिम ज्ञान प्राप्त हुआ। 305

"तब, हे मित्र, भगवान (बुद्ध) सड़क से नीचे उतरे और एक वृक्ष के चरणों में गए। मैंने अपने चिथड़ों के बाहरी वस्त्र को चार भागों में मोड़कर उनसे कहा: 'आदरणीय महोदय, कृपया भगवान (बुद्ध) यहाँ बैठें। इससे मुझे दीर्घकालिक सुख और सुख प्राप्त होगा।' भगवान (बुद्ध) निर्धारित आसन पर बैठ गए और मुझसे कहा: 'हे कस्सपा, तुम्हारा चिथड़ों का बाहरी वस्त्र कोमल है।' - 'आदरणीय महोदय, कृपया दयावश मेरा चिथड़ों का बाहरी वस्त्र स्वीकार करें।' - 'तो क्या तुम मेरे पुराने चमड़े के वस्त्र पहनोगे?' - 'हाँ, आदरणीय महोदय।' इस प्रकार मैंने भगवान (बुद्ध) को अपना चिथड़े-चिथड़े का बाहरी वस्त्र अर्पित किया और उनसे उनका पुराना, फटा हुआ चमड़ा का वस्त्र ग्रहण किया। 307

"हे मित्र, यदि कोई सही ढंग से किसी के विषय में कह सकता है: 'वह भगवान (बुद्ध) का पुत्र है, उनकी छाती से जन्मा है, उनके मुख से जन्मा है, धम्म से जन्मा है, धम्म द्वारा सृजित है, धम्म का उत्तराधिकारी है, फटे-पुराने चमड़े के वस्त्र धारण करने वाला है,' तो यह बात मेरे विषय में ही सही ढंग से कही जा सकती है। 308

"मित्र, मैं जहाँ तक चाहूँ, इंद्रिय सुखों से विरक्त होकर, हानिकारक अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, जो विचार और परीक्षा से युक्त है, [222] एकांत से उत्पन्न आनंद (पीति/प्रीति) और सुख से युक्त.... (जैसा कि 9 में है)

"मित्र, दोषों के नाश (खयाल/क्षय) द्वारा, इसी जीवन में मैं मन की दोषमुक्त मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में प्रवेश करता हूँ और निवास करता हूँ, प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) द्वारा मुक्ति, दिव्य ज्ञान (अभिन्ना) से स्वयं इसका अनुभव करते हुए।"

"मित्र, यह सोचना उतना ही असंभव है जितना कि मेरे छह दिव्य ज्ञानों (अभिन्न) को छिपाना।" 309

परन्तु भिक्षुणी थुलनंदा ब्रह्मचर्य का मार्ग भटक गईं।

---

155. मृत्यु के बाद (परमरण)
एक बार पूज्य महाकस्सपा और पूज्य सारिपुत्त इसिपताना के हिरण उद्यान (मिगदाये) में बरनासी में निवास कर रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महाकस्सपा के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महाकस्सपा का अभिवादन किया और अभिवादन एवं सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

“हे मित्र कस्सपा, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं?” 310

“हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं’।” “

तो फिर, मित्र, क्या तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते?”

“हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि ‘तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते’ ।” [223]

“तो फिर, मित्र, तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और विद्यमान नहीं भी रहते?”

"हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद विद्यमान भी होते हैं और विद्यमान नहीं भी होते हैं।'"

"तो फिर, मित्र, क्या तथागत मृत्यु के बाद

न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान होते हैं?" "हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह भी नहीं कहा है कि 'तथागत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान होते हैं और न ही विद्यमान होते हैं।'"

"हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने यह क्यों नहीं कहा है?"

"क्योंकि यह लाभहीन है, ब्रह्मचर्य जीवन के मूल सिद्धांतों से अप्रासंगिक है, और इससे निर्धनता, वैराग्य, निरोध, शांति, अभिज्ञान, आत्मज्ञान, निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए भगवान (बुद्ध) ने यह नहीं कहा है।"

"और फिर, मित्र, भगवान (बुद्ध) ने क्या कहा है?"

"हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने कहा है: 'यह दुख है,' 'यह दुख का कारण है,' 'यह दुख का निवारण है,' और 'यह दुख निवारण का मार्ग है।'" "

और हे मित्र, भगवान (बुद्ध) ने ऐसा क्यों कहा है?"

"क्योंकि हे मित्र, यह लाभकारी है, ब्रह्मचर्य के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और इससे वैराग्य, वैराग्य, निवारण, शांति, अभिज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण प्राप्त होता है। इसलिए भगवान (बुद्ध) ने ऐसा कहा है।"

---

156. सच्चे धम्म का प्रतिरूप (सद्धम्मप्पतिरूपक संस्कृत: सत्-धर्मप्य-अतिरूप)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य महाकस्सपा भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"पूज्यवर, इसका क्या कारण है कि पहले प्रशिक्षण के नियम कम थे और अधिक भिक्षु अंतिम ज्ञान प्राप्त करते थे, जबकि अब प्रशिक्षण के नियम अधिक हैं और कम भिक्षु अंतिम ज्ञान प्राप्त करते हैं?" 311
"यही बात है, कस्सपा। जब प्राणी पतित हो रहे होते हैं और सच्चा धम्म (मार्ग, नियम) लुप्त हो रहा होता है, तब प्रशिक्षण नियम तो अधिक होते हैं, लेकिन अंतिम ज्ञान में स्थापित भिक्षुओं की संख्या कम होती है। कस्सपा, सच्चा धम्म तब तक लुप्त नहीं होता जब तक संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न न हो जाए। परन्तु जब संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न हो जाती है, तब सच्चा धम्म लुप्त हो जाता है। 312

"जैसे, कस्सपा, सोना तब तक लुप्त नहीं होता जब तक संसार में नकली सोना उत्पन्न न हो जाए, परन्तु जब नकली सोना उत्पन्न हो जाता है, तब सच्चा सोना लुप्त हो जाता है, वैसे ही सच्चा धम्म तब तक लुप्त नहीं होता जब तक संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न न हो जाए, परन्तु जब संसार में सच्चे धम्म की कोई नकली प्रति उत्पन्न हो जाती है, तब सच्चा धम्म लुप्त हो जाता है।"

"हे कस्सपा, सच्चे धम्म के लुप्त होने का कारण पृथ्वी तत्व (धातु), जल तत्व (धातु), ऊष्मा तत्व (धातु), या वायु तत्व (धातु) नहीं है। यहाँ उत्पन्न होने वाले मूर्ख लोग ही सच्चे धम्म के लुप्त होने का कारण हैं।

सच्चा धम्म एक जहाज के डूबने की तरह अचानक लुप्त नहीं हो जाता। 313 हे कस्सपा, पाँच हानिकारक बातें हैं 314 जो सच्चे धम्म के क्षय और लुप्त होने का कारण बनती हैं। वे पाँच क्या हैं? यहाँ भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे धम्म के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे संघ (भाईचारे) के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धाहीन रहते हैं; वे समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रति श्रद्धाहीन भाव से निवास करते हैं। 315 हे कस्सपा, ये पाँच हानिकारक बातें हैं जो सच्चे धम्म के क्षय और लुप्त होने का कारण बनती हैं।

"हे कस्सपा, पाँच बातें हैं जो सच्चे धम्म की दीर्घायु, उसके क्षय न होने और लुप्त न होने का कारण बनती हैं। वे पाँच बातें क्या हैं? यहाँ भिक्षु, भिक्षुणियाँ, पुरुष गृहस्थ अनुयायी और स्त्री गृहस्थ अनुयायी गुरु के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे धम्म के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे संघ के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे प्रशिक्षण के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं; वे समाधि (सम्मोहन) अवस्था के प्रति श्रद्धा भाव से निवास करते हैं। हे कस्सपा, ये पाँच बातें हैं जो सच्चे धम्म की दीर्घायु, उसके क्षय न होने और लुप्त न होने का कारण बनती हैं।"

अध्याय 6: लाभ और सम्मान पर संबंधित प्रवचन (लाभसक्करासाम्यत्त संस्कृत: लाभ-सत्कार-साम्यत्त) {साम्यत्त-17}

(i) पहला उप-अध्याय (डरावना)

157. भयानक (दारुना)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं, कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। 316 इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे, और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

158. हुक (बालिसा)
श्रावस्ती में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं; ये कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। मान लीजिए एक मछुआरा गहरे तालाब में चारा लगा हुआ कांटा डालता है, और भोजन की तलाश में कोई मछली उसे निगल लेती है। मछुआरे का कांटा निगलने के कारण उस मछली पर विपत्ति और विपत्ति आएगी, और मछुआरा उसके साथ जो चाहे कर सकता है।

'मछुआरा,' भिक्षुओं: यह दुष्ट शैतान का नाम है। 'चारा लगा हुआ कांटा': यह लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का नाम है। जो भिक्षु उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का आनंद लेता है, उसे चारा लगा हुआ कांटा निगलने वाला भिक्षु कहा जाता है, जिस पर विपत्ति और विपत्ति आई है, और दुष्ट उसके साथ जो चाहे कर सकता है।" हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा अत्यंत घृणित, कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। अतः, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे, और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।

---

159. कछुआ (कुम्मा)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... एक समय की बात है, एक झील में कछुओं का एक बड़ा परिवार लंबे समय से रहता था। 317 तब एक कछुए ने दूसरे से कहा: 'प्रिय कछुए, फलाँ-फलाँ क्षेत्र में मत जाना।' लेकिन वह कछुआ उस क्षेत्र में चला गया, और एक शिकारी ने उसे रस्सी वाले भाले से मारा। 318 तब वह कछुआ पहले वाले के पास पहुँचा। जब पहले कछुए ने उसे दूर से आते देखा, तो उसने उससे कहा: 'प्रिय कछुए, मुझे आशा है कि तुम उस क्षेत्र में नहीं गए।' - 'मैं उस क्षेत्र में गया था, प्रिय।' - 'मुझे आशा है कि तुम्हें चोट नहीं लगी होगी, प्रिय।' - 'मुझे चोट नहीं लगी है; लेकिन यह रस्सी लगातार मेरे पीछे-पीछे चल रही है।' - 'हे प्यारे कछुए, सचमुच तुम पर चोट लगी है, सचमुच तुम पर चोट लगी है! तुम्हारे पिता और दादा को भी इसी तरह की रस्सी के कारण विपत्ति और विपत्ति का सामना करना पड़ा था। अब जाओ, हे प्यारे कछुए, तुम अब हमारे बीच नहीं हो।'

"'शिकारी,' भिक्षुओं: यह दुष्ट शैतान (मारा) का नाम है। 'रस्सी वाला भाला': यह लाभ, सम्मान और प्रशंसा का नाम है। 'रस्सी': यह आनंद और कामवासना (राग) का नाम है। जो भिक्षु उत्पन्न लाभ, सम्मान और प्रशंसा का आनंद लेता है, उसे रस्सी वाले भाले से घायल भिक्षु कहा जाता है, 319 जो विपत्ति और विपत्ति का शिकार हुआ है, और दुष्ट उसके साथ जैसा चाहे कर सकता है। हे भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा कितनी भयानक हैं.... इसलिए तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

160. लंबे बालों वाली बकरी (दिघालोमिका)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, फ़ायदा, इज़्ज़त और तारीफ़ बहुत बुरे हैं..(जैसा कि 157 में है).. मान लीजिए एक लंबे बालों वाली बकरी झाड़ियों के बीच में चली जाए। वह इधर-उधर फंस जाएगी, इधर-उधर पकड़ी जाएगी, इधर-उधर बंधी जाएगी, और इधर-उधर उसे मुसीबत और मुसीबत का सामना करना पड़ेगा। इसी तरह, भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु (भिक्षु) जिसका मन फ़ायदे, इज़्ज़त और तारीफ़ से भरा हुआ है, वह सुबह कपड़े पहनता है और कटोरा और चोगा लेकर भीख मांगने के लिए किसी गाँव या शहर में जाता है। वह इधर-उधर पकड़ा जाता है, इधर-उधर पकड़ा जाता है, इधर-उधर बंधी जाती है, और इधर-उधर उसे मुसीबत और मुसीबत का सामना करना पड़ता है। भिक्षुओं, फ़ायदा, इज़्ज़त और तारीफ़ बहुत बुरे हैं.... इसी तरह तुम्हें खुद को ट्रेन करना चाहिए।"

---

161. गोबर भृंग (मिल्हाका)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... मान लीजिए एक भृंग है, जो गोबर खाता है, गोबर से भरा हुआ है, और उसके सामने गोबर का एक बड़ा ढेर है। इस कारण वह अन्य भृंगों को तुच्छ समझेगी, यह सोचकर: 'मैं गोबर खाने वाली हूं, गोबर से भरी हुई हूं, और मेरे सामने गोबर का एक बड़ा ढेर है।' इसी प्रकार, भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के वश में है, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या कस्बे में जाता है। वहाँ वह जितना चाहे उतना भोजन करता है, उसे अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित किया जाता है, और उसका भिक्षा भोजन प्रचुर मात्रा में होता है। जब वह मठ लौटता है, तो वह भिक्षुओं के एक समूह के सामने अभिमान करता है: 'मैंने जितना चाहा उतना भोजन किया है, मुझे कल के भोजन के लिए आमंत्रित किया गया है, और मेरा भिक्षा भोजन प्रचुर मात्रा में है। मैं वह हूँ जो वस्त्र, भिक्षा भोजन, आवास और औषधियाँ प्राप्त करता हूँ, परन्तु इन अन्य भिक्षुओं का पुण्य

और प्रभाव कम है, और वे वस्त्र, भिक्षा भोजन, आवास और औषधियाँ प्राप्त नहीं करते।' अत: लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के लालच में डूबे रहने के कारण, वह अन्य सुसंस्कृत भिक्षुओं का तिरस्कार करता है। इससे इस मूर्ख व्यक्ति को लंबे समय तक हानि और कष्ट भोगना पड़ेगा। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा कितनी भयानक चीजें हैं... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

162. वज्र (असानी)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... हे भिक्षुओं, वज्र किसे गिरेगा? उस प्रशिक्षु को जिस पर लाभ, मान और प्रशंसा तब आती है जब वह अभी तक अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंचा है। 320

'वज्र' हे भिक्षुओं: यह लाभ, मान और प्रशंसा का प्रतीक है। इसलिए हे भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं.... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

163. विषैला बाण (दिद्धा)
श्रावस्ती में, भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... हे भिक्षुओं, विष से सने बाण से किसे भेदना चाहिए? उस प्रशिक्षु को जिस पर लाभ, मान और प्रशंसा तब आती है जब वह अभी तक अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंचा है। 3 ? 1

"'बाण,' भिक्षुओं: यह लाभ, मान और प्रशंसा का प्रतीक है। इसलिए, हे भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

164. सियार (सिंगला)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... क्या आपने रात ढलते समय किसी बूढ़े सियार के रोने की आवाज़ सुनी?"
"जी हाँ, पूज्यवर।"

वह बूढ़ा सियार खुजली नामक रोग से पीड़ित है। 322 वह चाहे गुफा में जाए, वृक्ष की छाया में बैठे, या खुले में, उसे अच्छा नहीं लगता। वह जहाँ भी जाता है, जहाँ भी खड़ा होता है, जहाँ भी बैठता है, जहाँ भी लेटता है, वहाँ उसे विपत्ति और विपत्ति का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से ग्रस्त है, वह चाहे खाली कुटिया में जाए, वृक्ष की छाया में बैठे, या खुले में, उसे अच्छा नहीं लगता। वह जहाँ भी जाता है, जहाँ भी खड़ा होता है, जहाँ भी बैठता है, जहाँ भी लेटता है, वहाँ उसे विपत्ति और विपत्ति का सामना करना पड़ता है। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं (जैसा कि 157 में है)। इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

165. आंधी (वेरम्भा)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, आकाश में आंधी के रूप में तेज हवाएं चल रही हैं। 323 यदि कोई पक्षी वहां जाता है, तो आंधी उसे इधर-उधर फेंकती है, और जैसे ही वह आंधी से इधर-उधर फेंका जाता है, उसके पैर एक तरफ, पंख दूसरी तरफ, सिर एक तरफ और शरीर एक तरफ हो जाता है। उसी प्रकार, भिक्षुओं, यहां एक भिक्षु जिसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से अभिभूत और आसक्त है, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके, शरीर, वाणी और मन को असंयमित रखते हुए, सती ध्यान स्थापित किए बिना, अपनी इंद्रियों पर अनियंत्रित होकर भिक्षा मांगने के लिए किसी गांव या शहर में प्रवेश करता है। वह वहां कम वस्त्रों में सजी महिलाओं को देखता है और उसके मन में कामवासना (राग) उमड़ पड़ती है। कामवासना से ग्रस्त होकर वह साधना त्याग देता है और निम्न जीवन में लौट जाता है। कुछ अपना किसी को उसका वस्त्र, किसी को उसका कुंड, किसी को उसका आसन, और किसी को उसकी सुई-पेटी, ठीक वैसे ही जैसे कोई पक्षी आंधी में उड़ जाता है। हे भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक होती हैं (जैसा कि 157 में है)। इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

166. श्लोकों सहित सूत्र (सगतसुत्तम)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं (जैसा कि अनुच्छेद 157 में है)। भिक्षुओं, मैं यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखता हूँ जिसका मन मान के वश में है और शरीर के टूटने से ग्रस्त है, मृत्यु के बाद दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म होगा। फिर मैं यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखता हूँ जिसका मन मानहीनता से ग्रस्त है और दुख की अवस्था में पुनर्जन्म होगा। फिर मैं यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखता हूँ जिसका

मन मान और मानहीनता दोनों से ग्रस्त है और शरीर के टूटने से, मृत्यु के बाद दुख की अवस्था में, बुरे गंतव्य में, पाताल लोक में, नरक में पुनर्जन्म होगा। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं (जैसा कि अनुच्छेद 157 में है)। इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"चाहे उसे सम्मान से नवाजा जाए; अपमानित किया जाए, या दोनों ही दिए जाएं,
उसकी समाधि (सम्मोहन) अवस्था अविचलित रहती है; क्योंकि वह असीम अवस्था में निवास करता है। 324

जब वह दृढ़ता से ध्यान करता है; सूक्ष्म दृष्टि वाला अंतर्दृष्टि-द्रष्टा (विपस्सकम),
आसक्ति के नाश में आनंदित होता है; उसे वास्तव में श्रेष्ठ पुरुष कहा जाता है।" 325

(ii) दूसरा उप-अध्याय (कटोरा)
167. स्वर्ण कटोरा (सुवन्नापति)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखा है जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति सोने के कटोरे में पिसी हुई चांदी के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा।' फिर भी कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त था कि वह जानबूझकर झूठ बोल रहा था। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

168. चांदी का कटोरा (रुपियापति)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखा है जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति सोने के चूर्ण से भरे चांदी के कटोरे के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा।' फिर भी कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त था कि वह जानबूझकर झूठ बोल रहा था। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

169 (10) Suvannanikkha, Etc.
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को जाना है जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: यह पूजनीय व्यक्ति एक सुवन्ननिक्ख के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा... सौ सुवन्ननिक्खों के लिए भी नहीं... एक सिंगिनीक्ख के लिए भी नहीं... सौ सिंगिनीक्खों के लिए भी नहीं 326... सोने से भरी पृथ्वी के लिए भी नहीं... किसी भी भौतिक पुरस्कार के लिए भी नहीं... अपने जीवन के लिए भी नहीं... इस देश की सबसे सुंदर कन्या के लिए भी नहीं। 327 फिर भी कुछ समय बाद मैं उसे देखता हूँ, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से ग्रस्त होकर जानबूझकर झूठ बोल रहा है। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

(iii) तीसरा उप-अध्याय (एक महिला)
170. एक महिला (मातुगामा)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, भले ही एकांत में स्त्री मन को मोहित न करे, फिर भी लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा मन को मोहित कर सकती हैं। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

171. सबसे सुंदर लड़की (कल्याणी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... भिक्षुओं, भले ही देश की सबसे सुंदर कन्या, जब कोई उसके साथ एकांत में हो, तो मन को मोहित न करे, फिर भी लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा मन को मोहित कर सकती हैं। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

172. इकलौता पुत्र (एकपुत्तकस संस्कृत: एक-पुत्र)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... एक निष्ठावान गृहस्थ महिला अनुयायी, अपने प्रियतम पुत्र से उचित विनती करते हुए, उससे इस प्रकार विनती कर सकती है: 'प्रिय, तुम्हें चित्त गृहस्थ और अलावक के हत्थक के समान बनना चाहिए' क्योंकि यही मेरे गृहस्थ पुरुष शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् चित्त गृहस्थ और अलावक के हत्थक। 328 'परन्तु, प्रिय, यदि तुम गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाओ, तो तुम्हें सारिपुत्त और मोग्गलाना के समान बनना चाहिए' - क्योंकि यही मेरे भिक्षु पुरुष शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् सारिपुत्त और मोग्गलाना। 'प्रिय, जब तक तुम प्रशिक्षु हो, जिसने अभी तक अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, तब तक तुम्हें लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त न हो!'

भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षु (साधु) को प्रशिक्षण के दौरान, जब वह अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंचा हो, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त हो जाए, तो यह उसके लिए एक बाधा है। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं... इसलिए आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

173. इकलौती पुत्री (एकधितु)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... एक निष्ठावान गृहस्थ महिला अनुयायी, अपनी इकलौती प्रिय पुत्री से उचित विनती करते हुए इस प्रकार कह सकती है: 'प्रिय, तुम्हें गृहस्थ अनुयायी खुज्जुत्तारा और नंदा की माता वेलुकंदकिया के समान बनना चाहिए' - क्योंकि यही मेरी गृहस्थ महिला शिष्यों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् गृहस्थ अनुयायी खुज्जुत्तारा और नंदा की माता वेलुकंदकिया। 329 'परन्तु, प्रिय, यदि तुम गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाओ, तो तुम्हें भिक्षुणियों खेमा और उप्पलावन्ना के समान बनना चाहिए' - क्योंकि यही मेरी भिक्षुणियों के लिए मानक और मानदंड है, अर्थात् खेमा और उप्पलावन्ना। 'प्रिय, जब तुम प्रशिक्षु हो, जिसने अभी तक अपने मन के आदर्श को प्राप्त नहीं किया है, तब तुम लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त कर सकती हो और " तुम पर प्रशंसा न आए!"

"भिक्षुओं, यदि किसी भिक्षुणी को प्रशिक्षण के दौरान, जब वह अभी तक अपने मन के आदर्श तक नहीं पहुंची है, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा प्राप्त हो जाए, तो यह उसके लिए एक बाधा है। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसलिए तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

174. तपस्वी और ब्राह्मण (1) (समनाब्रह्मण1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो सांसारिक सुख (अस्सदो संस्कृत: अस्वाद्), खतरे और लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा की स्थिति में उससे बचने के तरीके को यथावत नहीं समझते: 330 इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी या ब्राह्मणों में ब्राह्मण नहीं मानता, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते।

परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो सांसारिक सुख, खतरे और लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा की स्थिति में उससे बचने के तरीके को यथावत समझते हैं: इन्हें मैं तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य या ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश नहीं करते और निवास नहीं करते। इसी जीवन में वैराग्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करो और लीन रहो।

175. तपस्वी और ब्राह्मण (2) (समनाब्रह्मण2)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो उत्पत्ति और अपतटीयता, सांसारिक भोग (असदो संस्कृत: असवाद), भय और लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के मामले में बचाव को यथावत नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी नहीं मानता...(जैसा कि 174 में है)।

"परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय व्यक्ति दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में तपस्या और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

176. तपस्वी और ब्राह्मण (3) (समनाब्रह्मण3)
सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, वे तपस्वी या ब्राह्मण जो लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा, इसके उद्गम, इसके निरोध और इसके निरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग को नहीं समझते: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी नहीं मानता...(जैसा कि 174 में है)। 331

"परन्तु, भिक्षुओं, वे तपस्वी और ब्राह्मण जो इन धर्मों (मार्ग, नियम) को समझते हैं: मैं इन्हें तपस्वियों में तपस्वी और ब्राह्मणों में ब्राह्मण मानता हूँ, और ये पूजनीय, दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में तपस्या के लक्ष्य और ब्राह्मणत्व के लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और निवास करते हैं।"

---

177. चमड़ी (चावी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... (जैसा कि 157 में है)... लाभ, मान और प्रशंसा पहले बाहरी त्वचा को, फिर भीतरी त्वचा को, फिर मांस को, फिर नसों को, फिर हड्डी को चीरते हुए सीधे मज्जा तक पहुँच जाते हैं। इसलिए, हे भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं... इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

178. रस्सी (राज्जू)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं (जैसा कि अनुच्छेद 157 में है)। लाभ, मान और प्रशंसा पहले बाहरी त्वचा को, फिर भीतरी त्वचा को, फिर मांस को, फिर नसों को, फिर हड्डी को चीरते हुए आगे बढ़ते हैं। हड्डी को चीरकर वे मज्जा तक पहुँच जाते हैं। मान लीजिए, भिक्षुओं, एक बलवान व्यक्ति किसी के पैर को घोड़े के बालों की तनी हुई रस्सी से लपेटकर कसकर खींचे। यह पहले बाहरी त्वचा को, फिर भीतरी त्वचा को, फिर मांस को, फिर नसों को, फिर हड्डी को चीरते हुए आगे बढ़ जाएगी। हड्डी को चीरकर वह मज्जा तक पहुँच जाएगी। उसी प्रकार, भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा बाहरी त्वचा को चीरते हैं (जैसा कि अनुच्छेद 177 में है)। वे मज्जा तक पहुँच जाते हैं। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान और प्रशंसा भयानक हैं। इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

179. The Bhikkhu (Sans. Bhikshu, Monk)
श्रावस्ती पर्व पर भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा तो उस अर्हंत भिक्षु के लिए भी बाधा हैं, जिसके सारे दोष दूर हो चुके हैं।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से पूछा,
"हे पूज्यवर, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा उस भिक्षु के लिए भी बाधा क्यों हैं जिसके सारे दोष दूर हो चुके हैं?"

हे आनंद, मैं यह नहीं कहता कि लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा मन की अविचल मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत: विमुक्ति) में बाधा हैं। बल्कि मैं यह कहता हूँ कि वे इस जीवन में उन सुखद निवासों की प्राप्ति में बाधा हैं जो सचेत (अप्पमदा), उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति को प्राप्त होते हैं। 332 हे आनंद, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतने भयानक, इतने कड़वे, इतने नीच और बंधन से अद्वितीय सुरक्षा प्राप्त करने में बाधक हैं। इसलिए, हे आनंद, तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

(iv) चौथा उप-अध्याय (संघ में विभाजन)
180. विच्छेद (भिंडी)
सावत्थी में
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... (जैसा कि 157 में है)... क्योंकि देवदत्त का मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के वश में था, इसलिए उसने संघ में फूट डाल दी। इसलिए, भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयावह हैं... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

181. लाभकारी (कुसल) जड़ (कुसलमूल)
(जैसा कि 157 में है)... "क्योंकि देवदत्त का मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त और ग्रस्त हो गया था कि उसकी लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) जड़ कट गई...(जैसा कि 157 में है)।" 333

---

182. लाभकारी (कुशल) प्रकृति (कुशलधम्म)

(जैसा कि 157 में है)... "क्योंकि उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से अभिभूत और ग्रस्त था, इसलिए देवदत्त का लाभकारी (कुशल संस्कृत कुशल) स्वभाव कट गया...(जैसा कि 157 में है)।"

---

183. उज्ज्वल प्रकृति (शुक्कधम्म संस्कृत: शुक्र-धर्म)
(जैसा कि 157 में है)... "क्योंकि उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से अभिभूत और ग्रस्त था, इसलिए देवदत्त का उज्ज्वल स्वभाव नष्ट हो गया...(जैसा कि 157 में है)।"

---

184. उसके जाने के कुछ ही समय बाद (अचिरापक्कन्त)
एक बार, देवदत्त के जाने के कुछ समय बाद, भगवान (बुद्ध) गिद्ध शिखर पर्वत पर स्थित राजगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ, देवदत्त के संदर्भ में, भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: 334

"भिक्षुओं, देवदत्त का लाभ, सम्मान और प्रशंसा उसके अपने पतन और विनाश का कारण बनी। जैसे केले का वृक्ष, बांस या सरकंडा अपने ही पतन और विनाश के लिए फल देता है, वैसे ही देवदत्त का लाभ, सम्मान और प्रशंसा उसके अपने पतन और विनाश का कारण बनी। जैसे खच्चर अपने ही पतन और विनाश के लिए गर्भवती होती है, वैसे ही देवदत्त का लाभ, सम्मान और प्रशंसा उसके अपने पतन और विनाश का कारण बनी। हे भिक्षुओं, लाभ, सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक होती हैं... (जैसा कि 157 में है)... इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"जैसे केले, बांस और नरकट का फल ही विनाश लाता है;
जैसे खच्चर का भ्रूण नष्ट हो जाता है; वैसे ही सम्मान दुष्ट का नाश कर देता है।"

---

185. पाँच सौ गाड़ियाँ (पंचरथसत)
राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास करते समय, राजकुमार अजातसत्तु सुबह-शाम पांच सौ रथों के साथ देवदत्त की सेवा करने जा रहे थे, और उनके लिए पांच सौ बर्तनों में भोजन का प्रसाद भेजा गया था। तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, देवदत्त की उन्नति, मान-सम्मान और प्रशंसा से ईर्ष्या मत करो। जब तक राजकुमार अजातसत्तु सुबह-शाम पांच सौ रथों के साथ देवदत्त की सेवा में जाता रहेगा और पांच सौ घड़ों में भोजन का अर्पण होता रहेगा, तब तक देवदत्त को लाभकारी (कुशल संस्कृत) अवस्थाओं में वृद्धि नहीं, बल्कि केवल हानि ही होगी।

जैसे जंगली कुत्ते की नाक पर पित्त छिड़कने से वह और भी जंगली हो जाता है, 335 वैसे ही, भिक्षुओं, जब तक राजकुमार अजातसत्तु देवदत्त की सेवा में जाता रहेगा... देवदत्त को लाभकारी (कुशल) अवस्थाओं में वृद्धि नहीं, बल्कि केवल हानि ही होगी। भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतनी भयानक हैं (जैसा कि 157 में है)। इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

186. माता सूत्र (मातु सं. मातृ)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं; ये कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने में बाधक हैं। भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को देखा है, जिसके मन को मैंने अपने मन से वश में कर लिया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति अपनी माता के खातिर भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा।' 336 फिर भी कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा से इतना ग्रस्त और अभिमानी था कि वह जानबूझकर झूठ बोल रहा था। भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा इतने भयानक हैं; इतने कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण सुरक्षा प्राप्त करने में बाधक हैं। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे, और हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा को अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

187. पिता सूत्र, इत्यादि (पितु इत्यादि)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा भयानक हैं; ये कड़वे, नीच और बंधन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। भिक्षुओं, मैंने यहाँ एक ऐसे व्यक्ति को जाना है, जिसके मन को मैंने अपने मन से ग्रहण किया है: 'यह पूजनीय व्यक्ति अपने पिता के लिए भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलेगा... अपने पिता के लिए भी नहीं... अपने भाई के लिए भी नहीं... अपनी बहन के लिए भी नहीं... अपने बेटे के लिए भी नहीं... अपनी बेटी के लिए भी नहीं... अपनी पत्नी के लिए भी नहीं।' 336 कुछ समय बाद मैंने उसे देखा, उसका मन लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा के वश में था और वह

जानबूझकर झूठ बोल रहा था। हे भिक्षुओं, लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा कितनी भयानक, कितनी कड़वी, कितनी नीच और बंधन से मुक्ति पाने में कितनी बाधक हैं! इसलिए, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उत्पन्न लाभ, मान-सम्मान और प्रशंसा का त्याग करेंगे और हम उन्हें अपने मन पर हावी नहीं होने देंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

अध्याय 7: राहुल (राहुलसंयुत्त) के साथ जुड़े हुए प्रवचन {संयुत्त-18}

(i) प्रथम उप-अध्याय (पथमवग्गो)

188. आँख आदि (चक्खु संस्कृत: चक्षु)

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। तब पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा: 337

“पूज्यवर, यदि भगवान (बुद्ध) मुझे संक्षेप में धम्म (मार्ग, नियम) सिखा दें तो अच्छा होगा, ताकि भगवान (बुद्ध) से धम्म सुनकर मैं एकांत में, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर निवास कर सकूँ।”

“राहुल, आपके विचार से आँख क्या है या क्षणिक?” - “क्षणिक, पूज्यवर।” - “क्षणिक क्या है, दुख या सुख?” - “दुख, पूज्यवर।” -"क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"क्या कान... नाक... जीभ... शरीर... मन स्थायी हैं या क्षणभंगुर?" - "क्षणभंगुर, आदरणीय महोदय।" -"क्या जो क्षणभंगुर है, वह दुखदायी है या सुखदायी?" - "दुखदायी, आदरणीय महोदय।" -"क्या जो क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है'?" - "नहीं, आदरणीय महोदय।"

"यह देखकर, हे राहुल, ज्ञानी शिष्य को आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्य प्राप्त करता है। वैराग्य के द्वारा उसका मन मुक्त हो जाता है। 338 जब वह मुक्त हो जाता है, तब उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: 'यह मुक्त हो गया है।' वह समझता है: 'पुनर्जन्म का नाश हो गया है, ब्रह्मचर्य जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब इस अवस्था में रहने का कोई और अर्थ नहीं है।'"

---

189. रूप आदि (रूप)

... "राहुल, आपके विचार से रूप... (जैसा कि 188 में है)... ध्वनियाँ... गंध... स्वाद... स्पर्शनीय वस्तुएँ... मानसिक घटनाएँ (धम्म) स्थायी हैं या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को रूपों (जैसा कि 188 में है) के प्रति... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति घृणा (निबिद्धा) का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

190. चेतना (विन्नान संस्कृत विज्ञान)

... "राहुल, आपके विचार से नेत्र-चेतना (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है)... कान-चेतना... नाक-चेतना... जीभ-चेतना... शरीर-चेतना... मन-चेतना स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानवान शिष्य को नेत्र-चेतना के प्रति घृणा (निब्बिदा) और मन-चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

191. संपर्क (संपहसा संस्कृत स्पर्श)

... "राहुल, तुम्हारा क्या विचार है? नेत्र संपर्क (जैसा कि 188 में है) ... कान संपर्क ... नाक संपर्क ... जीभ संपर्क ... शरीर संपर्क ... मन संपर्क स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को नेत्र संपर्क (जैसा कि 188 में है) और मन संपर्क के प्रति घृणा (निबिद्धा) का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

192. संवेदना (वेदना) (वेदना)

... "हे राहुल, आपका क्या विचार है? क्या नेत्र संपर्क (जैसे 188 में) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) ... कान संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... नाक संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... जीभ संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... शरीर संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना ... मन संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ... "हे

राहुल, इस प्रकार देखकर, ज्ञानी शिष्य नेत्र संपर्क (जैसे 188 में) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) और मन संपर्क (संवेदना) से उत्पन्न वेदना (संवेदना) के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है। वह समझता है: '...इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

193. बोध (संज्ञा)
... "राहुल, आपका क्या विचार है कि रूपों की अनुभूति (सन्ना संस्कृत संज्ञा) (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है)... ध्वनियों की अनुभूति... गंधों की अनुभूति... स्वादों की अनुभूति... स्पर्शनीय वस्तुओं की अनुभूति... मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य रूपों की अनुभूति (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है) और मानसिक घटनाओं (धम्म) की अनुभूति के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

194. संज्ञानात्मक जागरूकता (संचेतना)
... "राहुला, आपके विचार से रूपों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता (जैसा कि अनुच्छेद 188 में है)... ध्वनियों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... गंधों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... स्वादों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, उपदेशित श्रेष्ठ शिष्य रूपों के प्रति संज्ञानात्मक जागरूकता के प्रति घृणा का अनुभव करता है... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है।'"

---

195. लालसा (तन्हा संस. तृष्णा)
... "राहुल, आपके विचार से, रूपों के प्रति लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) (जैसा कि 188 में है)... ध्वनियों के प्रति लालसा... गंधों के प्रति लालसा... स्वादों के प्रति लालसा... स्पर्शनीय वस्तुओं के प्रति लालसा... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा, स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य रूपों के प्रति लालसा (तन्हा संस्कृत: तृष्णा) के प्रति घृणा (निब्बिदा) का अनुभव करता है... मानसिक घटनाओं (धम्म) के प्रति लालसा के प्रति घृणा का अनुभव करता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है'।"

---

196. तत्व (धातु)
... "राहुल, आपके विचार से पृथ्वी तत्व (धातु) (जैसा कि 188 में है) ... जल तत्व ... ऊष्मा तत्व ... वायु तत्व ... आकाश तत्व ... चेतना तत्व (विन्नान संस्कृत: विज्ञान) स्थायी है या अस्थायी?" 339 - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को पृथ्वी तत्व के प्रति घृणा (निब्बिद) का अनुभव होता है ... (जैसा कि 188 में है) ... जल तत्व के प्रति घृणा ... ऊष्मा तत्व के प्रति घृणा ... वायु तत्व के प्रति घृणा ... आकाश तत्व के प्रति घृणा ... चेतना तत्व के प्रति घृणा। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है ... वह समझता है:
'... इस अवस्था के लिए और कुछ नहीं है'।"

---

197. समुच्चय (खंड संस्कृत)
... "राहुल, आपके विचार से रूप (जैसा कि 188 में है) ... संवेदना (वेदना) ... बोध (संज्ञा) ... संस्कार (अनिवार्य व्यवहार) ... चेतना (विज्ञान) स्थायी है या अस्थायी?" - "अस्थायी, आदरणीय महोदय।" ...

"इस प्रकार देखकर, राहुल, ज्ञानी शिष्य को रूप (जैसा कि 188 में है) के प्रति घृणा (निबिद्धा) और चेतना के प्रति घृणा का अनुभव होता है। घृणा का अनुभव करते हुए, वह वैराग्यवान हो जाता है... वह समझता है: '... इस अवस्था (स्वयं) के लिए और कुछ नहीं है'।"

(ii) The Second Subchapter (Dutiyavaggo)
198. आँख (चक्खु संस्कृत: चक्षु)
(यह सूत्र 188 से सभी मामलों में समान है, सिवाय इसके कि इस सूत्र में बुद्ध ने राहुल से स्वयं ही प्रश्न पूछे, बिना पहले उनसे कोई शिक्षा मांगे।)

---

199. रूप आदि
(ये नौ सूत्र 189-197 के समान ही हैं, सिवाय इसके कि इन सूत्रों में बुद्ध ने राहुल से स्वयं ही प्रश्न पूछे, बिना पहले उनसे कोई शिक्षा माँगे।)

---

200. अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुशय सं. अनुशय)
सावत्थी में। तब पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस शरीर के प्रति सचेतनता (विन्नान, विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं' की भावना, 'मेरा' की भावना और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) का अस्तित्व ही न रहे?" 340

"हे राहुल, किसी भी प्रकार का रूप, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (विपश्यना ध्यान में) सभी रूपों को सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखा जाता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है।' 341

"किसी भी प्रकार की वेदना (संवेदना) ... किसी भी प्रकार की अनुभूति (संज्ञा संस. संग्या) ... किसी भी प्रकार का संस्कार (आक्रामक व्यवहार) ... किसी भी प्रकार की चेतना, चाहे भूतकाल हो, भविष्यकाल हो या वर्तमानकाल, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - ध्यान में (पासतो) व्यक्ति समस्त चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से इस प्रकार देखता है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।'

"जब व्यक्ति ध्यान में (पासतो) इस प्रकार जानता और देखता है, राहुल, तब इस चेतना से युक्त शरीर के संबंध में और समस्त बाह्य अभिकारकों (निमित्त) के संबंध में, 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) भीतर नहीं रहती।" [253]

---

201. अपगत से छुटकारा
सावत्थी में, पूज्य राहुल भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा:

"पूज्यवर, कैसे जानें, कैसे देखें कि इस सचेत शरीर (विन्नान संस. विज्ञान) और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाए, भेद से परे हो जाए और शांत एवं पूर्णतः मुक्त हो जाए?" 342

"हे राहुल, चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - समस्त रूप को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर, अर्थात् 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है,' तो अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है।

(इसी प्रकार) "किसी भी प्रकार की वेदना ... किसी भी प्रकार की अनुभूति ... किसी भी प्रकार का संस्कार ... किसी भी प्रकार की चेतना , चाहे भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का, आंतरिक हो या बाह्य, स्थूल हो या सूक्ष्म, निम्न हो या उच्च, दूर हो या निकट - समस्त चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में सही प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्ना) से देखकर, अर्थात् 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है,' तो अनासक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है।"

इस प्रकार, राहुल, जब कोई व्यक्ति ध्यान में रहकर जानता और देखता है (पासातो), तब चेतना के साथ इस शरीर के संबंध में और सभी बाह्य कारणों (निमित्त) के संबंध में, मन 'मैं', 'मेरा' और अहंकार से मुक्त हो जाता है, भेदभाव से ऊपर उठ जाता है, और शांत और पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

अध्याय 8. लक्खना से संबंधित प्रवचन (लक्खनासाम्युत्त) {साम्युत्त-19}
(i) पहला उप-अध्याय (पथमवग्गो संस. प्रथम-वर्ग)
202. कंकाल (अट्ठी सं. अष्टी)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में, बाँस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य लक्खना और पूज्य महामोग्गलाना गिद्ध शिखर पर्वत पर निवास कर रहे थे। 343 फिर, सुबह, पूज्य महामोग्गलाना ने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर पूज्य लक्खना के पास गए और उनसे कहा: "आओ, मित्र लक्खना, हम राजगृह में भिक्षा मांगने चलें।"

"ठीक है, मित्र," पूज्य लक्खना ने उत्तर दिया। फिर, जब वे गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहे थे, तो पूज्य महामोग्गलाना ने एक स्थान पर मुस्कुराहट दिखाई। 344 पूज्य लक्खना ने उनसे कहा: "मित्र मोग्गलाना, आपने किस कारण से मुस्कुराहट दिखाई?"

“यह प्रश्न पूछने का समय नहीं है, मित्र लक्खना। यह प्रश्न मुझसे तब पूछना जब हम भगवान (बुद्ध) की उपस्थिति में हों।
”

फिर, जब पूज्य लक्खना और पूज्य महामोग्गलाना राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके लौटे, तो वे भगवान (बुद्ध) के पास गए। भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए, और पूज्य लक्खना ने पूज्य महामोग्गलाना से कहा: “यहाँ, जब पूज्य महामोग्गलाना गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहे थे, तो उन्होंने एक विशेष स्थान पर मुस्कुराहट दिखाई। मित्र मोग्गलाना, आपने ऐसा क्यों मुस्कुराया?”

"हे मित्र, जब मैं गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहा था, तो मैंने एक कंकाल को हवा में उड़ते हुए देखा। गिद्ध, कौवे और बाज उसका पीछा करते हुए उसकी पसलियों पर चोंच मार रहे थे, उसे घायल कर रहे थे और उसे फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था। 345 तब मेरे मन में यह विचार आया: 'यह सचमुच अद्‌भुत है! यह सचमुच आश्चर्यजनक है! कि ऐसा प्राणी हो सकता है, ऐसी आत्मा हो सकती है, ऐसा व्यक्तिगत अस्तित्व हो सकता है!'" 346

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं, कुछ शिष्य दृष्टि और ज्ञान प्राप्त करके निवास करते हैं, क्योंकि वे ऐसे दृश्य को जान, देख और अनुभव कर सकते हैं। हे भिक्षुओं, अतीत में मैंने भी उस प्राणी को देखा था, लेकिन मैंने उसके बारे में किसी से बात नहीं की। क्योंकि यदि मैं उसके बारे में बात करता, तो दूसरे मुझ पर विश्वास नहीं करते, और यदि वे मुझ पर विश्वास नहीं करते, तो इससे उन्हें हानि और पीड़ा होती।" बहुत समय से।

"वह प्राणी, भिक्षुओं, इसी राजगृह में पशु कसाई हुआ करता था। उस कर्म के फलस्वरूप, वह कई वर्षों तक, सैकड़ों वर्षों तक, हजारों वर्षों तक, लाखों वर्षों तक नरक में यातना भोगता रहा, उसी कर्म के अवशेष स्वरूप वह इस प्रकार के व्यक्तिगत अस्तित्व का अनुभव कर रहा है।" 347

(इस उप-अध्याय के शेष सूत्र पहले उप-अध्याय के समान ही हैं। पाली पाठ की तरह, इसलिए अनुवाद में यहाँ केवल वही वाक्यांश दिए गए हैं जो भिन्न हैं।)

---

203. मांस का टुकड़ा (पेसी, पेशी नहीं)
... "यहाँ, मित्र, जब मैं गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहा था, तो मैंने हवा में मांस का एक टुकड़ा हिलता हुआ देखा। गिद्ध, कौवे और बाज़ उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोंच-नोंच कर फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था।"...(जैसा कि 202 में है)

"वह प्राणी, भिक्षुओं, इसी राजगृह में एक पशु कसाई था...(जैसा कि 202 में है)..." 348

---

204. मांस का पिंड (पिंडा)
(जैसे कि 202 में)... "मैंने मांस का एक टुकड़ा देखा...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में एक मुर्गी काटने वाला था...."

---

205. घावों वाला आदमी (निच्छवी)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक आदमी को घावों के साथ देखा...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में एक भेड़ कसाई था...."

---

206. तलवार जैसे बाल (असिलोमा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर तलवारों के बाल हवा में लहरा रहे थे। वे तलवारें लगातार ऊपर उठकर उसके शरीर पर प्रहार कर रही थीं और वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में एक सुअर काटने वाला था...."

---

207. भाले के बाल (सत्ती)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर भाले जैसे बाल हवा में लहरा रहे थे। वे भाले लगातार ऊपर उठकर उसके शरीर पर प्रहार कर रहे थे और वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में हिरण का शिकारी था...."

---

208. तीर के बाल (उसुलोमा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर तीरों के बाल हवा में उड़ रहे थे। वे तीर लगातार ऊपर उठते और उसके शरीर पर लगते रहे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह प्राणी इसी राजगृह में यातना देने वाला था...." 349

---

209. सुईनुमा बाल (l) 350 (सुसिलोमा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर सुई जैसे बाल हवा में लहरा रहे थे। वे सुइयाँ लगातार ऊपर उठकर उसके शरीर पर लग रही थीं और वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में घोड़ों का प्रशिक्षक था...."

---

210. Needle Hairs (2) (Suciloma2)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके शरीर पर सुई जैसे बाल हवा में लहरा रहे थे। वे सुइयाँ उसके सिर में घुसकर उसके मुँह से बाहर निकलीं; वे उसके मुँह में घुसकर उसकी छाती से बाहर निकलीं; वे उसकी छाती में घुसकर उसके पेट से बाहर निकलीं; वे उसके पेट में घुसकर उसकी जांघों से बाहर निकलीं; वे उसकी जांघों में घुसकर उसकी पिंडलियों से बाहर निकलीं; वे उसकी पिंडलियों में घुसकर उसके पैरों से बाहर निकलीं, और वह दर्द से चीख रहा था। ...

"वह प्राणी इसी राजगृह में निंदा करने वाला था...." 351

---

211 कुम्हार वृषण (कुंभंडा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके अंडकोष हवा में तैरते हुए घड़ों की तरह थे। जब वह चलता था, तो उसे अपने अंडकोष कंधों पर उठाने पड़ते थे, और जब वह बैठता था तो अपने अंडकोषों के ऊपर बैठता था। गिद्ध, कौवे और बाज उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोंच-नोंच कर फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह का एक भ्रष्ट मजिस्ट्रेट था...." 352

(ii) दूसरा उप-अध्याय (दुतियावग्गो)
212. सिर पानी में डूबा हुआ (सासिसाका)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक आदमी को देखा जिसका सिर गोबर के गड्ढे में डूबा हुआ था...."

"वह व्यक्ति इसी राजगृह में व्यभिचारी था...." 353

---

213. गोबर खाने वाला (गुठखाड़ा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक आदमी को गोबर के गड्ढे में डूबा हुआ, दोनों हाथों से गोबर खाते हुए देखा..."

"वह प्राणी, भिक्षुओं, इसी राजगृह का एक शत्रु ब्राह्मण था। बुद्ध कश्यप के समय में, उसने भिक्षु संघ को भोजन के लिए आमंत्रित किया। चावल के बर्तनों में गोबर भरकर, उसने भिक्षुओं से कहा: 'महोदय, इसमें से जितना चाहो उतना खाओ और बाकी अपने साथ ले जाओ।'..." 354

---

214. घावों वाली महिला (निच्छवित्थी)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक छिल चुकी स्त्री को हवा में उड़ते देखा। गिद्ध, कौवे और बाज़ उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोच-नोच कर टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रही थी...."

"वह स्त्री इसी राजगृह में व्यभिचारिणी थी...." 355

---

215. बदसूरत औरत (मंगुलित्थी)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक दुर्गंधयुक्त और बदसूरत स्त्री को हवा में उड़ते देखा। गिद्ध, कौवे और बाज उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर रहे थे और उसे नोंच-नोंच कर टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रही थी...."

"वह स्त्री इसी राजगृह में एक ज्योतिषी थी...."

---

216. उमस भरी औरत (ओकिलिनी, अकुलिनी)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक स्त्री को देखा, जिसका शरीर झुलस रहा था, झुलस रहा था, कालिख से सना हुआ था, हवा में हिल रहा था, जबकि वह दर्द से चीख रही थी...." 357

"वह स्त्री कलिहगा के राजा की मुख्य रानी थी, ईर्ष्यालु स्वभाव की, उसने राजा की एक पत्नी पर अंगीठी में भरे कोयले उड़ेल दिए...."

---

217. सिरविहीन सूंड (आसिसाका संस. आशीसाका)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक बिना सिर का धड़ हवा में उड़ता हुआ देखा; उसकी आँखें और मुँह उसकी छाती पर थे। गिद्ध, कौवे और बाज़ उसका पीछा करते हुए उस पर वार कर उसे नोंच रहे थे और उसे फाड़ रहे थे, जबकि वह दर्द से चीख रहा था..."

"वह प्राणी इसी राजगृह में हरिका नाम का एक जल्लाद था..."

---

218. दुष्ट भिक्खु (पापभिक्खु सं. पाप-भिक्षु)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक भिक्षु को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और लपटों से भरा था, जबकि वह दर्द से चीख रहा था...."

"वह भिक्षु बुद्ध कश्यप के युग में एक दुष्ट भिक्षु था...." 358

---

219. दुष्ट भिक्षुणी (पापभिक्खुनी, पापभिक्षुनी का संक्षिप्त रूप)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक भिक्षुणी को हवा में विचरण करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और ज्वाला की तरह सुलग रहा था, जबकि वह पीड़ा से चीख रही थी। ..."

"वह भिक्षुणी बुद्ध कश्यप के युग में एक दुष्ट भिक्षुणी थी...."

---

220. दुष्ट शिष्य (पापसिक्खमना सं. पाप-शिष्यमान)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक प्रशिक्षु भिक्षु को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और लपटों से भरा था, जबकि वह दर्द से चीख रहा था। ..."

"वह प्रशिक्षु भिक्षु [पिछले जन्म में] एक दुष्ट प्रशिक्षु भिक्षु था...."

---

221. दुष्ट नौसिखिया भिक्षु (पापसमनेरा, संस्कृत: पाप-श्रमनेरा)
(जैसा कि 202 में है)... "मैंने एक नवोदित भिक्षु को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कुंड, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और लपटों से भरा था, जबकि वह दर्द से चीख रहा था..."

"वह नवोदित भिक्षु एक दुष्ट नवोदित भिक्षु था..."

---

222. दुष्ट नौसिखिया नन, आदि (पापसमनेरी संस पाप-श्रमानेरी)
"हे मित्र, जब मैं गिद्ध शिखर पर्वत से नीचे आ रहा था, तो मैंने एक ननद को हवा में गति करते देखा। उसका बाहरी वस्त्र, कटोरा, कमरबंद और शरीर जल रहा था, धधक रहा था और ज्वाला की तरह भड़क रहा था, और वह पीड़ा से चीख रही थी। मुझे यह विचार आया: 'यह वास्तव में अद्‌भुत है! यह वास्तव में आश्चर्यजनक है! कि ऐसा प्राणी हो सकता है, ऐसी आत्मा हो सकती है, ऐसा व्यक्तिगत अस्तित्व हो सकता है!'"

तब भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:
"भिक्षुओं, कुछ शिष्य ऐसे होते हैं जो दृष्टि और ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, क्योंकि वे ऐसे दृश्य को जान, देख और अनुभव कर सकते हैं। हे भिक्षुओं, अतीत में मैंने भी उस ननद को देखा था, लेकिन मैंने इसके बारे में किसी से बात नहीं की। क्योंकि यदि मैं इसके बारे में बात करता, तो दूसरे मुझ पर विश्वास नहीं करते, और यदि वे विश्वास नहीं करते, तो इससे उन्हें लंबे समय तक हानि और पीड़ा उठानी पड़ती।

वह ननद बुद्ध के समय में एक दुष्ट ननद थी।" कश्यप का उपदेश: उस कर्म के फलस्वरूप कई वर्षों, सैकड़ों वर्षों, हजारों वर्षों, लाखों वर्षों तक नरक में यातना भोगने के कारण, उसी कर्म के अवशेष स्वरूप वह इस प्रकार के व्यक्तिगत अस्तित्व का अनुभव कर रही है।

अध्याय 9: उपमाओं सहित संबंधित प्रवचन (उपम-सम्युत्त संस्कृत उपम-सम्युत्त) {सम्युत्त-20}
223. छत की चोटी (कुटा, संस्कृत: कूटा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे... वहाँ भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, जैसे किसी ऊंचे भवन की सभी कड़ियां छत की चोटी तक जाती हैं और जड़ पर आकर मिलती हैं, और छत के हट जाने पर सभी हट जाती हैं, उसी प्रकार सभी हानिकारक अवस्थाएं अज्ञान में निहित होती हैं और अज्ञान पर आकर मिलती हैं, और अज्ञान के उखड़ जाने पर सभी उखड़ जाती हैं। 359 इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सचेत रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

224. नाखून (नखसिखा)
सावत्थी में, भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में थोड़ी सी मिट्टी लेकर भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं, कौन बड़ा है: मेरे नाखून में ली गई थोड़ी सी मिट्टी या विशाल पृथ्वी?" "

आदरणीय, विशाल पृथ्वी बड़ी है। भगवान (बुद्ध) ने अपने नाखून में जो थोड़ी सी मिट्टी ली है, वह तुच्छ है। विशाल पृथ्वी की तुलना में, यह नगण्य है, इसकी तुलना नहीं की जा सकती, यह अंश के बराबर भी नहीं है।" "

इसी प्रकार, भिक्षुओं, जो प्राणी मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं, वे अल्प हैं। परन्तु जो प्राणी मनुष्यों के बीच जन्म नहीं लेते, वे अधिक संख्या में हैं। 360 अतः, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

225. परिवार (कुल)
सावत्थी में। "भिक्षुओं, जिस प्रकार चोरों के लिए उन परिवारों में घुसपैठ करना आसान होता है जिनमें स्त्रियाँ अधिक और पुरुष कम होते हैं, उसी प्रकार अमानवों के लिए उस भिक्षु पर हमला करना आसान होता है जिसने प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति संस्कृत) का विकास और अभ्यास नहीं किया है। 36 !

"जिस प्रकार चोरों के लिए उन परिवारों में घुसपैठ करना कठिन होता है जिनमें स्त्रियाँ कम और पुरुष अधिक होते हैं, उसी प्रकार अमानवों के लिए उस भिक्षु पर हमला करना कठिन होता है जिसने प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास किया है।

इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास करेंगे, इसे अपना वाहन बनाएंगे, इसे अपना आधार बनाएंगे, इसे स्थिर करेंगे, इसमें अभ्यास करेंगे और इसे पूर्ण रूप से सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

226. भोजन के बर्तन (ओक्खा)
सावत्थी में

[बुद्ध:] "भिक्षुओं, यदि कोई सुबह सौ बर्तन भोजन दान करे, दोपहर में सौ बर्तन भोजन दान करे और शाम को सौ बर्तन भोजन दान करे, और यदि कोई दूसरा व्यक्ति गाय के थन को खींचने में लगने वाले समय के बराबर भी प्रेम और करुणा का भाव विकसित करे, चाहे सुबह हो, दोपहर हो या शाम, तो यह पहले वाले से अधिक फलदायी होगा।

" "इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम प्रेम और करुणा के द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति) का विकास और संवर्धन करेंगे, इसे अपना वाहन बनाएंगे, इसे अपना आधार बनाएंगे, इसे स्थिर करेंगे, इसमें अभ्यास करेंगे और इसे पूर्ण रूप से सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको अभ्यास करना चाहिए।"

---

227. भाला (सत्ती)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए एक नुकीला भाला है, और एक आदमी यह सोचकर आता है: 'मैं इस नुकीले भाले को अपने हाथ या मुट्ठी से मोड़कर, इसका आकार बिगाड़कर, इसे घुमाऊंगा।' 364 भिक्षुओं, क्या आपके विचार से उस आदमी के लिए ऐसा करना संभव होगा?"

नहीं, पूज्यवर। इसका क्या कारण है? क्योंकि उस नुकीले भाले को हाथ या मुट्ठी से मोड़ना, उसका आकार बिगाड़ना या उसे घुमाना आसान नहीं है। ऐसा करने से मनुष्य को केवल थकान और कष्ट ही होगा।

इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति (विमुक्ति) का विकास और अभ्यास करता है, उसे अपना वाहन बनाता है, उसे अपना आधार बनाता है, उसे स्थिर करता है, उसमें अभ्यास करता है और उसे पूर्णतः सिद्ध करता है, तो यदि कोई अमानव यह सोचता है कि वह उसके मन को पराजित कर सकता है, तो उसे केवल थकान और कष्ट ही होगा।

अतः, हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम प्रेम और करुणा (मेत्तम/मैत्री) द्वारा मन की मुक्ति का विकास और अभ्यास करेंगे, उसे अपना वाहन बनाएंगे, उसे अपना आधार बनाएंगे, उसे स्थिर करेंगे, उसमें अभ्यास करेंगे और उसे पूर्णतः सिद्ध करेंगे।' इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

---

228. धनुर्धर (धनुग्गहा)
श्रावस्ती में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, मान लीजिए कि चारों दिशाओं में चार दृढ़ धनुषधारी, प्रशिक्षित, कुशल और अनुभवी धनुर्धारी खड़े हैं। 365 फिर एक व्यक्ति यह सोचते हुए आता है: 'मैं इन चारों दिशाओं में इन चारों धनुर्धारियों द्वारा चलाए गए बाणों को जमीन पर गिरने से पहले ही पकड़ लूंगा और फिर उन्हें वापस ले आऊंगा।' भिक्षुओं, क्या यह कहने के लिए पर्याप्त होगा कि 'वह व्यक्ति असाधारण गति से संपन्न है'?"

"आदरणीय महोदय, यदि वह एक धनुर्धारी द्वारा चलाए गए बाण को भी जमीन पर गिरने से पहले ही पकड़ ले और उसे वापस ले आए, तो यह कहने के लिए पर्याप्त होगा कि 'वह व्यक्ति असाधारण गति से संपन्न है।' चारों धनुर्धारियों द्वारा चलाए गए बाणों के बारे में तो बात करने की आवश्यकता ही नहीं है!"

भिक्षुओं, वह मनुष्य जिस गति से चलता है, उससे भी अधिक तीव्र सूर्य और चंद्रमा हैं। वह मनुष्य जिस गति से चलता है, सूर्य और चंद्रमा जिस गति से चलते हैं, और सूर्य और चंद्रमा के आगे दौड़ने वाले देवता जिस गति से चलते हैं, जीवन उससे भी अधिक तीव्र गति से नष्ट हो जाता है। इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।

---

229. ढोल की खूंटी (अनी)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, एक समय पहले दशरहों के पास एक ढोल था जिसे सम्मनर कहते थे। 367 जब सम्मनर में दरार आ गई, तो दशरहों ने उसमें एक और कील ठोक दी। अंततः वह समय आया जब सम्मनर का मूल ढोल गायब हो गया और केवल कुछ कीलें ही बची रहीं।

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, भविष्य में भिक्षुओं के साथ भी यही होगा। जब तथागत द्वारा दिए गए वे प्रवचन, जो गहरे अर्थ वाले, अलौकिक और शून्यता से संबंधित हैं, पढ़े जा रहे होंगे, 368 तो वे उन्हें सुनने के लिए उत्सुक नहीं होंगे, न ही उन पर ध्यान देंगे, न ही उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाएंगे; और वे यह नहीं सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और उनमें महारत हासिल की जानी चाहिए।" लेकिन जब वे प्रवचन, जो केवल कवियों द्वारा रचित कविताएँ हैं, शब्दों और वाक्यांशों में सुंदर हैं, बाहरी लोगों द्वारा निर्मित हैं, उनके शिष्यों द्वारा बोले जाते हैं, 369 का पाठ किया जाता है, तो वे उन्हें सुनने के लिए उत्सुक होंगे, ध्यान से सुनेंगे, उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाएंगे; और वे सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और उनमें

महारत हासिल करनी चाहिए। इस प्रकार, भिक्षुओं, तथागत द्वारा बोले गए वे प्रवचन जो गहरे अर्थ वाले, अलौकिक हैं, शून्यता से संबंधित हैं, लुप्त हो जाएंगे।

"इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'जब तथागत द्वारा बोले गए वे प्रवचन जो गहरे अर्थ वाले, अलौकिक हैं, शून्यता से संबंधित हैं, का पाठ किया जाता है, तो हम उन्हें सुनने के लिए उत्सुक होंगे, ध्यान से सुनेंगे, उन्हें समझने के लिए अपना मन लगाएंगे; और हम सोचेंगे कि उन शिक्षाओं का अध्ययन और उनमें महारत हासिल करनी चाहिए।' इस प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

230. लकड़ी के ब्लॉक (कलिंगारा)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली के विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। वहाँ भगवान (बुद्ध) ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"भिक्षुओं!"

"आदरणीय महोदय!" उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान (बुद्ध) ने यह कहा:

"भिक्षुओं, अब लिच्छवी लकड़ी के गट्ठों को तकिये बनाकर रहते हैं; वे सचेत (अपमादा) और लगन से साधना करते हैं। मगध के राजा अजातसत्तु, जो विदेह के पुत्र हैं, उन तक नहीं पहुँच पाते; वे उन पर अधिकार नहीं कर पाते। परन्तु भविष्य में लिच्छवी कोमल और कोमल हाथों-पैरों वाले हो जाएँगे; वे रुई के तकियों वाले नरम पलंगों पर सूर्योदय तक सोएँगे। तब मगध के राजा

अजातसत्तु उन तक पहुँच पाएंगे; तब वे उन पर अधिकार कर लेंगे।" तब दुष्ट मारा उन तक पहुँच प्राप्त कर लेगा; वह उन पर अधिकार कर लेगा।

"अतः, भिक्षुओं, तुम इस प्रकार अभ्यास करो: 'लकड़ी के गट्ठों को तकिये के रूप में उपयोग करके, हम सचेत और लगन से साधना में लगे रहेंगे।' इसी प्रकार तुम अभ्यास करो।" 370

---

231. नर हाथी (नाग)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय एक नवदीक्षित भिक्षु परिवारों से अत्यधिक मेलजोल कर रहा था। अन्य भिक्षुओं ने उससे कहा,
"आदरणीय भिक्षु, परिवारों से अत्यधिक मेलजोल न करें।" लेकिन जब उन्हें फटकारा गया, तो उसने कहा, "ये वरिष्ठ भिक्षु सोचते हैं कि वे परिवारों से मेलजोल कर सकते हैं, तो मैं क्यों नहीं कर सकता?"

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, एक समय की बात है, एक जंगल में एक बड़ी झील थी, जिसके आसपास बड़े-बड़े हाथी रहते थे। 371 वे हाथी झील में डुबकी लगाते, अपनी सूंड से कमल की डंठलें उखाड़ते, उन्हें अच्छी तरह धोकर मिट्टी समेत चबाते और निगल जाते थे। इससे उनकी सुंदरता और शक्ति बढ़ती थी, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक कष्ट से बच जाते थे।

उनके बच्चे भी उन बड़े-बड़े हाथियों की तरह झील में डुबकी लगाते और अपनी सूंड से कमल की डंठलें उखाड़ते, लेकिन उन्हें अच्छी तरह धोए बिना, चबाए बिना, मिट्टी समेत निगल जाते थे। इससे उनकी सुंदरता और शक्ति नहीं बढ़ती थी, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक कष्ट से बच जाते थे।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ वरिष्ठ भिक्षु सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे धर्म (मार्ग, नियम) पर प्रवचन देते हैं, और गृहस्थ लोग उन पर अपना विश्वास प्रकट करते हैं। 372 वे अपने लाभों का उपयोग उनसे बंधे बिना, उनके प्रति आसक्त हुए बिना, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए करते हैं। इससे उनकी सुंदरता और बल में वृद्धि होती है, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक पीड़ा से बच जाते हैं।

नवदीक्षित भिक्षु, वरिष्ठ भिक्षुओं का अनुकरण करते हुए, सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करते हैं। वहाँ वे धर्म पर प्रवचन देते हैं, और गृहस्थ लोग उन पर अपना विश्वास प्रकट करते हैं। वे अपने लाभों का उपयोग उनसे बंधे हुए, उनके प्रति आसक्त हुए बिना, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना, उनमें निहित खतरे को देखे बिना और उससे बचने का मार्ग समझे बिना करते हैं। इससे उनकी सुंदरता और बल में वृद्धि नहीं होती, और इसी कारण वे मृत्यु या घातक पीड़ा से बच जाते हैं।" 373

"अतः, भिक्षुओं, तुम्हें इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम अपने लाभों का उपयोग उनसे बंधे बिना, उनसे आसक्त हुए बिना, उनमें अंधाधुंध लीन हुए बिना करेंगे, उनमें निहित खतरे को देखते हुए और उससे बचने का मार्ग समझते हुए।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

---

232. बिल्ली (बिलारा)
श्रावस्ती में। उस अवसर पर एक भिक्षु परिवारों के साथ अत्यधिक मेलजोल कर रहा था। अन्य भिक्षुओं ने उससे कहा,
"आदरणीय भिक्षु, परिवारों के साथ अत्यधिक मेलजोल न करें।" लेकिन चेतावनी मिलने के बावजूद उसने ऐसा करना नहीं छोड़ा।

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। [भगवान (बुद्ध) ने कहा:]

"भिक्षुओं, एक बार एक बिल्ली किसी गली, नाले या कूड़ेदान के पास खड़ी होकर एक छोटे चूहे की प्रतीक्षा कर रही थी, और सोच रही थी: 'जब यह छोटा चूहा भोजन के लिए बाहर आएगा, तो मैं उसे वहीं पकड़कर खा जाऊंगी।'" फिर वह चूहा भोजन की तलाश में निकला, और बिल्ली ने उसे पकड़ लिया और बिना चबाए जल्दी से निगल लिया। फिर उस छोटे चूहे ने बिल्ली की आंतें और पित्ताशय खा लिए, और इसी कारण बिल्ली की मृत्यु हो गई और उसे भीषण पीड़ा सहनी पड़ी।

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, यहाँ कोई भिक्षु सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण करके, शरीर, वाणी और मन को असंयमित रखते हुए, सती ध्यान लगाए बिना, अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखे बिना, भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करता है। वह वहाँ कम वस्त्रों में सजी स्त्रियों को देखता है और उसके मन में कामवासना (राग) उमड़ पड़ती है। कामवासना से ग्रस्त होकर वह मृत्यु या भीषण पीड़ा को प्राप्त होता है। हे भिक्षुओं, यही श्रेष्ठ साधना में मृत्यु है: कि व्यक्ति साधना त्याग कर निम्न लोक में लौट जाता है। यही भीषण पीड़ा है: कि व्यक्ति एक ऐसा अपवित्र अपराध करता है जिसका पुनर्वास संभव है।" 375

"अतः, भिक्षुओं, तुम इस प्रकार अभ्यास करो: 'हम शरीर, वाणी और मन को संजोकर, सती ध्यान लगाकर और अपनी इंद्रियों को संयमित रखते हुए भिक्षा मांगने के लिए किसी गाँव या नगर में प्रवेश करेंगे।' इसी प्रकार तुम अभ्यास करो।"

---

233. सियार (1) (सिंगाला1)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, क्या आपने भोर होते ही एक बूढ़े सियार की दहाड़ सुनी?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"वह बूढ़ा सियार खुजली नामक रोग से पीड़ित है। फिर भी वह जहाँ चाहे जाता है, जहाँ चाहे खड़ा होता है, जहाँ चाहे बैठता है, जहाँ चाहे लेटता है, और उस पर ठंडी हवा भी चलती है। यहाँ शाक्य पुत्र के अनुयायी होने का दावा करने वाले किसी व्यक्ति के लिए भी यदि वह इस प्रकार के व्यक्तिगत अस्तित्व का अनुभव कर सके तो यह अच्छा होगा। 376

"इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: 'हम सजग रहेंगे (अप्पमदा)।' आपको इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।"

---

234. सियार (2) (सिंगला2)
सावत्थी में।
[बुद्ध:] "भिक्षुओं, क्या आपने भोर होते ही किसी बूढ़े सियार की दहाड़ सुनी?"

"जी हाँ, पूज्यवर।"

"उस बूढ़े सियार में शायद कुछ कृतज्ञता और धन्यवाद हो, लेकिन यहाँ मौजूद उस व्यक्ति में कोई कृतज्ञता और धन्यवाद नहीं है जो शाक्य पुत्र का अनुयायी होने का दावा करता है। 377

"इसलिए, भिक्षुओं, आपको इस प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम कृतज्ञ और आभारी रहेंगे, और हम पर किए गए छोटे से छोटे उपकार को भी नहीं भूलेंगे।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

अध्याय 10: भिक्षुओं के साथ संबंधित प्रवचन (भिक्षुसाम्युत्त) {साम्युत्त-21}
235. कोलिता (महामोग्गलाना)
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। वहाँ पूज्य महामोग्गलाना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा:
"मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्र!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य महामोग्गलाना ने आगे कहा:

"यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांत में था, मेरे मन में यह विचार आया: 'कहा जाता है, "महान मौन, महान मौन।" तो महान मौन क्या है?'" 379

"तब, मित्रों, मुझे यह विचार आया: 'यहाँ, विचार और परीक्षा के शांत होने पर, एक भिक्षु द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें निवास करता है, जिसमें आंतरिक विश्वास और मन की एकाग्रता (एकोदिभाव) होती है, जो विचार और परीक्षा से रहित होती है, और समाधि अवस्था से उत्पन्न परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख (सुख) से परिपूर्ण होती है। इसे ही श्रेष्ठ मौन कहा जाता है।'

"फिर, मित्रों, विचार और चिंतन के शांत होने पर, मैंने दूसरे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें निवास किया, जो समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण है। जब मैं उसमें निवास कर रहा था, तब विचार सहित चेतना (सन्ना संस्कृत संज्ञा) और मन ने मुझे घेर लिया।

फिर, मित्रों, भगवान (बुद्ध) आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से मेरे पास आए और यह कहा: 'मोग्गलाना, मोग्गलाना, हे ब्राह्मण, पवित्र मौन के प्रति आलसी (पमादा) न हो। पवित्र मौन में अपने मन को स्थिर करो, पवित्र मौन में अपने मन को एकाग्र करो, पवित्र मौन में अपने मन को समाधि बना लो।' फिर, मित्रों, कुछ समय बाद, जब विचार और चिंतन शांत हो गए, तो मैंने दूसरे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें लीन हो गया, जो आंतरिक विश्वास और एकाग्र मन (एकोदिभाव) से युक्त है, विचार और चिंतन से रहित है, और समाधि (सम्मोहन) अवस्था से उत्पन्न परमानंद (पीति/प्रीति) और सुख से परिपूर्ण है।

"यदि, मित्रों, कोई सही ढंग से किसी के बारे में कह सकता है: 'वह शिष्य है जिसने गुरु की सहायता से दिव्य ज्ञान (अभिन) की महानता प्राप्त की है,' तो यह बात मेरे बारे में ही सही ढंग से कही जा सकती है।" 380

---

236. उपतिस्सा 381 (सारिपुत्त)
सावत्थी में, पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मित्रों, भिक्षुओं!"

"मित्र!" भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने आगे कहा:

"यहाँ, मित्रों, जब मैं एकांतवास में था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'क्या संसार में ऐसा कुछ है जिसके परिवर्तन और रूपांतरण से मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न हो सकती है?' तब मुझे यह विचार आया:
'संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसके परिवर्तन और रूपांतरण से मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न हो सकती है।'

यह सुनकर पूज्य आनंद ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: "मित्र सारिपुत्त, यदि स्वयं गुरु भी रूपांतरित हो जाएँ, तो क्या आपमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न नहीं होगी?"

"मित्र, 382 यदि स्वयं गुरु का भी परिवर्तन और रूपांतरण हो जाए, तब भी मुझमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न न हो। परन्तु मेरे मन में यह विचार अवश्य आऊँगा:
'परम प्रभावशाली, परम शक्तिशाली और महान गुरु का देहांत हो गया है। यदि भगवान (बुद्ध) दीर्घकाल तक जीवित रहते, तो वे समस्त जन के कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवों और मनुष्यों के कल्याण, सुख और प्रसन्नता के लिए जीवित रहते।' "

यह अवश्य ही इसलिए है क्योंकि पूज्य सारिपुत्त में 'मैं', 'मेरा' और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति (अनुसय) दीर्घकाल से पूर्णतः उखड़ी हुई है 383 कि यदि स्वयं गुरु का भी परिवर्तन और रूपांतरण हो जाए, तब भी उनमें दुःख, विलाप, पीड़ा, अप्रसन्नता और निराशा उत्पन्न न हो।"

---

237. बैरल

मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य सारिपुत्त और पूज्य महामोग्गलाना राजगृह में वेलुवन (गिलहरी अभयारण्य), एक ही घर में रह रहे थे। शाम को पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से बाहर आए और पूज्य महामोग्गलाना के पास पहुँचे। उन्होंने पूज्य महामोग्गलाना को नमस्कार किया और जब उनका अभिवादन और सौहार्दपूर्ण वार्तालाप समाप्त हो गया, तो वे एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"मित्र मोग्गलाना, आपकी इंद्रियाँ शांत हैं, आपका चेहरा शुद्ध और तेजस्वी है। क्या पूज्य महामोग्गलाना ने आज का दिन शांतिपूर्ण निवास में बिताया है?"

"मैंने पूरा दिन एक साधारण से घर में बिताया, मित्र, लेकिन मैंने कुछ धम्म (मार्ग, नियम) पर चर्चा की।" 384

"पूजनीय महामोग्गलाना ने किसके साथ धम्म पर चर्चा की?"

"मैंने भगवान (बुद्ध) के साथ धम्म पर चर्चा की, मित्र।"

"परन्तु भगवान (बुद्ध) बहुत दूर हैं, मित्र। वे अब सावत्थी में जेतवन (जेतवन), अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे हैं। क्या पूजनीय महामोग्गलाना ने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) के माध्यम से भगवान (बुद्ध) से संपर्क किया, या क्या भगवान (बुद्ध) ने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि) के माध्यम से पूज्य महामोग्गलाना से संपर्क किया?"

"हे मित्र, मैंने आध्यात्मिक शक्ति (इद्धि/रिद्धि) के माध्यम से भगवान (बुद्ध) के पास नहीं गया, न ही भगवान (बुद्ध) ने आध्यात्मिक शक्ति के माध्यम से मेरे पास आए। बल्कि, भगवान (बुद्ध) ने मुझसे संवाद करने के लिए अपनी दिव्य आँख और दिव्य कान (धातु) को शुद्ध किया, और मैंने भगवान (बुद्ध) से संवाद करने के लिए अपनी दिव्य आँख और दिव्य कान (धातु) को शुद्ध किया।" 385

"आदरणीय महामोग्गलाना ने भगवान (बुद्ध) के साथ किस प्रकार की धम्म चर्चा की?"

"यहाँ, मित्र, मैंने भगवान (बुद्ध) से कहा: 'आदरणीय महोदय, ऐसा कहा जाता है, "जिसकी ऊर्जा (वीर्य) जागृत हो, उसकी ऊर्जा (वीर्य) जागृत हो।" आदरणीय महोदय, ऊर्जा (वीर्य) किस प्रकार जागृत होती है?' तब भगवान (बुद्ध) ने मुझसे कहा: 'देखो, मोग्गलाना, एक भिक्षु (भिक्षु) अपनी ऊर्जावान शक्ति को जागृत करके इस प्रकार निवास करता है: "इच्छा से, मेरी केवल त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रहें, और मेरे शरीर में मांस और रक्त सूख जाए, परन्तु मैं अपनी ऊर्जावान शक्ति को तब तक शिथिल नहीं करूँगा जब तक मैं वह प्राप्त न कर लूँ जो पुरुष शक्ति, पुरुष ऊर्जावान शक्ति, पुरुष परिश्रम से प्राप्त किया जा सकता है।" 386 मोग्गलाना, इसी प्रकार ऊर्जावान शक्ति जागृत होती है।' मित्र, यही वह धम्म प्रवचन है जो मैंने भगवान (बुद्ध) से किया था। "

मित्र, पूज्य महामोग्गलाना की तुलना में हम हिमालय, पर्वतों के राजा, की तुलना में कुछ कंकड़ के समान हैं।" पूज्य महामोग्गलाना की आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य इतनी अधिक है कि यदि वे चाहें तो एक युग (कल्प/कल्प) तक जीवित रह सकते हैं। 387

"मित्र, पूज्य सारिपुत्त की तुलना में हम नमक के एक बड़े बर्तन के सामने नमक के कुछ दानों के समान हैं। क्योंकि भगवान (बुद्ध) ने पूज्य सारिपुत्त की अनेक प्रकार से प्रशंसा, स्तुति और गुणगान किया है:

'जैसे सारिपुत्त सर्वोच्च हैं; प्रबुद्ध अंतर्दृष्टि (पन्न), सद्गुण (शील) और शांति में।
वैसे ही एक भिक्षु जो उनसे परे चला गया है; अधिक से अधिक केवल उनके समर्थ हो सकता है।'
इस प्रकार दोनों महान नागों ने एक-दूसरे के इस उत्तम कथन और अभिव्यक्ति पर प्रसन्नता व्यक्त की। 388

---

238. नवदीक्षित भिक्षु (नव)
श्रावस्ती में। उस अवसर पर एक नवदीक्षित भिक्षु भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके अपने निवास में प्रवेश करता और विश्राम करते हुए मौन बैठा रहता। वह वस्त्र बनाते समय अन्य भिक्षुओं की सेवा नहीं करता था। तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उन्हें यह बात बताई। तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा, "आओ, भिक्षु, उस भिक्षु को मेरे नाम से कहो कि गुरु उसे बुला रहे हैं।"

"जी, आदरणीय," उस भिक्षु ने उत्तर दिया और वह उस भिक्षु के पास जाकर उससे कहा, "गुरु तुम्हें बुला रहे हैं, मित्र।"

"जी, मित्र," उस भिक्षु ने उत्तर दिया और वह भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया।
तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा, "हे भिक्षु, क्या यह सच है कि भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके आप अपने निवास स्थान में प्रवेश करते हैं और विश्राम करते हुए मौन रहते हैं, और वस्त्र बनाते समय भिक्षुओं की सेवा नहीं करते?"

"हे पूज्यवर, मैं अपना कर्तव्य निभा रहा हूँ।"

तब भगवान (बुद्ध) ने उस भिक्षु के मन के विचार को स्वयं जानकर भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया:

"भिक्षुओं, इस भिक्षु में दोष न निकालो। यह भिक्षु वह है जो इच्छा से, बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, उन चार ध्यानों को प्राप्त करता है जो उच्चतर मन का निर्माण करते हैं और इसी जीवन में सुखद निवास प्रदान करते हैं। और वह वह है जो दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके, इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा था। यह कहने के बाद, सौभाग्यशाली (सुगतो), शिक्षक (सत्ता) ने आगे यह कहा:

"आलस भरी कोशिश से नहीं; कमज़ोर कोशिश से नहीं,
यह निब्बान हासिल किया जा सकता है; सभी दुखों से मुक्ति (मोक्ष/मोक्ष)।

"यह युवा भिक्षु (भिक्षु) [मेरे बगल में]; वास्तव में एक सर्वोच्च पुरुष है:
वह अपने अंतिम शरीर को लेकर घूमता है; उसने मार (शैतान) और उसके वाहन को जीत लिया है।"

---

239. सुजाता
सावत्थी में, पूज्य सुजाता भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं को यों कहा, "भिक्षुओं, यह कुलवासी दोनों दृष्टियों से सुंदर है। वह आकर्षक, सुंदर, मनमोहक और अत्यंत सुंदर रंगत वाला है। और वह ऐसा व्यक्ति है जिसने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया है और निवास किया है, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... उन्होंने आगे कहा:

"यह भिक्षु परम सौंदर्य से परिपूर्ण है; उनका मन पूर्णतः एकाग्र है।
अनासक्ति से उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है; वे विरक्त हैं, समस्त दुःखों से मुक्त हैं;

वे अपने अंतिम शरीर को धारण किए हुए हैं; उन्होंने मार (शैतान) और उसके वाहन पर विजय प्राप्त कर ली है।"

---

240. लकुंदक भद्दिया
सावत्थी में, पूज्य लकुंदक भद्दिया भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, क्या तुम उस भिक्षु को आते देख रहे हो, जो बदसूरत, कुरूप, विकृत और भिक्षुओं में तिरस्कृत है?"

"जी, पूज्यवर।"

"वह भिक्षु महान आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण है। ऐसा कोई सिद्धि प्राप्त करना आसान नहीं है जो उस भिक्षु ने अभी तक प्राप्त न किया हो। और वह ऐसा व्यक्ति है जिसने दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... और आगे कहा:

"हंस, बगुले और मोर; हाथी और चित्तीदार हिरण;
ये सभी शेर से डरते हैं; चाहे उनका शरीर कितना भी बड़ा क्यों न हो।

इसी प्रकार मनुष्यों में; जो छोटा है और जिसे ज्ञान प्राप्त है (पन्ना),
वही वास्तव में महान है; न कि वह बचकाना (नासमझ) जिसका शरीर सुगठित है।"

---

241. विशाखा
मैंने ऐसा सुना है (भगवान बुद्ध से, आनंद कहते हैं)। एक बार भगवान (बुद्ध) वैशाली में विशाल वन में नुकीली छत वाले हॉल में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य विशाखा पंचलिपुत्त सभा कक्ष में भिक्षुओं को धर्मोपदेश दे रहे थे, उन्हें प्रेरित कर रहे थे और प्रसन्न कर रहे थे। उनका प्रवचन परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट, अर्थपूर्ण और अनासक्त था। 391

फिर, शाम को, भगवान (बुद्ध) एकांतवास से बाहर आए और सभा कक्ष में पहुँचे। वे नियत आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, सभा कक्ष में भिक्षुओं को धर्मोपदेश कौन दे रहा है, उन्हें प्रेरित कर रहा है और प्रसन्न कर रहा है, उनका प्रवचन परिष्कृत, स्पष्ट, सुस्पष्ट, अर्थपूर्ण और अनासक्त है?"

"यह आदरणीय विशाखा पंचलिपुत्त थे, आदरणीय महोदय।"

तब भगवान (बुद्ध) ने आदरणीय विशाखा पंचलिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा: "शाबाश, शाबाश, विशाखा! यह अच्छा है कि आप भिक्षुओं को इस प्रकार धम्म प्रवचन से उपदेश देते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने आगे कहा:

"जब ज्ञानी व्यक्ति नासमझों के बीच होता है, तो
वे उसे नहीं पहचानते यदि वह बोलता नहीं, 392
परन्तु वे उसे तब पहचानते हैं जब वह बोलता है।

अमरता (निर्वाण) की ओर इशारा करते हुए,

उसे धम्म का प्रवचन और व्याख्या करनी चाहिए; उसे संतों का ध्वज ऊंचा उठाना चाहिए।
सुविचारित शब्द संतों का ध्वज हैं; क्योंकि धम्म संतों का ध्वज है।"

---

242. नंदा
सावत्थी में, तब पूज्य नंदा, जो भगवान (बुद्ध) के मामा के बेटे थे, ने अच्छी तरह से इस्त्री किए हुए वस्त्र पहने, अपनी आँखों में काजल लगाया, एक चमकीला कटोरा लिया और भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। 393 भगवान (बुद्ध) को प्रणाम करने के बाद, वह एक तरफ बैठ गया, और भगवान (बुद्ध) ने उससे कहा:

"नंदा, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जिसने गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में आस्था के साथ प्रस्थान किया है, कि तुम अच्छी तरह से इस्त्री किए हुए वस्त्र पहनो, अपनी आँखों में काजल लगाओ और एक चमकीला कटोरा धारण करो। हे नंदा, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जिसने गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में आस्था के साथ प्रस्थान किया है, यह उचित है कि तुम वनवासी बनो, भिक्षा ग्रहण करो, चिथड़े के वस्त्र पहनो और इंद्रिय सुखों के प्रति उदासीन रहो।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा... [उन्होंने] आगे यह भी कहा:

"मैं नंदा को वनवासी के रूप में कब देखूंगा; चिथड़ों से सिले हुए वस्त्र पहने हुए;
अजनबियों के जूठे टुकड़ों पर जीवन यापन करते हुए; इंद्रिय सुखों के प्रति उदासीन?"

फिर, कुछ समय बाद, पूज्य नंदा वनवासी बन गए, भिक्षाभोजन करने लगे, चिथड़ों के वस्त्र पहनने लगे और इंद्रिय सुखों के प्रति उदासीन रहने लगे।

---

243. तिस्सा

सावत्थी में। तब पूज्य तिस्सा, जो भगवान (बुद्ध) के चचेरे भाई थे, 395 भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए - दुखी, शोकाकुल, उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा:

"तिस्सा, तुम यहाँ दुखी, शोकाकुल, आँसू बहाते हुए क्यों बैठे हो?"

"क्योंकि, पूज्यवर, भिक्षुओं ने मुझे चारों ओर से तीखे शब्दों से घेर लिया है।" 396

“हे तिस्सा, ऐसा इसलिए है क्योंकि तुम दूसरों को उपदेश देते हो, परन्तु स्वयं उपदेश सहन नहीं कर सकते। तिस्सा, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जिसने विश्वास के साथ गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, कि तुम दूसरों को उपदेश दो और बदले में उपदेश स्वीकार न करो। हे तिस्सा, हे कुल के उस व्यक्ति के लिए जो विश्वास के साथ गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, यह उचित है कि तुम दूसरों को उपदेश दो और बदले में उपदेश स्वीकार करो।”

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

“तुम क्रोधित क्यों हो? क्रोधित मत हो! हे तिस्सा, क्रोधहीनता तुम्हारे लिए श्रेष्ठ है। क्रोध, अहंकार और तिरस्कार को दूर करना ही ब्रह्मचर्य जीवन है, हे तिस्सा।”

---

244. एक भिक्षु जिसका नाम एल्डर (थेरानामाका) है
एक बार भगवान (बुद्ध) राजगृह में बांस के वन (वेलुवन), गिलहरी अभयारण्य (कलंदक-निवाप) में निवास कर रहे थे। उस समय, 397वें वरिष्ठ भिक्षु एकांतवास में रहते थे और एकांतवास की प्रशंसा करते थे। वे अकेले ही भिक्षा मांगने गाँव जाते, अकेले ही लौटते, अकेले ही एकांत में बैठते और अकेले ही ध्यान करते थे।

तब कई भिक्षु भगवान (बुद्ध) के पास आए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा,

"हे आदरणीय, यहाँ एक वरिष्ठ भिक्षु हैं जो एकांतवास में रहते हैं और एकांतवास की प्रशंसा करते हैं।"

तब भगवान (बुद्ध) ने एक भिक्षु से कहा,
"आओ, भिक्षु वरिष्ठ को मेरी ओर से कहो कि गुरु उन्हें बुला रहे हैं।"

“जी, पूज्यवर,” उस भिक्षु ने उत्तर दिया और पूज्यवर के पास जाकर उनसे कहा: “गुरुजी आपको बुला रहे हैं, मित्र पूज्यवर।”

“जी, मित्र,” पूज्यवरवर ने उत्तर दिया और वह भगवान (बुद्ध) के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान (बुद्ध) ने उनसे कहा: “क्या यह सच है, पूज्यवरवर, कि आप एकांतवासी हैं और एकांतवास की प्रशंसा करते हैं?”

“जी, पूज्यवर।”

“परन्तु कैसे, पूज्यवरवरवर, आप एकांतवासी कैसे हैं और एकांतवास की प्रशंसा कैसे करते हैं?”

“जी, पूज्यवरवर, मैं भिक्षा मांगने के लिए अकेले ही गाँव जाता हूँ, अकेले ही लौटता हूँ, अकेले ही एकांत में बैठता हूँ और अकेले ही ध्यान करता हूँ। इसी प्रकार मैं एकांतवासी हूँ और एकांतवास की प्रशंसा करता हूँ।”

"यह एकांतवास का एक तरीका है। हे गुरुदेव, मैं इससे इनकार नहीं करता। लेकिन एकांतवास की पूर्णता का विस्तृत विवरण आप ध्यानपूर्वक सुनिए और मनन कीजिए (मानसिकरो), मैं इस पर चर्चा करूँगा।"

"जी हे गुरुदेव।"

"और कैसे? हे गुरुदेव, एकांतवास की पूर्णता का विस्तृत विवरण क्या है? यहाँ, हे गुरुदेव, अतीत का त्याग कर दिया गया है, भविष्य का त्याग कर दिया गया है, और वर्तमान स्वरूपों के प्रति इच्छा (चंद) और कामवासना (राग) को पूरी तरह से दूर कर दिया गया है। 398 इसी प्रकार, हे गुरुदेव, एकांतवास की पूर्णता का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा:

"ज्ञानी, सर्वविजयी, सर्वज्ञ;
सभी धर्मों (मार्ग, विधि) में निष्कलंक, सभी भोगों से मुक्त,
तृष्णा के नाश (खयाल/क्षय) में मुक्त;
मैं उस व्यक्ति को 'एकाकी निवास करने वाला' कहता हूँ।" 399

---

245. महाकप्पिना
सावत्थी में, पूज्य महाकप्पिना भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे। 400 भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं को इस प्रकार संबोधित किया: "भिक्षुओं, क्या आप उस भिक्षु को आते हुए देख रहे हैं, जो गोरे रंग का, दुबला-पतला और उभरी हुई नाक वाला है?"

"जी, पूज्यवर।"

"वह भिक्षु महान आध्यात्मिक शक्ति और सामर्थ्य से परिपूर्ण है। ऐसा कोई सिद्धि प्राप्त करना आसान नहीं है जो उस भिक्षु ने अभी तक प्राप्त न किया हो। और वह ऐसा व्यक्ति है जो दिव्य ज्ञान (अभिन) से स्वयं इसका अनुभव करके इसी जीवन में ब्रह्मचर्य के उस अतुलनीय लक्ष्य में प्रवेश करता है और निवास करता है, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं।"

भगवान (बुद्ध) ने यही कहा। यह कहकर, सौभाग्यशाली (सुगतो), गुरु (सत्था) ने आगे कहा: " जिनका चिन्ह कुल है, उनमें क्षत्रिय

श्रेष्ठ है । परन्तु ज्ञान और आचरण में निपुण व्यक्ति देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ है। सूर्य दिन में चमकता है, चंद्रमा रात में प्रकाशमान होता है। क्षत्रिय कवचधारी होकर चमकता है, ध्यानमग्न ब्राह्मण चमकता है। परन्तु बुद्ध दिन-रात, हर समय महिमा से प्रकाशित होते हैं।"

---

246. सहायक
सावत्थी में। फिर दो भिक्षु जो आदरणीय महाकप्पिन के शिष्य थे, भगवान (बुद्ध) के पास आए। भगवान (बुद्ध) ने उन्हें दूर से आते देखा और भिक्षुओं से इस तरह कहा: "भिक्षुओं, क्या तुम उन दो भिक्षुओं को देख रहे हो जो साथी हैं, कप्पिन के शिष्य हैं?"

"हाँ, आदरणीय महोदय।"

"वे भिक्षु बहुत आध्यात्मिक-शक्ति (इद्धि\ऋद्धि) और ताकत वाले हैं। ऐसी कोई उपलब्धि पाना आसान नहीं है जो उन भिक्षुओं ने पहले ही हासिल न कर ली हो। और वे वे हैं जो, दिव्य-ज्ञान (अभिन्ना) से खुद इसे महसूस करके, इसी जीवन में पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन (ब्रह्मचर्य) के उस नायाब लक्ष्य में प्रवेश करते हैं और रहते हैं जिसके लिए कुल के लोग सही मायने में गृहस्थ जीवन से संन्यासी जीवन में चले जाते हैं।"

यही भगवान (बुद्ध) ने कहा था। यह कहने के बाद, गुरु (सत्ता) ने आगे कहा:

"ये [दो] साथी भिक्षु; बहुत लंबे समय से एक हैं। 401
सच्चे धम्म (पथ, कानून) ने उन्हें एक किया है; बुद्ध द्वारा बताए गए धम्म में।

"उन्हें कप्पिन द्वारा अच्छी तरह से अनुशासित किया गया है; महान व्यक्ति द्वारा बताए गए धम्म में।
वे अपने अंतिम शरीर को लेकर चलते हैं; मार (शैतान) और उसके घोड़े को जीतकर।"

संयुत्त निकाय की कारणता की किताब (निदानवग्ग) पूरी हो गई है।

<<<< पिछला (SN1) अगला (SN3) >>>>